श्री दशमेश चरितम्

आचार्य श्रीधर प्रसाद बलूनी

੧ਓ
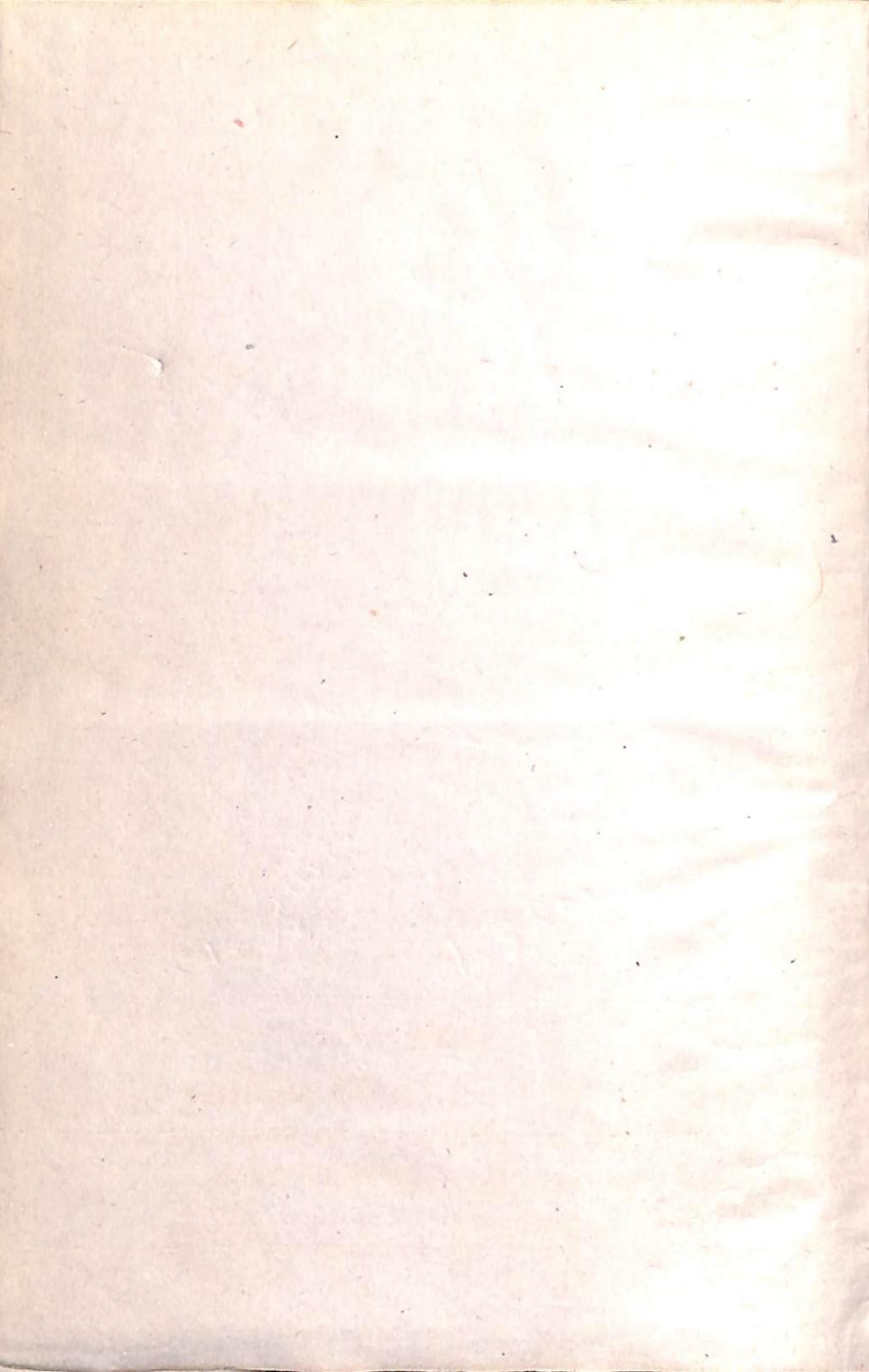
श्री दशमेश चरितम्

(सिख गौरव गानम्)

(संस्कृत अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित)

रचयिता

आचार्य श्रीधर प्रसाद बलूनी

प्रकाशक

अखण्ड हिन्दुस्थान परिषद (पंजी०)

एस-562, (स्कूल ब्लाक) शकरपुर दिल्ली-92

दूरभाष : 2207269, 2469513

फैक्स : 2462057

श्री दशमेश चरितम्

सी-12/259, भजनपुरा दिल्ली-53
दूरभाष-2267674

अगस्त, 1999
मूल्य : रु 125/-

वितरक : विनसॅर पब्लिशिंग कम्पनी
बी-388, तिमारपुर, दिल्ली-54

प्रकाशक : अखण्ड हिन्दुस्थान परिषद (पंजी०)
एस-562, (स्कूल ब्लाक) शकरपुर दिल्ली-92
दूरभाष : 2207269, 2469513 फैक्स : 2462057

मुद्रक : जी० पी० प्रिन्टर्स
एफ-167/6, मंगल बाजार, लक्ष्मी नगर,
दिल्ली-92 दूरभाष 2232741

शब्द सज्जा : कैलाश टाईप सैन्टर, सी-274, भजनपुरा दिल्ली-53
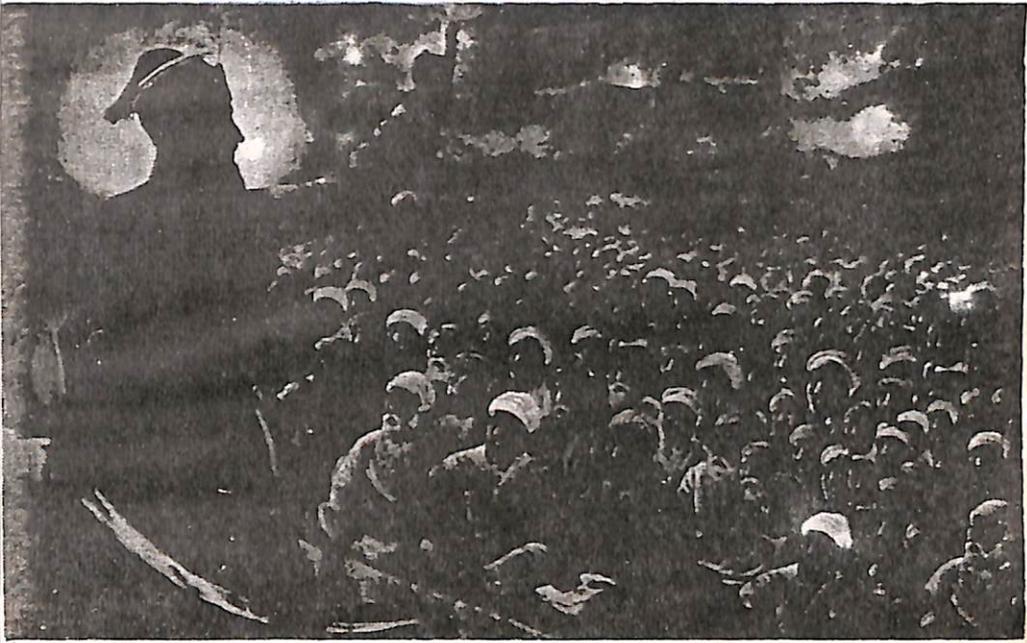
अस्मत्कृते खालस धर्म हेतोःवैशाख संक्रान्तिरतीवपुण्या।। पृष्ठ १०२ श्लोक ३४

दशमेशगिरं श्रुत्वा, श्रीकृष्णो बैजरामजः ।
शालिग्रामः प्रमोदेतां, वर्षन्तौ मङ्गलानि नः।।

खालसा सृजना के त्रिशताब्दी के ऐतिहासिक शुभ अवसर पर समाज को नई दिशा देने वाले समर्पित, युग प्रवर्तक सरदार प्रेम सिंह "शेर" जी (श्री बैकुण्ठ लाल शर्मा "प्रेम" केन्द्रीय मंत्री, विश्व हिन्दू परिषद, संरक्षक अखण्ड हिन्दुस्थान मोर्चा एवं पूर्व सांसद) को पं० श्रीधर प्रसाद बलूनी (शास्त्री जी) द्वारा रचित महाकाव्य "दशमेश चरितम्" सादर समर्पित।
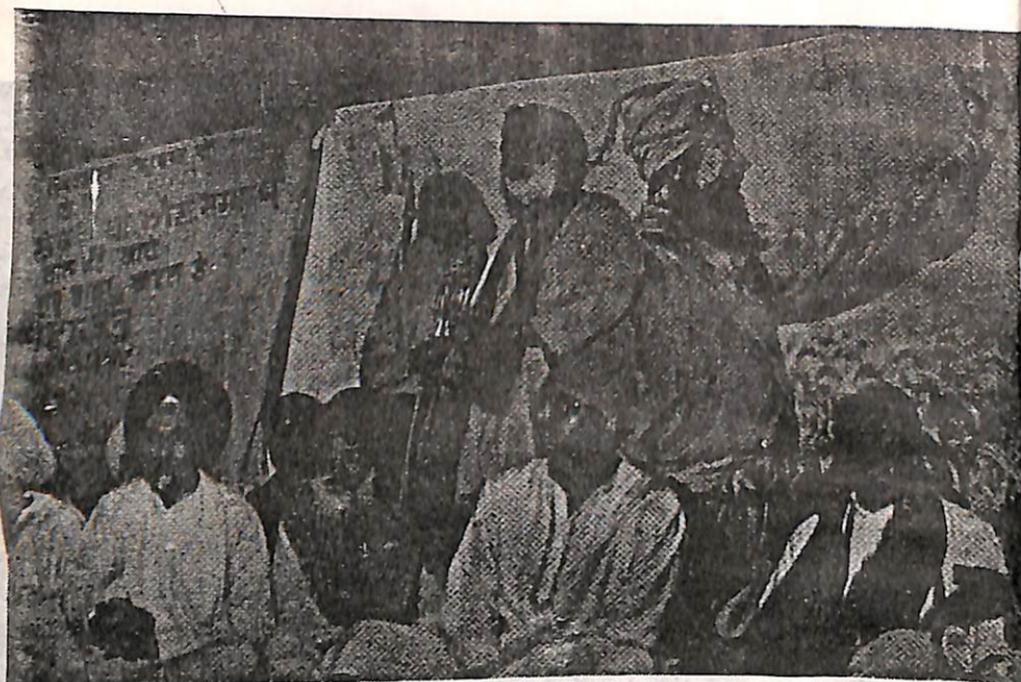
300 वां खालसा पंथ सिर्जना दिवस पर आयोजित कार्यक्रम में भाग लेते दाएं से बाएं माननीय श्री अशोक जी सिंहल, राजज्योतिषी पंडित जयप्रकाश, (लाल धागे वाले) स० प्रेम सिंह शेर, स० रछपाल सिंह-अध्यक्ष अकाली दल, (मास्टर तारा सिंह) और अन्य।

- सभी घरों से कम से कम एक व्यक्ति को सरदार (खालसा) बनने का संकल्प लेना चाहिए। -विष्णु हरि डालमिया (अंतर्राष्ट्रीय अध्यक्ष, विश्व हिन्दू परिषद्)
- यदि खालसा पंथ न होता तो आज विश्वभर में शेष रह गए हिन्दुओं की संख्या 90 करोड़ नहीं होती। -अशोक सिंघल (अंतर्राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष, विश्व हिन्दू परिषद्)
- भारत में मात्र दो प्रतिशत स्वयं सेवक तथा दो प्रतिशत खालसा हो जाएं तो भारत की अखंडता को पुनः बनाया जा सकता है।

बैकुण्ठ लाल शर्मा 'प्रेम' उर्फ प्रेम सिंह 'शेर'
(केन्द्रीय मंत्री विश्व हिन्दू परिषद् एवं पूर्व सांसद)
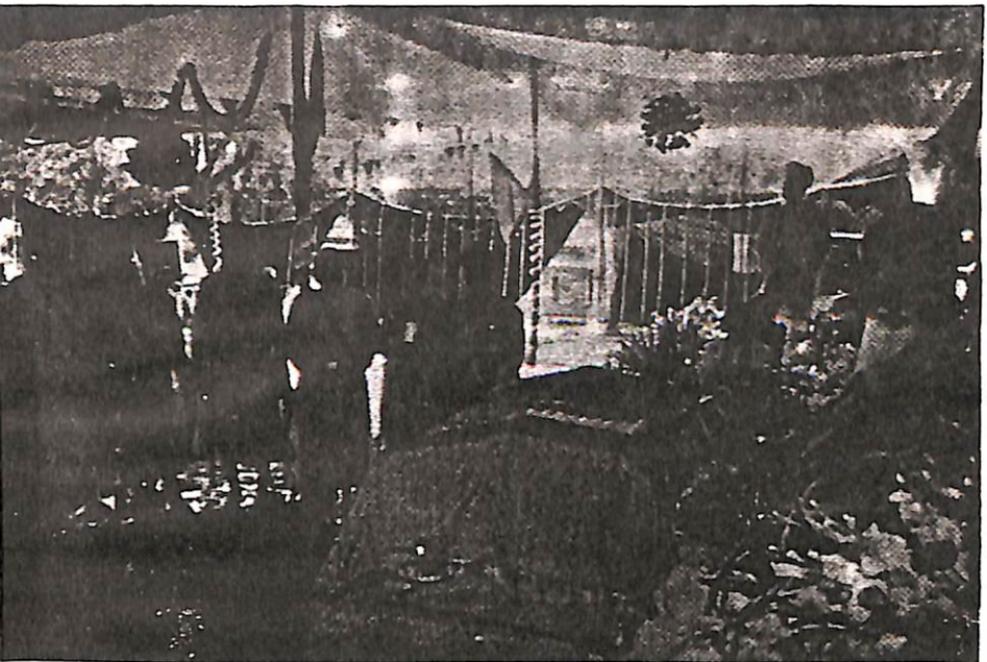
29 मार्च 1999 को गोबिन्द सदन महरोली के संत बाबा विरसा सिंह जी महाराज ने श्रीमती एवं श्री बैकुण्ठ लाल शर्मा 'प्रेम' व उनके साथियों को अमृत छकाया। जिनके नए नाम दाये से बायें

1. संत बाबा विरसा सिंह जी महाराज, 2. स. प्रेम सिंह शेर, (पूर्व सांसद व केन्द्रीय मंत्री, विहिप) 3.बीबी कृष्णा कौर, 4. स. किरणपाल सिंह, (वरिष्ठ उपाध्यक्ष, अखण्ड हिन्दुस्थान मोर्चा), 5. स. मुकन्द सिंह, (सह कार्यालय मंत्री, अखण्ड हिन्दुस्थान मोर्चा), 6. स. विश्व वीर सिंह, (पूर्व राष्ट्रीय मंत्री, बजरंग दल), 7. स. कृष्ण सिंह, (वानप्रस्थी), 8. स. विकट विकराल सिंह, 9.स.परसा सिंह

अब इसी संदर्भ में 'दशमेश चरितम्'' महाकाव्य प्रस्तुत है।

तीन सौ वर्ष पहले वैशाखी के पुण्य पर्व पर दशम गुरु श्री गोविन्द राय ने धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए माँ भगवती के चरणों में वीरव्रत धारी खालसा को सेवा के लिए युग का परिवर्तन किया। वे स्वयं पंच प्यारों से अमृत छक कर गोबिंद राय से गोबिंद सिंह वीर बने थे और घोषणा की थी।

सकल जगत में खालसा पंथ गाजे।
जगे धर्म हिन्दू सकल भंड भाजे।।

अपनी पूर्व घोषणा को फलीभूत करने हेतु भगवान राम के वंशज श्री गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने चारों पुत्रों और अपने प्राणों तक की बाजी लगा दी। खालसा पंथ के स्थापना की तीसरी शताब्दी वर्ष में हमारी दशम गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही हो सकती हैं कि गुरु ग्रंथ में प्रस्तुत गुरुओं एवं संतो से प्रेरणा लेकर खालसा का वीरव्रत फिर से धारण करें। यह भाव मन में लेकर मैं स्वयं तथा अपनी धर्म पत्नी श्रीमती कृष्णा शर्मा सहित श्री गुरु के द्वारा प्रदत खालसा व्रत धारण कर रहा हूँ। मैने तथा मेरी पत्नी ने महान संत श्री बिरसा सिंह जी महाराज द्वारा अमृत छका है तथा श्री गुरु जी के चरणों में मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे मुझे खालसा की मूल चेतना और प्रेरणा पर चलने का आत्मबल प्रदान करें।

यद्यपि जब माँ वाणि कृपा करती है।
मस्तक पर निज वरदहस्त धरती है।।
तभी रसों में कविवाणी खो पाती।
अमर काव्य की संरचना हो पाती।।

निस्संदेह माँ सरस्वती की अपार कृपा है शास्त्री श्री श्रीधर प्रसाद बलूनी जी पर, तभी तो एक अनुपम अनूठे और अलौकिक काव्य-ग्रन्थ की रचना संभव हो सकी। लम्बे अन्तराल से देश का साहित्य प्रेमी महाकाव्य के लिये तरस रहा था पर बलूनी जी ने अपनी सिद्ध हस्त लेखिनी उठाकर उस कमी को पूरा कर दिया। 21 सर्गों में रचित यह ग्रन्थ महाकाव्य की समस्त परम्पराओं पर खरा उतरता है। दशम गुरु गोबिंद सिंह जी के समग्र जीवन का इतना जीवंत चित्रण संस्कृत साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

300 वर्ष पूर्व बैशाखी के पुण्य पर्व पर दशम गुरु श्री गोबिंद राय ने धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए माँ भगवती के चरणों में वीरब्रतधारी खालसा को सेवा के लिए युग का परिवर्तन किया। वह स्वंय पॉच प्यारों से अमृत छक्कर गोबिंद राय से गोबिंद सिंह बने थे और घोषणा की कि

देहि शिवा वर मोहि इहै, शुभ करमनि ते कबहूं न टरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाई लरौ, निहचै करि आपनी जीत करौं।।

श्री बलूनी जी का यह भगीरथ प्रयास है कि उन्होने देववाणी में 'दशमेश चरितम्' रचा। उनका यह अध्यवसाय हिन्दू जाति के गौरव और गरिमा का ज्वाज्वल्यमान साहित्य स्तम्भ है। देश जाति सभ्यता संस्कृति और भारतीय अस्मिता को यह एक नई दिशा दे ऐसी अनन्त कामनाओं के साथ

आपका शुभेच्छु
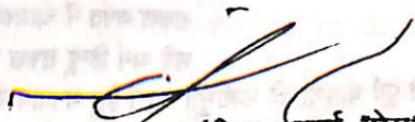
(बी.एल.शर्मा "प्रेम"
परिवर्तित नाम
प्रेमसिंह "शेर")

दिल्ली संस्कृत अकादमी
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार
पूर्व भारतीय महिला महाविद्यालय भवन,
प्लाट नं. ६, झण्डेवालान, करोलबाग, नई दिल्ली–११०००५

शुभाशंसा

प्रसन्नता का विषय है कि आचार्य श्रीधर प्रसाद बलूनी द्वारा भारतीय गुरु–परम्परा के प्रतीक सिखों की गौरव गाथा पर 'दशमेशचरितम्' नामक ग्रन्थ की रचना की गयी है। आदिकाल से ही संस्कृत–काव्यरचना की परम्परा अपने गौरवपूर्ण अतीत से अनुप्रेरित होकर समाज का मार्गदर्शन करती आयी है। स्वतंत्रता संग्राम को अभिप्रेरित करने में संस्कृत के विद्वानों और कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी, स्वातन्त्र्योत्तर भारत में भी अपने महापुरुषों पर इस प्रकार के काव्य लिखकर संस्कृत के कवि देश की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को दृढ़ता प्रदान कर रहे हैं। सिख–गुरुओं की, विशेष कर गुरु गोविन्द सिंह जी की तपस्या, त्याग, राष्ट्र के लिए प्राणार्पण की शौर्यगाथा पर आधारित 'दशमेशचरितम्' राष्ट्रीय महाकाव्य है। इसमें राष्ट्र के प्रति अभिव्यक्त भक्ति का उद्रेक इसे वीर काव्य की संज्ञा देता है। शौर्य–प्रशस्ति पूर्ण काव्य होने के साथ–साथ यह एक नीतिकाव्य भी है। जिसमें सदाचार, सेवा, सद्गुण, सत्संगति, परोपकार, नैतिकता, लोक–कल्याण आदि अनेक विषयों पर नीतिगत श्लोक हैं। प्रजा की रक्षा के लिए राजा को त्याग करना चाहिए, राजा के लिए राज्य भोग नहीं, अपितु कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है। गुरुत्व निहित है त्याग, करुणा, दीन–दुखियों की रक्षा तथा

अत्याचार के उन्मूलन में। इसी प्रकार के अनेक उत्कृष्ट राज्य–सिद्धान्त इस काव्य में ध्वनित हुए हैं। सिक्खों के गौरवपूर्ण इतिहास को संस्कृत भाषा में काव्यबद्ध करके आचार्य श्रीधर प्रसाद बलूनी ने अभूतपूर्व कार्य किया है। इक्कीस सर्गों में विभक्त इस काव्य में सिक्ख– गौरव–प्रशस्ति का तात्त्विक विवेचन किया गया है। 'यो ब्रूते सो निहालः स्यात्' और 'सच्छीरकाल रक्षतात्' जैसे उद्‌घोषों का कवि ने बड़ा ही सटीक वर्णन किया है। कवि ने गुरुगोविन्द सिंह, नानक आदि के चरित्रों के माध्यम से गुरु के महत्व और आदर्शों पर सरल, माधुर्ययुक्त, ओज एवं प्रसाद गुण से समन्वित शैली में इस काव्य की रचना की है। 'दशमेशचरितम्' की रचना के लिए मैं आचार्य श्रीधर प्रसाद बलूनी को हार्दिक बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि यह काव्य विद्वानों, कवियों, बुद्धिजीवियों और देशभक्तों में लोकप्रिय होगा तथा नयी पीढ़ी में गुरुभक्ति एवं राष्ट्रसेवा की भावना सञ्चार करेगा।

श्रीकृष्ण सेमवाल
सचिव

सम्मति

'दशमेश चरितम्' लिखकर आचार्य श्रीधर बलूनी ने बड़ा स्तुत्य कार्य किया है। गुरु गोबिंद सिंह जी का चरित्र भारतीय इतिहास में एक अद्वितीय चरित्र है। उनके जैसे नीतिवेत्ता, दूरदर्शी, योद्धा, संगठक और साहित्य रसिक आदि गुणों से भरपूर व्यक्तित्व विरल है।

गुरु गोविंद सिंह जी की स्वरचित आत्म–कथा विचित्र नाटक स्वयं एक अनोखी कृति है जिसमें पुराण और इतिहास का अद्‌भुत सामंजस्य है। उनके जीवन के अनेक ऐतिहासिक सूत्र हमें इस रचना से प्राप्त होते हैं।

आचार्य बलूनी ने ऐसे सभी उपलब्ध सूत्रों का अध्ययन करके अपने इस काव्य की रचना की है और भरसक प्रयास किया है कि इतिहास को उसके सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जाए।

मुझे इस बात का भी संतोष है कि आचार्य बलूनी ने गुरु गोबिन्द सिंह जी और गुरु नानक जी द्वारा प्रशस्त मार्ग के प्रति पूरी श्रद्धा और आत्मा के साथ इस ग्रंथ की रचना की है। किसी भी धार्मिक व्यक्तित्व और उससे जुड़ी विचार–धारा के विषय में कुछ भी लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है।

गुरु गोबिंद सिंह जी ने धर्म की रक्षा, मानवीय अधिकारों का सम्मान, मानवमात्र की समता और अन्याय–अत्याचार से लड़ने के लिए जिस खालसा पंथ की स्थापना की थी, उसकी त्रिशताब्दी सम्पूर्ण संसार में बड़ी भव्यता और उत्साह के साथ मनाई गई है। ऐसे महान ऐतिहासिक अवसर पर ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना अपने आप में एक श्लाघनीय कार्य है। मैं इस महद् उपलब्धि के लिए आचार्य बलूनी का अभिनन्दन करता हूँ।

डा. महीप सिंह
एच–१०८, शिवाजी पार्क (पंजाबी बाग),
नयी दिल्ली–११००२६
फोन : ५१६१२८७, ५६३२८८८

DEPARTMENT OF PUNJABI

UNIVERSITY OF DELHI
DELHI-110007
PHONES : OFF. : 7257125 Ext. 404

I have studied Shridhar Prasad Baluni's "DASHMESH CHRITAM" epic work in Sanskrit and this epic deals with the life and noble personality of Guru Gobind Singh in a brilliant way. The language of this epic is very impressive and full of poetic expresssion. The narrative style is also impressive. I feel this is a significant work and it should be published in the year of celebrations of the Khalsa Cenetenary, because this book is a meaningful tribute as well as a literary contrubution in the classical language. The publication of this book can inspire other writers and devotees also. It would be good if this work is translated in other languages also. The author of this book is scholar of the language and he should be awarded for this work.

Prof. S. S. Noor
Department of Punjabi
University of Delhi
Delhi-110007

श्री दशमेश चरिते सम्मतिः

श्री गुरुगोविन्दसिंहं महाभागैः स्थापिते 'खालसा पन्थस्य त्रिशद् (३००) वर्षतमे पावनजन्मदिवसे साहित्यसेवा संलग्नानाम् आचार्य-श्रीधर प्रसाद बलूनी-महोदयानां 'दशमेश चरितम्' (सिक्ख गौरवगानम्) न केवलं सिक्ख धर्मस्य गौरवस्य गानं करोति अपितु संस्कृतजगतः कृते अपि महत्वपूर्णमस्ति। यतोहि आचार्यमहोदयः संस्कृतपाठकानां कृते सिक्खधर्मस्योपदेशान्, संदेशान्, मर्यादां, शिक्षां, सदाचारं, शिष्टाचारं, मानवतायाः विश्वबन्धुत्वस्य च भावनां सुष्ठु अत्र वर्णयति।

दशमेशचरिते न केवलं श्रीगुरुणां जीवनपरिचयस्य अपितु सिक्खधर्मस्य आध्यात्मिक-सामाजिक-धार्मिक-चेतनाया अपि दर्शनानि भवन्ति। एकविंशति-सर्गषु कविमहादयैर्गुरुमहाभागानां बाललीला, श्री गुरुतेगबहादुरस्य बलिदानं, दशगुरुपरम्परा, युद्धवर्णनं, खालसापन्थस्य स्थापना, खालसाशक्ति संचयनं चामकौरवर्णनं, विजयपत्रं, कर्मयोगसरणं, महाप्रस्थानं गुरुत्वप्रदानाद्यैतिहासिक-पावनक्रियाकलापाः कस्य मनो न श्रद्धानुविद्धं कुर्वन्ति।

दशमेशचरितस्य अन्यतमा महत्वपूर्णा विशेषता सरला भाषा तथा च हिन्दीभाषायामनुवादो स्ति। भाषा सरलतां प्रांजलताप्रेमावहति। सर्वत्र ओज-प्रसाद-गुणोपेता सैषा भाषा सहृदयान् पाठकान् बलादाकर्षति, मोहयति -उत्प्रेक्षा-अलंकाराणाम्, अनुष्टुप-उपजाति-रथोद्धता-वसन्ततिलका, छन्दसां च अतीव मनोहारि संयतं च वर्णनमुपलभ्यते।।

कतिपयानि दर्शनीयानि बर्णनानि यथा-

(१) बाललीलायाः वर्णनम्-

किरीटकेयूरपिषङ्गवासो, विभर्ति चापं नृ पतित्वलक्ष्म।
चिक्रीड युद्धैः सखिभिः कदाचिद्, दुर्गाणि भित्वा विजयं बभाष।।

(२) गुरुतेगबहादुरस्य बलिदानार्थं गुरुमहाभागानां वचनानि-

विलोक्य सर्वान् जनकं दयापरो, गोविन्दराय स जगाद बालकः।
नैवास्ति कोऽपि मनुजोभवादृशो, मार्गं प्रतीकारकरं विचिन्तयेत्।।

(३) **युद्धवर्णनम्-**

आकाशे प्रसरति तीक्ष्णखड्गपङ्क्तिर्भल्लानां निवहमतीव शूलकारी।
कुन्तानां कटकचयं धनुः शराणां, झंकारं जनयति वीरहर्षध्वानम्।

(४) **गुरुशिष्ययोः प्रेम्णः वर्णनम् (खालसापन्थस्यस्थापना-समये)-**

पञ्चानेतान् पुरस्कृत्य, सद्धर्माऽमृतपायिनः।
विधिना स गुरून् मत्वा, शिष्यो भूत्वाऽमृतं पपौ।।

(५) **श्री गुरुमहाभागानां श्री जोरावरसिंह-फतेहसिंह-सुपुत्राणां धर्मस्य रक्षार्थ वर्णनम्-**

प्राणानदत्तां न च धर्मवाचं, पित्रोर्यशो वै धवलं रराज ।
पितामही पौत्रगतिं निशम्य, तावन्वगच्छत् सुरलोक-मार्गे ।

किम्बहुना-

पठकाः, पाठकाः, सहृदयाः, विद्वांसः च गुरु-जीवन-चारित्र्यं, सिक्ख धर्मस्य गौरवगानं च पठित्वा नूनं प्रभाविताः भविष्यन्ति तथा च गुरुपादानामाशीर्वादं प्राप्स्यन्ति, इति मे हढा मतिः।।

(डा० जीतसिंहः खोखरः)
शिरोमणि-संस्कृत-साहित्यकारः
आचार्यः राजकीय-संस्कृत-महाविद्यालयः
नाभा (पटियाला) पंजाबः

प्रस्तावना

एकोंकारः सतो नाम कर्ता पुरुषनिर्भयः।
निर्बैरोऽकालमूर्तोऽसौऽयोनिः सर्वो गुरोः कृपा।।

ग्रन्थेऽस्मिन् भारतीयसंस्कृतेः समुपासकस्याकालपुरुष सेवकस्य खालसा –पन्थ–सर्जकस्य सन्तसैनिकशिरोमणेः श्रीगुरु गोविन्द सिंह–महाभागस्य जीवनगाथा सर्गेष्वेकविंशतिषु वर्णिताऽस्ति। चरितं दशमेशस्य तपोनिष्ठमाध्यात्मिकं सामाजिकं समुत्थानपरं मानव–संस्कृतेः रक्षकमस्ति। पञ्जाबीभाषायां लोकभाषायां प्रदेशस्य जनजीवनं संस्कृतमूलं ज्ञानान्वेषणसंल्लग्न मस्ति। तद्दशगुरुगीतिका–पूतं रागात्मकं गुरुद्वारेषूच्चार्यमाणं पुनाति श्रावकान् जनान्। शब्दब्रह्मणि नित्या वागुत्सृष्टा ब्रह्माण्डे विवृणोति तत्वज्ञानम्। तदेव तत्वज्ञानं काव्यात्मकपद्धत्या संस्कृत– भाषामाध्यमेन शौर्यशान्तरससम्मतं प्रस्तुतं काव्येऽस्मिन्। दशमेशो गुरुगोविन्दसिंहमहाभागः, स्वदिव्य त्याग–परिपूर्ण–चरितेन भारतीयाम् 'अस्मिताम्' ररक्ष, ननाश चाततायिनः।

ग्रन्थेनानेन संस्कृतज्ञेषु सिक्खेतरजनेषु गुरुमतस्य प्रतिष्ठा सिक्खपन्थस्य महत्ता, मानवमूल्यानां सुगमता, भक्तेश्च सरलता विशिष्यते। आस्थावादिनां, सांस्कृतिकवेशभूषाभाषासंरक्षकाणां कण्ठेषु समर्पिता सैषा श्लोकमयी स्रग्विणी। देशगौरवगायकानां कर्त्तव्य–पथिकानां मोदाय संस्कृते वर्तते दशमेशचरितम्। ग्रन्थेस्मिन् समर्पित सहयोगिसंशोधकः डा० महीपसिंहः मां कृतार्थं कृतवान्। डा० जीतसिंहः खोकरः(नाभातः) प्रोत्साह्य स्वसमर्पणं व्याजहार। श्री आचार्यो गुरुदाससिंहः, पटियालातः पुनर्जागरणं मे चकार। अनुकम्पन्ति तत्रभवन्तः जगजीतसिंहः आनन्दः,जसवन्तसिंहः नेकी,जसवन्तसिंह (फुल) प्राचार्यः, डा० रवीन्द्र कौरः, डा० दीनदयालः चर्तुवेदी, लक्ष्मणदासः, जागीरसिंहः, अन्येपि वहबः सहृदया विद्वासः माम्।

मयानुरोधिता क्लेशिता वा दिल्ली विश्वविद्यालये डा० सत्येन्द्रसिंहः "नूरः", जोगिन्दर सिंह, डा० तुलसी राम शर्मा, हरनामसिंहः, हरभजन सिंहः, डा० रवीन्द्र कौरः। प्रार्थिता मार्गदर्शनाय डा० दलबीर सिंह (अमृत्सरविश्वविद्यालये), डा० रवीन्द्र कौरः (पटियाला विश्वविद्यालये) जसबीर सिंहः आहलूवालिया, (गुरु गोविन्दसिंह प्रतिष्ठान–चण्डीगढे)। संस्कृताकादमी सहयोग राशिरपि प्रकाशने प्रार्थिता लब्धा च पुस्तकमूल्यमाध्ययेन। वर्तमानप्रकाशने गोविन्दसदनस्य महती कृपाऽस्ति यैः श्री बैकुण्ठ लाल शर्मा, (प्रेमसिंहः शेरः) नूतनो धर्म रक्षकोऽभिनव– प्रयासे सृष्टः। सामाजिक सेवार्थे वितरणाय स्वसाहाय्येन सरदार जसविन्दर सिंह वाजवा महोदयं प्रोत्साह्य ग्रन्थसहस्रं तेन मुद्रितम्। नात्र धनकांक्षा संस्कृत प्रसारायाऽतिरिच्यते। यस्मै वा रोचते स मूलसंस्कृतश्लोकानां पंजावीभाषायाम् आग्भाषायामनूद्य वितरज् जनगणेषु। सर्वकारश्चेद् वाञ्छेत् पाठयतु स्वान्तःसुखाय।

अन्ते धन्यवार्दाहः श्री रामरतन प्रभाकरः यैः संस्कृतामृत प्रत्रिकायां प्रकाशितं धाराप्रवाहेण। डा चन्द्रशेखरः आजादः पुस्तक संचये चकार परमं सौजन्यम्। बहवोऽन्येऽपि विद्वासः यैः श्रुतं 'दशमेश चरितम्' प्रदत्तः सहयोगश्च। साऽपर्णाऽद्वितीयास्ति क्लिश्यमाणापि सर्वं सोढ्वा मां धनवन्तीसुतं सम्पोषयामास।

पितरौ मोदेतां नित्यं ययोर्दत्तं सुचेतनम्।।
मंगलं जायतां नित्यं पाठकानां सुमेधसाम्।।

मधुश्रवा तृतीया
श्रावण १४ प्रविष्टा
सम्वत २०५१

भवतां वशंवदः
आचार्यः श्रीधर प्रसाद बलूनी
सी–२५६ भजनपुरा, दिल्ली–११००५३

अनुक्रमणिका

एकोंकारः सतो नाम,
कर्ता पुरुष निर्भयः।
निर्वैरोऽकाल मूर्तोऽसौऽ,
योनिः सर्वो गुरोः कृपा।।

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारतः,
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम।
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे।।

-गीता

ੴ

दशमेश चरितम्
(सिक्ख गौरव गानम्)
प्रथमः सर्गः

ओंकारं हृदये ध्यात्वा सत्कर्तारं श्रिया सह।
अकालं पुरूषं वन्दे, यतो जातमिदं जगत्।।१।।

हृदय में ओंकार का ध्यान कर मैं श्री सहित उस सत्कर्तार अकालपुरूष की वन्दना करता हूं जिससे यह संसार जन्मा है।

सच्चिदानन्दरूपं तं, भासा सर्वत्र संस्थितम्।
परमानन्दसन्दोहं, तपसा योऽनुभूतवान्।।२।।

सत् चित् और आनन्द रूप में, सर्वत्र प्रकाशमान, परम आनन्द देने वाले उस अकाल पुरूष का, जिस गुरु गोविंद सिंह जी महाराज ने तपस्या से अनुभव किया।

अध्यात्मरतये योगे, ध्याने निष्ठं वदन्ति यम्।
यमादर्शं च स्वीकृत्य, त्यागमार्गो महीयते।।३।।

जिस गुरु महाराज को अध्यात्म प्रेम के लिए योग और ध्यान में लगा हुआ कहते हैं और जिनको आदर्श रूप में स्वीकार करके त्याग के मार्ग की महिमा बढ़ती है।

येन राष्ट्रस्य चैतन्यं, जागृतं जनमानसे।
शौर्यं धैर्यं नृणां स्वान्ते, देश-प्रेम्णा च धारितम्।।४।।

जिस गुरु महाराज ने सभी जनों के मन में राष्ट्रीय चेतना का जागरण किया और देश–प्रेम के कारण लोगों के मन में शूरता, धीरता की भावना को स्थापित किया।

विश्वासं वचने कृत्वा, शिष्यैः श्रुत्वापि दूरतः।
मनसा वचसा कार्यैः, यस्मै सर्वस्वमर्पितम्।।५।।

जिस गुरु महाराज की वाणी पर विश्वास करके दूर से सुनकर भी उनके शिष्यों (सिक्खों) ने मन, वचन और कर्म से अपना सब कुछ उन्हें समर्पित कर दिया था।

वैशाखी-पर्ववेलायां, विधाय मखमद्भुतम्।
सिक्खेषु शक्तिसञ्चारो, यस्माज्जातो महोज्ज्वलः।।६।।

वैशाखी की पर्व वेला में अद्भुत यज्ञ आयोजित करके जिस गुरु महाराज के द्वारा सिक्खों में प्रकाशमान महान शक्ति का संचार उत्पन्न हुआ।

सहयोगं च नेतृत्वं, सम्मानं वा विनम्रता।
यस्य शिष्येषु दृश्यन्ते, धर्मरक्षाकरा गुणाः।।७।।

सहयोग, नेताभाव, आदर–सम्मान और विनयशीलता के धर्म की रक्षा करने वाले समस्त सद्गुण जिस गुरु महाराज के शिष्यों में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

आत्मगौरवविश्वासौ, सहानुभूतिसत्यते।
जन्मना स्थापिता यस्मिन् मात्रा वात्सल्य-लीलया।।८।।

माता गूजरीजी के द्वारा बाल्यकाल के प्रेम के खेल में ही जिस गुरु महाराज के हृदय में आत्म–गौरव, विश्वास, सहानुभूति और सच्चाई के प्रति गहन विश्वास जन्म से ही भर दिया था।

धृतमुत्तरदायित्वं, मनोवचनकर्मभिः ।
शकुना श्येनतां नीता, येन तेजो विवर्धितुम्।।६।।

जिस गुरू महाराज ने भारतीयों में पराक्रम बढ़ाने के लिए मन वचन और कार्य से उत्तरदायित्व भरने का भाव स्वयं स्वीकार किया और कायर भाव वाले पक्षियों को बाज बना दिया।

वेदैः प्रकाशितं सम्यग्, धर्मं राष्ट्र-समृद्धये।
रक्षितं येन यत्नेन, स्वाध्यायभाषणादिभिः।।१०।।

जिस गुरू महाराज ने वेदों द्वारा भलीभांति प्रकाशित धर्म की व्यवस्थाओं को राष्ट्र की बढ़ोत्तरी के लिए स्वाध्याय और प्रवचन आदि कार्यों से सुरक्षित

किया।

भूयांसो मनुजा जाता, लीना काले महोज्ज्वलाः।
वाङ्मयी स्फुरते तेषां, दशमेश-विवक्षया।।११।।

इस संसार में बहुत से उज्ज्वल चरित्र वाले पुरुष उत्पन्न होकर काल के अंतराल में समा गये। उनमें दशमेश महाराज गुरु गोविन्दराय जी का वर्णन करने के लिए मेरी वाणी समुत्सुक हो रही है।

तस्य स्मरणमात्रेण बुद्धिर्याति प्रसादताम्।
विषमेषु सदा स्थैर्यं, निष्ठा धर्मे च जायते।।१२।।

उन गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज का स्मरण करते ही बुद्धि निर्मल हो जाती है एवं विकट परिस्थिति में स्थिरता आती है और धर्म में दृढ़ता का भाव उत्पन्न होता है।

चरितं दशमेशस्य, लोकभाषासु विस्तृतम्।
संक्षिप्तं देवभाषायां, तद्बध्नामि शुभेच्छया।।१३।।

यह गुरुगोविन्द सिंह जी महाराज का जीवन चरित्र (पंजाबी इत्यादि) बहुत सी लोक भाषाओं में लिखा हुआ है मैं इसे लोक कल्याण की इच्छा से संक्षेप में संस्कृत वाणी में लिख रहा हूँ।

वर्णये दशमेशस्य, क्षत्रवंशं सुनिर्मलम्।
श्रुतिसारं तपोमूलं, विचित्रं नाटकं यथा।।१४।।

मैं दशम–गुरु के निर्मल यशोगाथा वाले क्षत्रिय–वंश का वर्णन कर रहा हूँ जो वेदों का सार रूप, सुनने में उत्तम, त्याग तपस्या से उत्पन्न विचित्र नाटक में जैसा लिखा गया है।

वैवस्वतमनोर्वंशे, श्रीरामस्य सुतौ स्मृतौ।
कुशः कसूरराज्यस्थो, लवो लवपुराधिपः।।१५।।

वैवस्वत मनु महाराज के वंश में श्री रामचन्द्र जी के दो पुत्रों का स्मरण किया जाता है। इनमें से कुश ने कसूर में राज किया और लव लाहौर के

राजा हुए थे।

तयोर्वंशे कालकेतुः, कालराजो बभूवतुः।
युद्धं ययोर्महज्जातं, स्वराज्यवृद्धिकामयोः।।१६।।

उन लव कुश के वंश में कालकेतु और कालराज दो राजा हुए थे जिनमें अपना राज्य बढ़ाने की कामना से बहुत बढ़ा युद्ध हुआ था।

कालकेतुः पराजित्य, नृपं लवपुराधिपम्।
स्वराज्यं सुस्थिरं चक्रे, नीतिमार्गैः समन्ततः।।१७।।

कसूर के महाराज कालकेतु ने लाहौर के राजा कालराज को हराकर नीतिपूर्वक शासन करते हुए अपने राज्य को मजबूत कर दिया।

पराजितः कालराजो, मद्रेशं शरणं गतः।
तन्नृपतनयामूढ्वा, सनोढे न्यवसत्सुखम्।।१८।।

वहां से हारा हुआ लाहौर का महाराजा कालराज मद्रदेश के राजा की शरण में गया और मद्रदेश की राज कन्या से विवाह कर सुखपूर्वक सनौढ़े (अमरकोट) में निवास करने लगा।

काले प्रशस्ते देवी सा, पुत्ररत्नमसूयत।
विनयाभरणरक्षाभिः, सो दीप्तो ववृधे गृहे।।१६।।

सनोढ देश के राजा की उस राज कन्या ने प्रशंसनीय समय में एक पुत्र को जन्म दिया। शिक्षा, पालन–पोषण और रक्षा से वह बालक घर में प्रकाश करता हुआ बढ़ने लगा।

गुणवन्तं समुद्यन्तं, विशिष्यन्तं तु भास्करम्।
दौहित्रमकरोद्राज्ये, सोढेशो विधिना तदा।।२०।।

गुणवान् उदय होते हुए, विशेषताओं से प्रकाशित होते हुए सूर्य के समान उस दौहित्र (कन्या के पुत्र) को सनोढ देश के राजा ने अपनी राजग ी पर

बिठा दिया।

मातामहस्य राज्येन, सोढिराजोऽथ कीर्त्यते।
प्रजां पुपोष धर्मेण, सबलोऽभूत् स्वकौशलैः।।२१।।

नाना के राज्य देने के कारण उसे लोग सोढिराजा के नाम से जानने लगे। वह सोढिराज धर्म से प्रजा पालन करता था और अपनी कुशलताओं से शक्तिशाली हो गया था।

सोढिराजः पुनः स्मृत्वा, राज्यापहरणं पितुः।
कालकेतोश्च पुत्रं स, संगरे जितवान् ततः।।२२।।

सोढिराज ने फिर पिता कालराज के लाहौर के राज्य के हड़प लिए जाने को याद करके तत्पश्चात् कालकेतु राजा के पुत्र को युद्ध में जीत लिया।

पितरं तर्पयामास, स्वराज्यं स समुद्धरन्।
प्रजां च रञ्जयामास, रक्षाभरणशिक्षणैः।।२३।।

उस सोढीराज ने अपने राज्य का उद्धार कर पिता को प्रसन्न किया और रक्षा–पोषण शिक्षा के द्वारा समस्त प्रजा को भी प्रसन्न किया।

कालकेतोश्च पुत्रोऽसौ, देवराजः पराजितः।
मोघं शस्त्रबलं मत्वा, ब्रह्ममार्गमथाश्रयत्।।२४।।

कसूर के राजा कालकेतु के पुत्र देवराज ने हार मान कर शस्त्र–बल को व्यर्थ मान कर ब्रह्म चिन्तन सम्बन्धी ज्ञानमार्ग का आश्रय ले लिया।

सान्वयः सो गतः काशीं, ज्ञानार्थी पठति त्रयीम्।
सर्वशास्त्रेषु निष्णातो, वेदिनाम्ना बभूव सः।।२५।।

तब ज्ञान–प्राप्ति के लिए वह देवराज सपरिवार काशी चला गया और वेदाध्ययन में लग गया। वह काशी में पढ़ता हुआ सब शास्त्रों में निपुण होकर

वेदी नाम से प्रसिद्ध हो गया।

मद्राधिपः सोढिराजो, यदा विज्ञैः प्रबोधितः।
ऐक्यं कुलद्वयोर्ज्ञात्वा, वेदिनस्तान् जुहाव सः।।२६।।

जब मद्रदेश के सोढिराज को ज्ञानियों ने समझाया तो उसने अपने दोनों परिवारों को एकता को जानकर काशी से उन वेदियों को वापस मद्र देश में बुला लिया।

ततो मद्रेषु प्राप्तेषु प्रणमत्सु नृपं प्रति।
सत्कृत्य शृणुते वेदान्, तेभ्यः सश्रद्धया नृप।।२७।।

उन वेदियों के मद्र देश में पहुंचने पर एवं राजा को प्रणाम करने के बाद राजा सोढिराज ने उनका सत्कार किया और उनसे श्रद्धापूर्वक वेद–पाठ को सुना।

श्रुत्वा वेदत्रयीं पूतो, राज्यं तेषां न्यवर्तयत्।
अथर्ववेदपाठे स, हित्वा सर्वं वनं ययौ।।२८।।

उस सोढिराज ने तीन वेदों के पाठ को सुनकर उनका राज्य वापस कर दिया और अथर्ववेद का पाठ सुनकर तो अपना सब कुछ त्याग कर ही वन को चला गया।

ब्रूते यान्तं नृपं वेदी, न्यस्तं राज्यमिदं त्वया।
चतुर्थे वेदपाठे त्वं, ब्रह्म लब्धुं गतो वनम्।।२९।।

वेदी ने वन को जाते हुए राजा से कहा कि यह राज्य तुम्हारे द्वारा हमारे पास धरोहर है। क्योंकि हमसे चौथे वेद पाठ को सुनकर तुम ब्रह्म ज्ञान पाने को वन चले गये।

प्रतिजानीमहे तावद्, गुरवो मेऽन्वये त्रयः।
पदं गुरोश्चतुर्थं ते, सोढिवंशं गमिष्यति।।३०।।

वेदपाठी वेदी देवराज ने प्रतिज्ञा की कि मेरे वंश में तीन गुरु होंगे और चौथे

वेद पाठ में परमार्थ हेतु राज्य त्याग से गुरु की चौथी पदवी सोढिवंश में चली जायेगी।

सत्या वेदजुषां वाणी, वेदिवंशे गुरुत्रयी।
नानकोऽङ्गददेवश्चाऽमरदासो गुरूत्तमाः।।३१।।

उन वेद–ज्ञान–सेवियों की वाणी सच हुई और वेदी वंश में तीन गुरु महाराज हुए–वे गुरु नानक देव, गुरु अङ्गददेव, गुरु अमर दास श्रेष्ठ गुरु महाराज थे।

वेदिवंशे त्रयो सोढि-वंशे सप्तपरम्परा।
गुरूणामभवद् दिव्या, सिक्ख-धर्म-प्रकाशिनी।।३२।।

इस प्रकार वेदी वंश में तीन गुरु महाराज और सोढि वंश में सात गुरुओं की सिक्ख धर्म को प्रकाशित करने वाली दिव्य (दस गुरु) परम्परा उत्पन्न हुई।

रामदासोऽर्जुन-देवो, हरिगोविन्द एव च।
हरिरायो हरिकृष्णः, सोढि-तेगबहादुरः।।३३।।

इस सोढि वंश में गुरु रामदास, अर्जुन देव, हरिगोविन्द, हरि राय, हरि कृष्ण और तेगबहादुर ये गुरु महाराज उत्पन्न हुए।

गोविन्दो दशमो जातः, पुञ्जीभूतो महत्तपः।
धर्मसौक्यं ऋषीणां सः, सिक्खानां दर्शनं शुभम्।।३४।।

इस सोढि वंश में गोविन्दराय दशम गुरु महाराज बड़ी तपस्या का पुंज हुआ था। वह ऋषियों के धर्म का एकात्मक रूप वाला सिक्खों का शुभ धार्मिक दर्शन था।

स राष्ट्रं जीवितं चक्रे, दशमेशः स्वकर्मणा।
स्फुरति चरितं तस्य, स्वयं लोकेषु तत्वतः।।३५।।

उन दशमेश महाराज ने अपने क़र्म से इस राष्ट्र को जीवन प्रदान किया। उनका जीवन चरित्र तत्वज्ञान के रूप से स्वयं ही प्रकाशमान है।

वर्गभावं परामृज्य, रक्षायै शस्त्र-धारिणम्।
लोक-सेवा-व्रते लीनं, शौर्यायाऽमृतपायिनम्।।३६।।

उन गुरु महाराज को वर्ग–भेद–भाव को पोछने वाला, रक्षा के लिए शस्त्र धारण करने वाला, लोक सेवा के धर्म में रत, शूरता जगाने के लिए अमृत पिलाने वाला मानते हैं।

पञ्च लक्ष्मयुतं शूरं, पञ्चाज्ञा धर्म-पालकम्।
प्रपञ्च-भञ्जकं लोके, तं गुरुं प्रणताः जनाः।।३७।।

पांच लक्षणों से युक्त शूरवीर पंचो की आज्ञा रूपी धर्म पालक, पाखण्ड प्रपंच के विनाशक उन गुरु महाराज को सभी लोगों ने प्रणाम किया।

संम्पोष्य खालसाभावं, निर्गुणं रूपसर्जकम्।
ज्ञानपूतान् कर्मनिष्ठान्, शब्दब्रह्मणि सोऽकरोत्।।३८।।

उन गुरु गोविन्द सिंह ने गगन में विराजमान भाव स्वरूप निर्गुण ब्रह्म को साकार स्रष्टा बताकर ज्ञान से पवित्र कर्मठ और शब्द ब्रह्म का सेवक बना दिया।

ग्रन्थे गुरुश्च धर्मोऽत्र, जिज्ञासुभ्यः समादिशत्।
समर्प्य गुरुश्रद्धां सः, गुरुमन्यं निषिद्धवान्।।३९।।

उसने जिज्ञासु (जानने के इच्छुक) शिष्य लोगों को 'ग्रन्थ के अन्दर के ज्ञान में ही गुरु है' की गुरुश्रद्धा समर्पण करने का आदेश दिया। इसी वाणी में धर्म का वास है और दूसरे शरीर धारी गुरु का निषेध कर दिया अर्थात् अब ग्रंथ साहिब के अतिरिक्त गुरु और धर्म अन्य नहीं है।

परमेशः पिताऽस्माकं, मानवा भ्रातरो वयम्।
ध्यानं तस्य जपं तस्य, लोकयात्रासु संगते।।४०।।
परमात्मा ही हम सबका पिता है। हम मनुष्य आपस में भाई जैसे रहें अपने जीवन के कार्यों में तथा संगत में उसी परमात्मा का ध्यान और जप करते रहें।

स्वयं स्फूर्तमिदं तत्वं, स्वतन्त्रं सर्वतोमुखम्।
यस्मिन् सञ्जायते नूनं, दशमेशप्रियो भवेत्।।४१।।
अपने आप सब ओर से स्वतन्त्र ज्ञान रूपी यह तत्व जिस मनुष्य में प्रकाशमान हो जाये, वही दशमेश गुरु गोविन्द सिंह का प्रिय शिष्य बन जाता है।

या समाजं च धर्मं यशो गौरवं, पालयित्री च गोविन्द-रायाश्रयी।
तेजसो वृद्धिकर्त्री श्रुता सत्कथा, कीर्तितैषा गुरोः श्रीधरी स्रग्विणी।।४२।।
जो समाज, धर्म, यश और गौरव का पालन करने वाली, गोविन्द राय के आश्रय वाली, तेज को बढ़ाने चमकाने वाली उत्तम कथा सुनी थी। गुरु के गुण गाने वाली उस कथा को इन श्लोकों की शोभाशालिनी माला में गूंथ दिया गया है।

इति श्री दशमेशचरितानुसन्धाने जीवनमूल्यदर्शने प्रथमः सर्गः।।१।।

अथ द्वितीयः सर्गः

संसार-तापेन निपीडितेभ्यः, पथ्या चिकित्सा प्रभुनामजापम्।
दिदेश यो मार्गमिमं जनेभ्य, आद्यं गुरुं नानकमानतास्त्तम्।।१।।

जो लोग संसारिक संताप से परेशान हो रहे हैं, उनके लिए हितकारी इलाज भगवान का नाम जपना ही श्रेष्ठ है। यह मार्ग जिसने लोगों को दिखाया उन आदिगुरु नानक देव महाराज को हम प्रणाम करते हैं।

यः सिक्खधर्मो जनतासु दृष्टः, सशास्त्रयुक्तो गुरुव्यक्त एव।
विलोक्यते साम्यमयो जनेषु, प्रस्थापितोऽसौ गुरुनानकेन।।२।।

लोगों में जो सिक्ख धर्म का स्वरूप दिखाई दे रहा है वह गुरुओं का बताया हुआ शास्त्र सम्मत धर्म है। यह जनता में समानता सिखाने वाला पन्थ ही गुरुनानक देव महाराज द्वारा स्थापित किया हुआ धर्म है।

गुरोः पदं सः प्रथमं बभार, ख्यातिं प्रयातः सहजाभिव्यक्त्या।
श्रद्धां गतो मुस्लिम-हिन्दुलोकः, श्रुत्वोपदेशान् श्रुतिसारमूलान्।।३।।

वे गुरु नानक देव महाराज प्रथम गुरु हुए और स्वाभाविक प्रवचनों के माध्यम से लोक प्रसिद्ध हो गये। हिन्दु और मुस्लिम समुदाय के लोगों ने शास्त्रों का मूल तत्व स्वरूप उस उपदेश को सुनकर श्रद्धा व्यक्त की।

ब्रूते स जापं धृतिशान्तिमूलं, प्रयान्ति दुःखानि सुखानि सूते।
आनन्दवाहो स्रवते हृदन्ते, संकल्पसिद्धिर्भवतीति नूनम्।।४।।

उन्होंने कहा कि जप धैर्य और शान्ति का मूल हैं। इससे दुःख बीतते हैं और सुख शान्ति होती है हृदय में आनन्द की सरिता बहती है। निश्चित रूप से संकल्प में सफलता मिलती है।

सर्वं करस्थं गुरुसेवयैव, त्यागो धृतिस्तत्र यदा प्रकृष्टौ।
नेता पदं तं परमेश्वरस्य, प्रकामविश्वासकरो गुरोर्यः।।५।।

गुरु की सेवा से सब कुछ हस्तगत हो जाता है यदि गुरु के वचनों में त्याग और धैर्य पूरा हो। जो गुरु के वचनों पर पूर्ण विश्वास करता है, उसे सद्‌गुरु परमात्मा तक पहुंचाता है।

सः नानकोऽभून्ननकानजन्मा, भजन् गृहस्थं विरतो जगत्याम्।

सन्देशमीशस्य जनेषु दातुं, सद्धर्मयात्रां भुवने चकार।।६।।
वे गुरु नानक महाराज शेखुपुरा (ननकाना) में उत्पन्न हुए। गृहस्थ भोगते हुए भी सांसारिक बन्धनों से विरक्त थे। उन्होंने परमात्मा का संदेश जन–जन तक पहुंचाने के लिए संसार में धार्मिक उद्देश्य से यात्राएं कीं।

कश्मीरलङ्के त्वफगानरूसौ, बङ्गं च वर्मां स गतः पदातिः।
निलीय भेदान्तु विमृज्य जातीर्मनो जहार भजनानि गायन्।।७।।
वे गुरु नानक महाराज पैदल यात्रा करते हुए कश्मीर, अफगानिस्तान, रूस, लंका, बंगाल और वर्मा गये। उन्होंने मनुष्यों में भेदभाव नष्ट किया, जातियों का सफ़ाया किया। वे भजन गाते हुए लोगों का मन अपनी ओर आकर्षित कर हर लिया करते थे।

समाप्य यात्रां करतारपुर्याम्, आसादिवारं जपुजीं प्रभाते।
सायन्तने सोहिलपाठकः स धर्मक्रिय-निष्ठमतिः पपाठ।।८।।
महाराज गुरु नानक अपनी यात्रा समाप्त करके करतारपुर में सबेरे आसादिवार तथा जपुजी पुस्तक का पाठ तथा सांयकाल को सोहिला का पाठ धार्मिक क्रिया में संलग्न बुद्धि से पढ़ते थे।

समागमे योग्यतमं स्वशिष्यं, गुरोः पदं. स· यमयुक्त पूर्वम्।
स सेवकेष्वङ्गददेव आसीत्, सेवा कृता सा फलिता तदानीम्।।६।।
उन्होंने अपने जिस योग्यतम शिष्य को विचार कर समागम में गुरु पद पर नियुक्त किया,वे सेवक में अगंद देव महाराज थे।गुरु अगंद देव महाराज की सेवा ने उस समय उन्हें सफल बनाया था।

ब्रबीति वल्गा (रश्मिः) प्रभुहस्तगाऽस्ति, प्राणी स्वकृत्यस्य फलं च भुंक्ते।
दाता प्रभुर्मानव एष भोक्ता, नान्यत्र तृप्तिं लभते मनुष्यः।।१०।।
गुरु अंगद देव महाराज जी कहते थे, लगाम तो भगवान के हाथों में रहती है। मनुष्य अपने किये कर्म का ही फल भोगता है। प्रभु देने वाला है और मनुष्य भोगने वाला है। मनुष्य को और कहीं से संतुष्टि नहीं मिलती है।

गुणाः पुरस्कारमया विभान्ति, प्रयान्ति दण्डात्मकतां च दोषाः।

स्वदत्तमात्रं लभते मनुष्यः, स्वकर्मसृष्टं खलु पापपुण्यम्।।११।।
जीवन में सद्‌गुण भगवान का दिया इनाम है और बुराइयां दण्ड के रूप में होती हैं। मनुष्य अपना दिया ही पाता है। पाप और पुण्य अपने कर्मो से ही उत्पन्न किये जाते हैं।

ततस्तृतीयेशपदे बभूव, स माननीयोऽमरदासदेवः।
धातुर्लिपिं यो न विलोपनीयां प्रभोऽनुकम्पाऽनुभवेन प्राह।।१२।।
तब तृतीय गुरु के रूप में माननीय अमरदास जी महाराज का पदार्पण हुआ। उन्होंने प्रभु की दया और अपने अनुभव से कहा की विधाता के लिखे हुए लेख को कोई भी नहीं मिटा सकता है।

स संगते पङ्क्तिमयं च भोजनं, स्त्रीणां सभासु गमनोपवेशम्।
सतीव्रतं संयमशीलमाह, गृहेऽपि संन्यस्तमनो बभाषे।।१३।।
उन्होंने संगत में (लोगों के समूह को) पंक्ति में समान रूप से(भेदभाव बिना) भोजन करना सिखाया। स्त्रियों को सभा में जाना, बैठना, शब्द सुनना प्रारंभ किया। संयमशील आचरण को सती व्रत कहा और गृहस्थ निभाते हुए भी मन को सन्यासी रखना सिखाया।

न खेद-दुःखं रुदनं विषादं, गुरौ गते ब्रह्मणि शोचनीयम्।
ज्ञानेन दीप्तं शुभमात्मतेजो, न नश्यति श्रीपतिदृष्टिवर्ति।।१४।।
उन्होंने कहा कि गुरु के ब्रह्मलीन (मृत्यु) हो जाने पर खेद, दुःख रोना या विषाद नहीं करना चाहिए। ज्ञान से प्रकाशमान शोभायमान आत्म तेज नष्ट नहीं होता है। उसे प्रभु देखता है। परमात्मा उसे अपनी शरण में रखता है।

प्रभो प्रशंसा तव नाम मूला, निन्दन्तु विज्ञा न तु त्वां त्यजामि।
यावद् भवान् रक्षति कोऽपकर्त्ता, ब्रूते चतुर्थो गुरु-रामदासः।।१५।।
हे प्रभु आपके नाम में प्रशंसा है। विशेष ज्ञानी मेरी निंदा करें, फिर भी मैं आपको नहीं त्याग सकता हूं। क्योंकि जब तक आप रक्षा करने वाले हैं, कोई बुराई नहीं कर सकता है। चतुर्थ गुरु रामदास महाराज का यह उपदेश था।

अमृत्सरं स नगरं चकार, धर्मागमाय हरिमन्दिरं च।
विच्छिद्य भेदं प्रभुसगंताय, प्रवेश-संकीर्तन-भोगमाह।।१६।।
उन्होंने अमृतसर नगर (गुरु का चक) की नींव रखी और धर्म वार्ता सुनने को हरिमंदिर बनाया। उन्होंने भेदभाव नष्ट कर प्रभु की संगति पाने के लिए मंदिर में प्रवेश, कीर्तन और भोग पाना अभीष्ट कहा है।

द्वाराणि सन्त्यस्य चतुर्दिशासु, स्थानं गुरूणां वचनानि श्रोतुम्।
अमृत्सरं पावनजीवनानां, तत् सिक्खधर्मस्य ललामभूतम्।।१७।।
हरिमंदिर के दरवाजे गुरुओं की वाणी सुनने को चारों दिशा में खुले हैं और अमृत का सरोवर चारों ओर है। यह पवित्र जीवन वाले सिक्खधर्म का रत्न भूत स्थान है।

तमेव सत्यं गुरुशिष्यमाह, स्नात्वा जपेन् नाम हरेः प्रभाते।
शृणोतु शब्दं चरतु स्वकर्म, संसारवृत्तिं ससुखं विधातुम्।।१८।।
उन्होंने कहा कि सच्चा शिष्य वह है, जो सवेरे की अमृत बेला में नहा कर प्रभु का नाम जपता है। शब्द (कीर्तन) सुनता हो, अपना काम करता हो ताकि सुख–पूर्वक सांसारिक जीवन चल सके।

यस्मिन् गृहे श्री हरिगीतिरस्ति, सौभाग्यभाजं सहजं गृहं तत्।
प्रभोः कृपा वर्षति तारणाय, गिरां शुभामर्जुनदेव आह।।१६।।
जिस घर में भगवान का गुणगान होता रहता है। उस घर में स्वाभाविक सौभाग्य प्राप्त होता है। उस घर में प्राणि मात्र को पार लगाने को भगवान की कृपा बरसती रहती है। यह शुभवाणी गुरु अर्जुन देव महाराज ने कही थी।

'अमृत्सरं' जीवनदायकं स, नव्यं चकार 'हरिमन्दिरं' च।
गिरां गुरुणां कथितां तदादि-ग्रंथे चकार लिपिबद्धरूपे।।२०।।
गुरु अर्जुन देव महाराज ने हरिमंदिर का नव निर्माण किया और जीवन देने वाले अमृतसर सरोवर का सम्पूर्ण व्यापक रूप बनाया। उन्होंने गुरुओं की वाणी को भी आदिग्रन्थ में लिपिबद्ध रूप से संकलित किया (स्वरूप प्रदान

किया) गुरु ग्रन्थ साहिब का सम्पादन किया।

'सुखः मणिः' भक्तिरसायनं तज्, ज्ञानस्य तेन रचितं समग्रम्।
पठन्ति सिक्खाः सततं सुखाय, स्वाध्यायहेतोः प्रभुचिन्तनाय।।२१।।

उन्हांने ज्ञान की पोथी 'सुखमणि' पुस्तक की रचना भक्ति के रस के अमृत के रूप में की, जिसे शिष्य (सिक्ख लोग) सुख पाने को, स्वाध्याय में, भगवान का चिन्तन करने के लिए सदा निष्ठापूर्वक पढ़ते हैं।

स राजकोपात् खुशरूमरक्षत्, सन्त-स्वभावेन विधूय शाहम् (भूपम्)।
कारामुषित्वाऽऽत्मबलिं ददौ सः, स्वधर्मनिष्ठस्त्रिदिवं जगाम।।२२।।

उन्होंने सन्त की मानवमात्र पर दया के भाव से बादशाह के पुत्र खुशरु की रक्षा की और बादशाह की भी परवाह नहीं की। बादशाह के कोप से वे जेल में कष्ट भोगते रहे, अपनी जीवन की बलि दे दी, सन्त धर्म पर दृढ़ रहकर स्वर्गलोक सिधार गये।

षष्ठे पदे वंशगते गुरोर्यो, गोविन्दनामा हरिशब्द पूर्वः।
दुर्भावहीनं हृदयं स आह, कष्टानि नैवास्य तुदन्ति चित्तम्।।२३।।

हरिगोविन्द जी महाराज इस वंश परम्परा मे षष्ठ गुरु हुए जिन्होंने कहा कि हृदय को दुर्भावों से मुक्त करने पर चित्त को कष्ट नहीं सताते हैं।

शान्ति-प्रियेषु प्रबलानरीन्तान्, विचार्य शाठ्यं शमनाय तेषाम्।
शास्ता स शस्त्रास्त्र-विधौ प्रचण्डः, शिष्यान् समस्तान् सदृशं चकार।।२४।।

उन्होनें अपने शान्तिप्रिय शिष्यों में उन दुश्मनों की शठता का विचार कर उसकी शान्ति के लिए शस्त्रास्त्र में स्वयं भी निपुण बन कर शिष्यों को भी वैसा ही शस्त्रधारी उत्साही वीर बनाया।

यात्रासु युद्धेषु समोपदेष्टा, शास्त्रेषु शस्त्रेषु शिवो नतानाम्।
अकालमञ्चस्य विधायकोऽभूद्, योगे च भोगे स समो निषण्णः।।२५।।

आप महाराज अपनी धार्मिक यात्राओं में, युद्धों मे, शास्त्रों की और शस्त्रों की शिक्षा देते थे। विनीतों के कल्याण कारक थे। उन्होंने अकालतख्त क

निर्माण किया। वे योग और भोग में समभाव रखते थे।

स सप्तमः श्री हरिरायदेवो, जगाद सिद्धिर्निधयः सुखानि।
ज्ञानं च ध्यानं मतिबुद्धिप्रज्ञाः, नाम्नो जपात् सर्वमिदं हि लभ्यम्।।२६।।

उन सप्तम श्री हरिराय देव महाराज ने कहा कि आठों सिद्धियां,नवो निधियां और सभी सुख, ज्ञान, ध्यान, मति–बुद्धि–प्रज्ञा ये सब प्रभु के नाम के जप–चिन्तन से सुलभ होती हैं।

सः वीतरागो सदयो जनेषु, शब्देषु श्रद्धां विपुलां बभार।
यो मालवेषु प्रसृतः प्रचारः, स सिक्खपन्थस्य विशालतां गतः।।२७।।

वे वीत राग, लोगों पर दया करने वाले महापुरूष थे। उनकी शास्त्रों पर बड़ी श्रद्धा थी। उनके द्वारा मालव प्रदेश में किया गया धार्मिक प्रचार सिक्ख पन्थ को विराट रूप देने वाला था।

ततो गुरुः श्री हरिकृष्णरायः, पित्रा नियुक्तोऽल्पवयो बभूव।
दिल्लीं प्रयातः पथि रुग्णदीनान्, त्रातुं जनान् स प्रभुमारराध।।२८।।

तदनन्तर पिताश्री हरिराय महाराज द्वारा छोटी उमर में श्री हरि कृष्ण राय महाराज को गुरु की गद्दी प्रदान की गई। दिल्ली को प्रयाण करते हुए वे रास्ते में ही रोगी, गरीब लोगों की रक्षा के लिए भगवान की आराधना में लग गये। (आरोग्य हेतु विनती करते रहे।)

अहो विधातुः फलतेऽत्र लोके, विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तिः।
यथा दयालुर्वृणुते स्वमृत्युं, स्वान्ते निगृह्याऽखिल-लोक-दुःखम्।२६।।

आश्चर्य है कि विधाता की चित्तवृति बड़ी विचित्र रूप से फल देती हैं जैसा कि दयालु पुरुष सब लोगों के समस्त दुःखों को अपने हृदय में जमाकर उन्हें सुखी करने के लिए अपनी बलि (मृत्यु) की मांगं परमात्मा से करता है।

स्वंमृत्युकालं त्वरितं विभाव्य, दायाद्यरक्षां कुशलेन कर्तुम्।
सम्प्रेष्य दूतं हरिकृष्णरायो, मुद्रामदात्तेगबहादुराय।।३०।।

श्री हरिकृष्ण राय ने त्वरित अपनी मृत्यु आती देख कर गुरु परम्परा के दायाद्य की रक्षा करने के लिए दूत को भेजकर गुरु तेगबहादुर को गुरु की गद्दी के अधिकार की मुद्रा प्रदान कर दी।

गुरौ प्रयाते हरिरायकृष्णे, भृशाकुलाः शिष्यगणाः समन्तात्।
उपायनानि विविधानि नीत्वा, नता गुरुं तेगबहादुरं तम्।।३१।।
गुरु हरिरायकृष्ण के प्रयाण करने के बाद व्याकुल शिष्यगण सभी ओर से अनेक भेंट लेकर गुरु खोजते हुए तेगबहादुर के पास पहुंचे।

संसार भोगाद् विरतो हि बाल्यान्, नम्रः सुशीलो दयितो न तृष्णः।
गुरुः प्रतिष्ठो नवमस्तदानीं, सुसेवकस्तेगबहादुरोऽभूत्।३२।।
वे गुरु तेगबहादुर बचपन से ही संसार के भोगों से विरक्त, नम्र, सुशील दयालु और तृष्णाहीन थे। ये सुंदर सेवक तेगबहादुर नवम गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हुए।

शिष्यान् समस्तान् उपदिश्य मार्गं, परम्परां तामनुमन्यमानः।
निर्माय केन्द्रं कहलूरभूमौ सिषेव स्वां धर्मलतां प्ररूढाम्।।३३।।
उन्होंने सभी शिष्यों को अपने मार्ग का उपदेश देकर उस परम्परा का अनुमोदन करते हुए करतारपुरी में केंद्र बनाकर बढ़ी हुई उस धर्म की बेल की सेवा करने लगे।
सन्दिश्य सर्वत्र यथोपदेशं, कालानुरूपां निखिलां व्यवस्थाम्।
संस्थाप्य योग्यान् पुरुषान् नियोगे, गुरुः प्रचारं विततं चकार।।३४।।
उपदेश के अनुरूप सर्वत्र शिष्यों को संदेश भेजकर समय के अनुकूल सारी व्यवस्था करके योग्य पुरुषों को कर्तव्य में लगाकर गुरु ने धर्म प्रचार को व्यापक किया।
स धर्मयात्रां कृतवानपर्णां, विहारबंगाऽसम-कामरूपाम्।
तदन्तराले तनयं तु लेभे, गोविन्दरायं दशमेशसंज्ञम्।।३५।।
उन्होंने बिहार, बंगाल, आसाम के कामरूप प्रदेश की उत्थान वाली यात्रा की। इसी बीच में उन्हें दशमेश गुरु गोविन्द राय पुत्र रूप में प्राप्त हुए।

इति श्री दशमेश-चरितानुसन्धाने पूर्वगुरु परम्परायां द्वितीयः सर्गः।।

अथ तृतीयः सर्गः

रश्मिः श्रियो मानव-संस्कृतेर्वा, यत्रोद्गता योगिबुधैकगम्यः।
हिमाद्रिराजो भुवि देवतात्मा, निगूढतत्त्वः प्रथितः पृथिव्याम्।।१।।
समृद्धि की किरणों और मानव संस्कृति का जहां उद्गम हुआ, योगी और बुधजनों का ज्ञेय तत्त्व, ज्ञान को निहित रखने वाला देवतात्मा पर्वतराज हिमालय पृथिवी में प्रसिद्ध है।

शिवालये तत्र तु सप्तशृङ्गे, 'श्रीहेमकुण्डं' पयसां निधानम्।
सुवासितं पुष्पचयैः समन्ताद्, विलासितं देववधूदुकूलैः।।२।।
वहां कल्याण के घर पर्वतराज हिमालय के सप्तशृंगपर्वत की चोटी के मध्य में स्वच्छ जल का भंडार 'श्री हेमकुण्ड' नामक दिव्य सरोवर शोभा देता है। इसके चारों ओर पुष्पों की सुगन्ध बहती रहती है और देवाङ्गनाओं के दुपट्टों का विलास होता रहता है।
प्रीणाति नित्यं मरुतां गणोऽत्र, तपस्थली सिद्धसुरर्षिजुष्टा।
ध्यानाय रत्नाचितगह्वराणि, ज्योतींषि भान्ति प्रतिबिम्बितानि।।३।।
समस्त मरुद्गण यहां पर सदा प्रसन्न रहते हैं सिद्ध, देव, ऋषियों से सेवित तपस्या का उत्तम स्थान है। ध्यान के लिये रत्नों से भरीं गुफाएं हैं। जल में प्रतिबिम्बित होती हुई ज्योतियां शोभा देती रहती हैं।

दिव्यांशभावः परमस्य पुंसः, तत्तीरसेवी तपसां विभूतिः।
आज्ञामकालस्य विधातुकामो, भारं भुवो हर्तुमिहावतीर्णः।।४।।
उसके तट का सेवन करने वाली तपस्या की मूर्ति, परमात्मा के दिव्य अंश इस गुरु की जीवात्मा ने अकालपुरुष की आज्ञा को पूर्ण करने के लिए, भूमि का भार हरण करने के लिए यहां पटना में जन्म लिया।
धन्या वदान्या खलु गूजरी सा, प्रकाशमाना पटनापुरी च।
गोविन्दरायेण जनिं गृहीत्वा, नीते उभे श्लाघ्यतमे पदे द्वे।।५।।
श्री गोविन्दराय महाराज के जन्म लेने से माता गूजरी यशस्विनी और धन्य हो गई एवं पटना नगरी भी यशस्विनी हो गई थी। इन दोनों को हमेशा के लिए प्रशंसा का स्थान मिल गया था।
प्रभोः प्रकाशो भुवमागतोऽत्र, द्रष्टुं गतो भीषणशाहसन्तः।
समं परीक्ष्य जलदुग्धपात्रे, मन्ये प्रियं मुस्लिमहिन्दुमध्ये।।६।।

गुरु के जन्म पर 'यहां भूमि पर प्रभु का प्रकाश आया है' उसे देखने के लिए भीषण शाह नामक मुस्लिम संत पहले आए। उन्होंने दूध और जल के पात्र को परीक्षार्थ सन्मुख रखकर हिन्दू और मुसलमानों का समान रूप से प्रिय जन इन्हें पाया था।

तेनोक्तमेषो भुवनैकवन्द्यो, धर्मस्य सूर्यः कमलाकरोऽसौ।
शास्ता खलानां भविताऽरिजेता, नेता सदाचार-समर्पितानाम्।।७।।
उस (भीषण शाह संत) ने कहा कि यह संसार में सबके प्रणााम के योग्य हैं, धर्म के सूर्य हैं, कमलवासिनी लक्ष्मी को उत्पतिस्थान हैं, यह दुष्टों को दबाने वाला, शत्रुओं को जीतने वाला, सदाचार के प्रति समर्पित लोगों का नेता होगा।

ववर्ध सौम्यः प्रथितः स पित्रा गोविन्द-नाम्ना शिशुलीलयैव।
मनांसि मुधान्यभवन्नराणां, चमत्कृता सा वसतिस्तदाऽऽसीत्।।८।।
पिता द्वारा गोविन्द नामकरण करने से प्रसिद्ध वह बालक बाल–लीला करता हुआ घर में बढ़ने लगा। (उनके दर्शन से) लोगों के मन–मोहित होते थे। वह बस्ती उस समय चमत्कार वाली हो गई थी।

रामायणं मातृमुखेन पीत्वा, कथासुधां भागवतीं द्विजेभ्यः।
गोविन्दरायो महिमानमाप, स्मरन् पुनर्जन्ममयीं कथां स्वाम्।।९।।
पूज्य गूजरी मां से रामायण की कथा को पीते हुए, ब्राह्मणों से भागवती–कथा सुनते हुए अपनी पुनर्जन्म की कथा को याद करते हुए जैसे श्री गोविन्दराय महिमा (बढ़ोतरी) को प्राप्त हुए।

किरीटकेयूरपिषङ्गवासो, बिभर्ति चापं नृपतित्वलक्ष्म।
चिक्रीड युद्धैः सखिभिः कदाचिद्, दुर्गाणि भित्त्वा विजयं ब्रवीति।।१०।।
वह कभी मुकुट, बाजूबंध, पीले वस्त्र पहने राजचिह्न धनुष धारण करता था। कभी मित्रों के संग युद्ध का खेल खेलता था, कभी दुर्ग भेदकर अपनी जीत बताता था।

गङ्गातटे श्री शिवदत्तविप्रो, गोविन्द-जापे निरतो यदाऽऽसीत्।
उन्मील्य नेत्रे स ददर्श बालं, गोविन्दरायं प्रभुमेव नौति।।११।।
गंगा जी के तट पर श्री शिवदत नामक ब्राह्मण गोविन्द के जप में लगे हुए थे। उन्होंने आंख खोलकर बालक गोविन्द–राय को राम के रूप में देखा और उस को प्रभु मानकर प्रणाम किया।

तस्यैव लीलाघट-भञ्जनेन, रुष्टाः स्त्रियश्चुक्रुशुरेत्य चाम्बाम्।
मातुश्च शापात्सरसः स कूपो, क्षारं गतो मार्दवतां विहाय।।१२।।
उसके खेल में घड़े फोड़ने से औरतों ने आकर मां से आक्रोश प्रकट किया। तब माता (गूजरी) के शाप से वह मीठा कुआं खारे पानी में हमेशा को बदल गया।

गतो विहर्तुं सलिले कदाचिद्, ययाच नौकां महिलां स बालः।
गङ्गाविहाराय विधाय नौकां, सा श्रेष्ठिभार्या तनयानवाप।।१३।।
अब कभी उस बालक ने गंगा जल में विहार के लिए किसी महिला से नाव मांगी। उस सेठ की पत्नी ने उन्हें नाव बना कर दी और अपने लिए पुत्र प्राप्त किए।

राज्ञी तु मैनी च फतेहचन्दो, बालाय भोज्यं ददतुर्गृहस्थम्।
गोविन्दलब्धं चणकीयभोगं, मैनीप्रसादं लभते जनोऽद्य।।१४।।
रानी मैनी और राजा फतेहचन्द ने बालक गोविन्द राय को घर का भोजन (चने) खाने को दिया। गोविन्द का पाया हुआ वह रानी मैनी देवी का चने का प्रसाद लोग अब भी श्रद्धा से पाते हैं।

रिक्तं करं बिभर्षि कङ्कणं क्व? मात्रा स पृष्टः सुरगां जगाम।
क्षिप्त्वाऽपरं तत्र विहस्य प्राह, माया-विमुक्तौ मम पश्य हस्तौ।।१५।।
हाथ खाली है, कंगन कहां है? माता गूजरी के पूछने पर वह बालक गंगा नदी पर गया। वहां दूसरा कंगन फेंक कर बताता हुआ बोला–देखो अब मेरे हाथ माया के बन्धन से छुटकारा पा गये हैं।

बाल्यं व्यतीतं रमणीयलीलं, क्रमेण कौमारवयो ववर्ध।
जनेषु कौतूहलकारकोऽसो, श्रद्धास्पदोऽभूत् प्रतिभानयुक्तः।।१६।।
उनका रमणीय लीला वाला बचपन बीतने लगा और कुमार अवस्था बढ़ने लगी। लोगों में कुतूहल उत्पन्न करने वाला प्रतिभाशाली यह बालक सबका श्रद्धापात्र बनता गया।

निष्पाद्य यात्रां कुशलेन प्राचीं, शिष्यैः समं तेगबहादुरोऽसौ।
बालं ददर्श पटनां समेत्य, ब्रूते प्रभो! त्वां तु लभे समक्षम्।।१७।।
पूर्व प्रदेश की यात्रा को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करके गुरु तेगबहादुर ने शिष्यों के साथ पटना में आकर बालक गोविन्द को देखा और बालक से कहा, हे प्रभो मैंने तुम्हें अपने सामने पा लिया है।

आनन्दपुर्यां तव कार्यहेतोः, प्रयामि रक्षां स्वजनस्य कुर्याः।
कालान्तरे तत्र विधिं समीक्ष्य, प्रमोदमाप्तुं स्वयमेव वक्ष्ये।।१८।।
मैं तुम्हारे कार्य साधने को आनन्दपुर में जा रहा हूं। अपने स्वजनों की रक्षा स्वयं आप करना। कुछ समय पश्चात् वहां की सुविधा–विधि देखकर खुशी पाने के लिए आपको आनन्दपुर आने को कहूंगा।

स तत्र गत्वा वसतिं विधाय, प्रेष्य स्वशिष्यं पटनां तदानीम्।
जुहाव तान् तेगबहादुरश्च, तीर्थेषु यात्रामपि सन्दिदेश।।१६।।
वे तेगबहादुर वहां गये, बस्ती बनाई, तथा तब शिष्य को पटना भेजकर उनको वापस बुलाया और तीर्थ यात्रा करने के लिए भी साथ में संदेश दिया।

अथाऽऽज्ञया तेगबहादुरस्य, मातुर्निदेशेन कृतव्यवस्थः।
प्रेम्णा समाहूय स्वकार्यरक्षां, निर्दिश्य दूतो विससर्ज सर्वान् ।२०।।
अब गुरु तेगबहादुर महाराज की आज्ञा से माता के निर्देश के अनुसार व्यवस्था करके दूत ने सब लोगों को बुलाकर अपने कर्त्तव्य पालन का निर्देश देकर प्रेम से विदा किया।

ततः प्रभाते कृतनित्यकृत्यः, गोविन्दरायो जननीमुपेत्य।
प्रणम्य देवान् परितोष्य शिष्यान्, प्रस्थानयात्रां सजनश्चकार।।२१।।
तब सबेरे नित्यकर्म करके, गोविन्द राज ने मां के पास जाकर, ईश्वर को प्रणाम कर, शिष्यों को पारितोषिक देकर परिजनों सहित वहां से प्रस्थान किया।

काशीं श्रितौ भैरवविश्नाथौ, दृष्टाऽन्नपूर्णां विबुधान् विभाव्य।
विलोक्य शिष्यांश्च शुभाशिषा स, प्रयागराजाय मनश्चकार।।२२।।
काशी में रहने वाले भैरव, विश्वनाथ, अन्नपूर्णा माता को देखकर, देवों को देख करके, शुभ आशीर्वाद से शिष्यों से मिलकर प्रयागराज (इलाहाबाद) जाने का उस (गुरु गोविन्दराय) ने मन बनाया।

स्थित्वा प्रयागे वटवृक्षमूले, स्नातुं त्रिवेण्यां सजनो जगाम।
दृष्ट्वा भरद्वाजपदं शुभं स, श्रीराघवेन्द्राय नमश्चकार।।२३।।
उन्होंने प्रयाग में वट–वृक्ष के मूल में ठहर कर सभी लोगों के साथ त्रिवेणी संगंम पर स्नान किया। भरद्वाज ऋषि का शुभ आश्रम देंखकर श्री रामचन्द्र जी के लिए प्रणाम किया।

प्रयागराजे कृतपुण्यकर्मा, पुरीमयोध्यां स ययौ तु प्राचाम्।
श्रीरामजन्मस्थलयात्रया स, श्रद्धां दधौ पूर्वजदैवतेषु।।२४।।
प्रयागराज में पुण्यकर्म सम्पन्न कर वे पूर्वजों की नगरी अयोध्या में गये। श्री राम के जन्म–स्थल की यात्रा करने से उन्होंने अपने पूर्व जन्मे पुरुष देवताओं के प्रति श्रद्धाभाव धारण किया।

समातृवर्गो मुदमावहन् स, जगाम रम्यां मथुरां पुरीं ताम्।
गोवर्धनं गोकुल-रासभूमिं, वृन्दावनं कृष्णमयं ददर्श।।२५।।
मातृ–वर्ग के संग आनन्द पाते हुए वे रमणीय–नगरी मथुरा गये। उन्होंने

गोव–
र्धन पर्वत, गोकुल की रासभूमि, वृन्दावन को कृष्ण के स्वरूप में देखा।

प्रभावितः स ब्रजमण्डलेन, द्रष्टुं हरिद्वारपुरं प्रतस्थे।
प्रक्रीड्य यत्र गिरिशृङ्खलासु, भागीरथी शान्तिमवाप भौमीम्।।२६।।

ब्रजमंडल के दर्शन से प्रभावित होकर उन्होंने हरिद्वार के दर्शन के लिए प्रस्थान किया। जहां पर पहाड़ की श्रृंखलाओं में क्रीडा करती हुई भागीरथी गंगा ने भूमि में गति की शांति प्राप्त की। (भूमि पर शान्त गति से बह रही है।)

दक्षस्य यज्ञस्थलमत्र पूर्वं, सतीव्रतं स्मारयति प्रकृष्टम्।
चन्द्रप्रभो आश्रमदर्शनानि, धामानि धर्मस्य विलोकितानि।।२७।।

यहां पर दक्ष का यज्ञस्थल पुराने माता सती के व्रत के प्रकर्ष का स्मरण दिलाता है। उन्होंने चन्द्र–प्रभु के आश्रम के दर्शन और धर्म के इन सब स्थानों का अवलोकन किया।

ते ब्रह्मकुण्डे तु कृताभिषेकाः, प्रदाय दानं द्विजयाचकेभ्यः।
पात्राणि गङ्गासलिलैः प्रपूर्य, प्रयाणमानन्दपुराय चक्रुः।।२८।।

उन्होंने हरिद्वार के ब्रह्मकुण्ड में स्नान किया। ब्राह्मणों, याचकों, भिक्षुओं को दान दिया। अपने पात्रों में गंगाजल भरकर आनन्दपुर को प्रस्थान किया।

पित्रा निदिष्टो लखनौरवासं, जेष्ठागृहं सः कृतवान् तदानीम्।
आकर्ण्य तद् भीषणशाहसन्तः, श्रद्धापरो दर्शनमाप भूयः।।२६।।

पिता तेगबहादुर के निर्देश से उन्होंने लखनौर, में जेष्ठानामक शिष्य के घर में निवास किया। उनका यहां पर निवास सुनकर भीषणशाह नामक संत ने वहां उनके दर्शन दुबारा पाये।

विधाय मार्गे मुलतान-यात्रां, प्रत्यागतस्त्वारफद्दीन-पीरः।
गोविन्दरायं भुवि वीक्ष्य सद्यः, पपात पादौ शिविकां विसृज्य।।३०।।

मुलतान की यात्रा सम्पन्न कर वापस आता हुआ आरफद्दीन नामक मुसलमान

पीर रास्ते में ही बालक गोविन्द राय को देखकर तत्काल पालकी छोड़कर जमीन पर उतरकर उनके पैरों में गिर पड़ा।

तमदभुतं वीक्ष्य वदन्ति शिष्याः, पीरो नुतो हिन्दुजने, न योग्यः।
'अल्लाहनूरोऽत्र मया हि लब्धो', जगाद पीरः स्मित-भाषणेन।।३१।।

इस अनोखे कर्म को देखकर शिष्यों ने कहा कि पीर ने एक हिन्दु को प्रणाम किया, यह ठीक नहीं था। "मैंने इसमें अल्लाह का नूर (ज्योति) पाया हैं" पीर ने जवाब में मंद मुस्कान से लोगों से कहा।

सा गूजरी तु लखनौरवासे, धर्मार्थिनी कूपमथादिदेश।
पर्यङ्कयुग्मं गुरुचिह्नभूतं, गाथां गुरुद्वारधृतं व्यनक्ति।।३२।।

उस माता गूजरी ने लखनौर के वास में धर्म कामना से वहां कुआं बनाने का आदेश दिया। वहां गुरुद्वारा में रखा हुआ पलंग का जोड़ा गुरु के स्मृति चिह्न के रूप में कथा कहता है।

सुखेन तत्र सकला उषित्वा, सन्देशमाकर्ण्य कृपालचन्द्रात्।
विश्रम्य भूयः पथि कीर्तिपुर्यां, सानन्दमानन्दपुरं प्रविष्टाः।।३३।।

वहां सभी ने सुखपूर्वक निवास कर कृपाल चन्द से गुरुतेगबहादुर का संदेश पाकर रास्ते में कीरतपुर में विश्राम करके आनन्दपूर्वक आनंन्दपुर बस्ती में प्रवेश किया।

गृहे गृहे दीपमहोत्सवोऽभूद्, द्वारैर्ध्वजैः सा नगरी रराज।
कीर्णाः पथाः स्त्रीपुरुषैः सहर्षं, वर्षैश्च लाजा कुसुमाञ्जलीनाम्।।३४।।

घर--घर में दीवाली हो गई'। दरवाजों और पताकाओं से नगरी आनन्दपुरी शोभा दे रही थी। हर्षपूर्वक स्त्री पुरुषों से, खील, फूल, अक्षतों की बौछार से रास्ते भर गये थे।

विप्रा शुभाशीर्जयकारमन्ये, वर्धापनानि महिला वदन्ति।
नदत्सु वाद्येषु गुरून् प्रणम्य, गोविन्दरायश्च गृहं विवेश।।३५।।

ब्राह्मण शुभाशीर्वाद कह रहे थे, दूसरे लोग जय--जय कर रहे थे। महिलाएं

बधाई–बधाई बोल रही थीं। बजते हुए बाजों के बीच में गुरुजनों को प्रणाम कर गोविन्दराय ने घर में प्रवेश किया।

महोत्सवस्तत्र बभूव भव्यो, दानानि पुण्यानि बहून्यभूवन्।
आजादपूर्णानि गतान्यहानि, प्रमोदकालो गणनां न याति।।३६।।

वहां बहुत बड़ा उत्सव हुआ, बहुत दान पुण्य के कार्य हुए। खुशी से भरे दिन बीतते गये। इस आनन्द के समय की गिनती नहीं हो पा रही थी।

समीक्ष्य विद्याविनयस्य वेलां, भाषाप्रवीणं तनयं विधातुम्।
नियुक्तवान् त्रीन् विदुषस्तदानीं, गुरुर्शिशिक्षुस्त्रिविधां लिपिं सः।।३७।।

अब बालक के विद्या और विनय का अवसर जान पुत्र को तीनों भाषाओं और लिपियों को सिखाने की इच्छा से गुरु ने उस समय तीन विद्वान पुरुष नियुक्त किए।

शस्त्रास्त्रविद्याध्ययने समीक्ष्य, प्रकृष्टचित्तं तनयस्य नूनम्।
स्वयं धनुर्बाणविधिं स सेना-सञ्चालनं दुर्ग-विधिं पपाठ।।३८।।

उन्होंने पुत्र की शस्त्रास्त्र विद्या पढ़ने में चित्तवृति देखकर अपने आप धनुर्विद्या सेना–संचालन और किले के आश्रय की विधि पढ़ाई।

मित्रैः समं क्रीडति मल्लयुद्धं, दुर्गं विधाय विदधाति भङ्गम्।
आरुह्य सोऽश्वे नभसीव धावन्, लक्ष्येषु बाणान् सफलीकरोति।।३९।।

वे दोस्तों से कुश्ती लड़ते थे, किला बनाकर तोड़ते थे, घोड़े पर चढ़ कर मानो आकाश में दौड़ते हुए अपने लक्ष्यों पर बाण चलाकर सफलता पाते रहते थे।

अनागतं तत्समरं गुरोः स्वयं, प्रशामको वै भविताऽऽततायिनाम्।
सङ्कल्प-सिद्धिश्च तथानुवर्तते, संस्कारबीजं हि यथा प्ररोहति।।४०।।

गुरु का स्वयं यह अनागत युद्ध आततायियों को शांत करने वाला होगा क्योंकि संस्कार का बीज वैसा ही उगता है, जैसी संकल्प की सिद्धि होती है।

"इति श्री दशमेशावरण-बाललीला-वर्णने तृतीयः सर्गः"।।३।।

अथ चतुर्थः सर्गः

अथैकदा तेगबहादुरो गुरुः, सम्बोधयामास समागमं मुदा।
तदैव तत्राऽगमनं सभास्थले, कश्मीरदेशस्य द्विजै भृशं कृतम्।।१।।
एक बार गुरु तेगबहादुर प्रसन्नतापूर्वक समागमं को उपदेश दे रहे थे कि उसी समय सभा के मध्य में कश्मीर देश से आंए ब्राहमणों ने तेजी के साथ आगमन किया।

ते ब्राह्मणा दीनमलीनमानसा, नत्वा गुरुं सादरमेवमब्रुवन्।
उपस्थिता त्वां शरणार्थिनो वयं, त्राता भवान् सत्पथसेतुपालकः।।२।।
दीन मलीन मन से उन ब्राहमणों ने गुरु तेगबहादुर को नमस्कार कर के कहा कि हम शरण की इच्छा से आपके पास उपस्थित हुए है, क्योंकि आप सन्मार्ग की मर्यादा को बचाना चाहते हैं।

कश्मीर-देशे निगमागमाधृतं, धर्मं विलुप्तं भवतीति शाश्वतम्।
विधर्मिशाठ्यं विपुलं प्रवर्धते, न रक्ष्यते तत्र सनातनी क्रिया।।३।।
कश्मीर देश में वेद शास्त्रों पर आधारित सारा सनातन-धर्म गायब होता जा रहा है। विधर्मी (मुसलमानों) की धृष्टता बहुत बढ़ रही है। हम सनातन धर्म की पद्धति की रक्षा नहीं कर पा रहे हैं।

औरङ्गजेबो यवनेश्वरोऽधुना, धर्मान्धवृत्या यवनोपरोधिनाम्।
समादिशन्मुस्लिमधर्मवृद्धये, दण्डं वधं हिन्दुमतावधारिणाम्।।४।।
मुस्लिम शासक औरंगजेब ने अब धर्मान्ध होकर मुस्लिम धर्म के रुकावट हिन्दू धर्म मानने वाले लोगों को मुस्लिम धर्म की बढ़ोतरी के लिए दण्ड और वध करने की आज्ञा दी है।

सूत्रं शिखां यज्ञमुपासनादिकं, सर्वं विनष्टं स करोति शासकः।
कश्मीरदेशे त्वफगानशेरकः, न त्वदृतेऽन्यो भुवि दृश्यतेऽधुना।।५।।
कशमीर देश का अफगान शेरक नामक शासक सूत्र, शिखा, यज्ञ, उपासना आदि सब धर्म का आचरण नष्ट कर रहा है। इस समय धरा पर आप जैसा कोई रक्षक हमें दिखाई नहीं देता है।

व्यथां समाकर्ण्य च विप्रप्रार्थनां, विलोक्य तेषान्तु दशां नताननः।
मौनं (तूर्ष्णी) दधौ तेगबहादुरो गुरुः विधिं प्रतीकारकरां विचिन्तयन्।।६।।
उन ब्राह्मणों की प्रार्थना और व्यथा सुनकर और उनकी दशा देखकर सिर झुका कर गुरु तेगबहादुर इसके निराकरण का उपाय सोचते हुए मौन (चुप) हो गये।

उवाच तान् धैर्यजुषां धुरन्धरस्तुरुष्कभाराद् व्यथिता धराऽधुना।
भवेत् समर्थः शरणाय कोऽधुना (भूतले), निपीडितानां स्वशिरो निपातयन्।।७।।
धैर्यधारियों में श्रेष्ठ गुरु ने उनसे कहा कि इस समय तुर्कों के बोझ से भूमि दुःखी है। इस समय अपना सिर कटाकर पीड़ितों को शरण देने में कौन समर्थ है।

आकर्ण्य सर्वे बचनानि सद्गुरोस्तूर्ष्णीं स्थिता नैव ददुस्तदुत्तरम्।
द्रव्यं सुखं भोगमतिः कथं त्यजेज्, जीवन् नरो भद्रशतानि पश्यति।।८।।
सद्गुरु के वचन सुनकर सभी चुप (मौन) हो गये। किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। भोग की बुद्धि वाला धन या सुख कैसे छोड़ सकता है। जीवित रहते हुए मनुष्य अनेक कल्याण की बातें देखता है।

विलोक्य मौनान् जनकं दयापरो, गोविन्दरायः स जगाद बालकः।
नैवास्ति कोऽपि मनुजो भवादृशो, मार्गं प्रतीकारकरं विचिन्तयेत्।।९।।
सबको चुप देखकर पिता से दयालु बालक गोविन्दराय ने कहा कि आपके समान मनुष्य कोई नहीं है, जो इसके निवारण का मार्ग सोच सके।

श्रुत्वा वचांसि क्षणमेव चिन्तयन्, प्रहर्षमापाथ गुरुः स्वमानसे।
कालागते (तस्मिन् क्षणे) नैव शुशोच जीवनं, मेने वरं स्वीकृतिमेवमात्मनः।।१०।।
अब गोविन्द राय की वाणी सुनकर थोड़ी देर सोचते हुए गुरु ने मन में हर्ष प्राप्त किया। समय आने पर जीवन की चिंता नहीं की। उन्होंने अंतःकरण की स्वीकृति को ही श्रेष्ठ माना।

ब्रवीति तथ्यं मम मार्गशोधनं, समर्थशाली नववार्षिकः सुतः।
स्वधर्मरक्षां कुशलं विधास्यति, क्व चिन्तनीया वयसोऽल्पता बुधैः।।११।।
मेरे मार्ग को शुद्ध करने वाला यह समर्थशाली नौ वर्ष का बालक ठीक बोलता है। यह अपने धर्म की रक्षा कुशलतापूर्वक कर लेगा। विद्वान् लोग छोटी उम्र की चिंता कहां करते हैं।

स ब्राह्मणान् तान् मधुरं बचोऽब्रवीद्, यूयं स्वधर्माचरणेषु तिष्ठत।
सन्देशमेतत् त्वफगानशेरकं, कश्मीरपालं त्वथ ब्रूत निश्चितम्।।१२।।
उन्होंने उन ब्राह्मणों से मधुर वाणी में कहा तुम सब अपने धर्माचरण में लगे रहो। कश्मीर के शासक अफगान शेर से मेरी तरफ से इस निश्चित संदेश को बोल देना।

ज्ञातस्त्वया तेगबहादुरो गुरुः, वयन्तु तद्धर्मनिदेशकारिणः।
मोहम्मदं धर्मपथं स याति चेत्, सर्वे करिष्यन्ति गुरोस्तु सम्मतम्।।१३।।
तुम तेगबहादुर गुरु महाराज को जानते हो, हम उनके धर्म की आज्ञा का पालन करते हैं वे यदि मोहम्मद के धर्म मार्ग पर चलते हैं तो हम सब अपने गुरु महाराज की सम्मत बात ही मानेंगे।

विप्रा निशम्याथ गिरां गुरोः श्रियः, शुभाशिषा स्वस्तिपुरस्परं गताः।
स्वधर्मनिष्ठा गुरुणा प्रकाशिता, चान्ये प्रसन्नाः स्वगृहाय निर्गताः।।१४।।
अब गुरु तेगबहादुर महाराज के मुख से शोभा सम्पन्न वाणी सुनकर ब्राह्मण शुभाशीर्वाद कहकर चले गये। गुरु ने अपने धर्म के प्रतिनिष्ठा प्रकट की और अन्य सारी संगत प्रसन्न होकर अपने घर चली गयीं।

कश्मीरदेशं समवाप्य पण्डितास्तं राज्यपालं गुरुवाक्यमब्रुवन्।
तेषां निवेद्यं त्वफगानशेरको, दिल्लीश्वरं दूतमुखेन भाषते।।१५।।
कश्मीर में जाकर पंडितों ने गुरु के वचन को राज्यपाल से कहा। उनकी बात को अफगान शेर ने दूत के द्वारा औरंगजेब को सूचनार्थ बता दी।

औरङ्गजेबस्तु नियुज्य सैनिकान्, गुरुं स दिल्लीगमनाय चाऽऽदिशत्।
तत्रागते तेगबहादुरे जनाः, कारागृहे-त्रासमदुर्भयङ्करम्।।१६।।
औरंगजेब ने सैनिक नियुक्त कर गुरु को दिल्ली जाने को कहा। तेगबहादुर के वहां आने पर उसके लोगों ने जेल में उन्हें भयंकर कष्ट दिये।

हित्वा स्वधर्मं भुवनस्य सर्जकं, त्वं पञ्चवारं भज धर्मधारकम्।
अचाहरूपं जप यत् 'शरीयतं' तस्मादृते काफिरतां गतं जगत्।।१७।।
अपने धर्म को छोड़कर संसार रचने वाले (खुदा) धर्म धारक की पांच बार नमाज पढ़ा करो। शरीयत में बताए अ ाह को जपो। उसके बिना तुम काफिर (धर्मद्रोही) हो गये हो।

चमत्कृतिं योगबलस्य दर्शय, स्वजीवनस्य त्यज वा परम्पराम्।
मोहम्मदं त्वं भज धर्मभावनां, लभस्व भोगान् सह मुस्लिमैर्जनैः।।१८।।
अपने योगबल का चमत्कार दिखाओया अपने जीवन की परम्परा को छोड़ो। मोहम्मद साहब की धर्म भावना को अपनाओ और मुसलमानों के साथ भोग भोगो।

प्रत्युत्तरत्तेगबहादुरो गुरुः, प्रभुः शृणोत्येव निवेदनं हितम्।
भाग्यं च भोग्यं प्रभुणा समर्पित, चमत्कृतिर्नैव शुभाय कल्पते।।१६।।
गुरु तेग बहादुर महाराज ने उत्तर दिया—परमात्मा सबकी प्रार्थना और हित की बात सुनता है। भाग्य और भोग उसके द्वारा समर्पित है। चमत्कार जगत् में कल्याणकारी नहीं होता है।

पन्थेषु सर्वेषु च सिद्धिभावना, पुरातनैः कालवशात्तथाकृता।
स्वभावनां नापि जहामि धार्मिकीं, भयान्नलोभान्न च दूषये ततिम्।।२०।।
पूर्वजों ने सभी पन्थों में सिद्धि की भावना समयानुसार उत्पन्न की है। इसलिए मैं अपनी धार्मिक भावना को भी नहीं त्याग सकता हूं। भय या लोभ से इस परम्परा की निन्दा भी नहीं कर सकता हूं।

औरङ्गजेबस्तु पथो विचालितुं, बन्धान् दृढ़ान् त्रासकृते ततोऽकरोत्।
गुरुर्न भीतो न नतःस पीडया, स्वान्ते समर्थो न विचाल्यते हठात्।।२१।।
औरंगजेब ने उन्हें धर्म–मार्ग से विचलित करने के लिए त्रास देने को

बन्धनों को और मजबूत किया। गुरु इस पीड़ा से न डरे और न झुके। क्योंकि भीतर से मजबूत व्यक्ति को स्वमार्ग से नहीं हटाया जा सकता है।

स वै गुरुः स्वं तनयं परीक्षितुं, लिलेख जातं मम बन्धनं दृढ़म्।
अध्यात्मशक्तिर्विलयं प्रयाति सा, त्राणस्य मार्गो मम नैव दृश्यते।।२२।।
उस गुरु महाराज ने परीक्षा करने को पुत्र गुरु गोविन्द राय को लिखा कि मेरे बन्धन मजबूत हो गये हैं। अध्यात्म की शक्ति विलीन हो रही है। मेरी रक्षा का मार्ग नहीं दिखाई देता है।

त्रातुं गजं ग्राहमुखाद् यथा हरिः, स नो सहायो भव वीर साम्प्रतम्।
अधीत्य पत्रं जनकं विचारयन्, गोविन्दरायस्तु लिलेख तं पुनः।।२३।।
हाथी को ग्राह से बचाने को जैसे हरि थे, उसी तरह हे वीर हमारे बचाव में तुम सहायक बनो। पत्र पढ़कर पिता की स्थिति का विचार करते हुए गोविन्दराय ने उन्हें लिखा।

भवेद् बलं, बन्धननाशमेष्यति, सर्वं प्रयात्येव जगत्युपायताम्।
स्वहस्तगं ते सकलं तु भूतले, त्राणाय ग्राहाद् भवदीय-शिक्षणम्।।२४।।
यदि बल होता है तो बन्धन नष्ट होंगे, संसार में सभी उपाय हो जाते हैं। आपका तो सारा संसार अपने हाथ में है। काल जैसे ग्राह से रक्षा करने को आपकी शिक्षा पूर्ण समर्थ है।

अधीत्य पुत्रस्य तदुत्तरं मुदा, निर्णीय तं पन्थहिताय सद्गुरुम्।
सम्प्रेष्य पञ्चान् पणकान् तदाऽकरोत्, स श्रीफलं तत्तिलकाय तूर्णम्।।२५।।
पुत्र के उस उत्तर को पढ़कर अपने पन्थ के लिए उन्हें सद्गुरु के रूप मे निर्णय कर पांच पैसे और नारियल भेजकर गुरु महाराज ने जल्दी उनका तिलक कर दिया, उत्तराधिकारी बनाया।

औरङ्गजेबो विविधैरुपायनैः, प्रलोभनैर्दैहिककष्टदण्डनैः।
आस्था न शक्तः परिवर्तितुं यदा, बधायं चाज्ञां प्रददौ स्वसैनिकान्।।२६।।

औरंगजेब जब अनेकों भेदों से, लाभ लालचों से शरीररिक कष्टों और दण्डों से तेगबहादुर जी की आस्था नहीं बदल पाया तब जल्लादों को उनको वध करने की आज्ञा प्रदान कर दी।

कृतं नृशंसैर्मतिदासकर्तनं, दीप्ते हुताशे सतिदास भर्जनम्।
तप्तोदके तत्र दयालपातनं, भीतिं न यातस्य गुरोश्च मारणम्।।२७।।
उन दुष्ट जल्लादों नें मतिदास को आरे से चीर डाला, सतिदास को जलती आग में भून डाला, दयालदास को खौलते पानी में उबाल डाला, इस त्रास से भी भयभीत न होने वाले गुरु तेगबहादुर महाराज को सिर काटकर मार डाला।

श्रीमार्गशीर्षे शुभापञ्चमीतिथौ, चतुष्पथे तद्यवनेश्चरस्य।
साम्राज्यशक्तिं परिभूय तेजसा, गुरुर्गतस्तेगबहादुरो दिवम्।।२८।।
श्री मार्गशीर्ष मास की पंचमी तिथि को चौराहे पर मुस्लिम राजा की साम्राज्य की शक्ति को अपने तेज से रिस्कार करते हुए गुरु तेगबहादुर स्वर्ग चले गये।

प्राणान् ददौ सुत्रशिखे च रक्षिते, स ज्योतिषा मेलमवाप धर्मभृत्।
तदानने नैव भयं न दीनता, चीत्कारपूर्णास्तु दिशो दश श्रुता।।२६।।
उन्होंने अपने प्राण देकर सूत्र, शिखा और धर्म की रक्षा की। वह ज्योति में शीघ्र समा गये। उनके मुख पर न भय था और न दीनता थी। केवल दशों दिशाओं में चीत्कार सुना गया।

प्रचण्डवात्या स्थगितेऽवलोकने जेता तु शीर्षेण सहैव निर्गतः।
भ्राता लखी तेगकबन्धकं तदा, प्रच्छाद्य वासैः शकटे निनाय तत्।।३०।।
उस समय तेज आंधी से दृष्टि बन्द हो गई थी। भाई जेतागुरु के सिरे के साथ निकल गये और तब भाई लखी गुरुतेगबहादुर महाराज के धड़ को उठाकर कपड़ों से ढककर अपनी गाड़ी से ले गये।

तान् विस्मितान् तेगबहादुरोऽकरोत्, कदापि केनापि न तादृशं श्रुतम्।
जयेज् जयेज्जीवनधर्मदायको, गुरुर्महान् चन्द्रदिवाकरौ यथा।।३१।।
श्री गुरु तेगबहादुर महाराज ने उन्हें चकित कर दिया था ऐसा कभी किसी ने नहीं सुना था। जीवन–धर्म देने वाले उन महान गुरु की जय जयकार होती रहे जब तक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे।

इति श्रीदशमेशचरिते गुरुतेगबहादुरबलिदाने चतुर्थः सर्गः।।४।।

अथ पंञ्चमः सर्ग

स्वर्गं गते हसति तेगबहादुरे सा, गाथा गुरोर्भुवनभूषणतां जगाम।
शीर्षं प्रगृह्य धरणौ पतनाद्धिपूर्वं, गोविन्दमाप तरसा गुरु-भक्त एकः।।१।।
हंसते हुए गुरु तेगबहादुर महाराज के स्वर्ग गमन पर वह गाथा सारे भुवन की शोभा बन गई। पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही एक गुरु भक्त शिष्य जेता ने सिर संभाल कर शीघ्र ही गुरु गोविन्द राय महाराज के पास पस्थान किया।

श्रुत्वा पितुः विमल कीर्तिकरां बलिं तां, यज्ञोपवीत-तिलकादिक-धर्मरक्षाम्।
सत्यार्थिने यवनराजकृतं च धाष्ट्र्यं, गोविन्दरायहृदये दहनं ददाह।।२।।
पिता की निर्मल कीर्ति करने वाली यज्ञोपवीततिलकादि धर्म के आचरण के सत्य की रक्षाकी बलिदान की घटना को सुनकर और यवनेश्वर औरंगजेब की धृष्टता को जानकर गोविन्द राय के हृदयं में आग जलने लगी।

अन्त्येष्टिकर्म शिरसो विधिना विधाय, शोकं व्यतीय गुरु-संगतबन्धुवर्गः।
उष्णीषबन्धनविधौ तिलकं चकार, गोविन्दराय-शिरसि गुरु-गौरवाय।।३।।
विधिपूर्वक उस शिर की अन्त्येष्टि क्रिया करके, शोक छोड़कर गुरु की संगत के सभी बन्धु वर्ग ने गोविन्द राय महाराज के सिर पर गुरु के गौरव की रक्षा के लिए पगड़ी बांधते हुए तिलक किया।

नित्यं नमन्ति पथिका गुरुमार्ग-निष्ठा, श्रद्धां सुखं प्रमुदिता हृदये भजन्ति।
निर्मान्ति धर्मभवनानि समागतेभ्यो, गायन्ति पूर्व-गुरु-गीति-पदानि पान्ति।।४।।
गुरु के मार्ग के पथिक वहां रोज प्रणाम करते थे। उनको मन में श्रद्धा और सुख मिलता था। आने वालो के लिए वे धर्मशाला (विश्रामघर) बनाते थे और पूर्व गुरुओं के पदों को गाते थे, रक्षा करते थे।

श्रेयांसि तत्र वचनानि परिस्फुरन्ति, विश्वासघात घटना विवृता भवन्ति।
श्री राघवेन्द्रचरितं बहुमन्यमाना, तां धीर जीवन ततिं परिपोषयन्ति।।५।।
वहां कल्याण कारिणी वाणी फैलती थी। विश्वासघात की घटनायें खुलती थी। अर्थात् पुरुषोत्तम राम की जीवन चरित्र की बड़ी मान्यता थी। इस ध
ीरता की जीवन पद्धति को पाला जा रहा था।

सद्वंश कीर्तिकरमार्गमिदं हि प्रोक्तं, तृप्ता भवन्तु पितरः सुतवृत्तकीर्त्या।
ब्रूते गुरुर्भवतु पीठमिदं जनानां, धमार्थ कामपरमार्थकृते समेषाम्।।६।।
अच्छे की परम्परा है कि बेटों के आचारण की प्रसिद्धि से पितर तृप्त होते हैं। शिष्यो ने गोविन्दराय महाराज से कहाकि यह स्थान धर्म, अर्थ, काम और परमार्थ का आश्रम बने।

श्रद्धामयो भजति तान् हृदये विशेषं, भारं सः संगतधृतं नवमार्गगन्ता।
प्रातः स तान् दिशति कीर्तनम विद्यामाखेट-खड्गधनुरस्त्रविधांश्च सायम्।।७।।
उस नये मार्ग पर चलने वाले पथिक ने हृदय में विशेष श्रद्धा के साथ संगत द्वारा रखे हुए पगड़ी के बोझ को श्रद्धा से स्वीकार किया। वह प्रातः काल उनको कीर्तन कुश्ती सिखाता था। सायंकाल में शिकार, तलवार, धनुष, अस्त्र की विद्या को समझाता था।

शस्त्रास्त्रशिक्षणकलासु विधाय दक्षान्, लक्ष्ये चकार कुशलान् स्वजनं स त्रातुम्।
सेना कृता सुगठिता भरणादिवृत्या, शक्तिं सिषेव विपुलां भजनादिकेषु।।८।।
उसने शिष्यों को शस्त्रास्त्र–शिक्षा की कलां में दक्ष बनाकर अपने लागों की रक्षा में कुशल बनाया। भरण पोषण की व्यवस्था से सेना संगठित की, भजनादि सत्संग में बड़ी शक्ति की सेवा की।

शिष्याश्चरन्ति गमनागमनं सुदूराद् आध्यात्मिकेन वचनेन विकासितान्ताः।
नित्योत्सवो भजनदर्शनकामिनां स, पन्थाः प्रसारमगमन्नवजीवनाय।।६।।
शिष्य दूर–दूर से आवागमन करते थे। आध्यात्मिक वाणी से उनका अंतःकरण विकसित होता था। भजन और दर्शन वालों का वहां नित्य उत्सव होता था। इस पन्थ को नये जीवन का प्रसार प्राप्त हुआ था।
काले गते लवपुरादथ संगतैका, प्राप्तस्ततो गुरुमुखेन वचांसि श्रोतुम्।
नत्वा निवेद्य विधिना तमुपायनानि, स्थाताऽभवद् गुरुगृहे कतिचिद् दिनानि।।१०।।
अब समय बीतने पर एक बार लाहौर से कोई संगत गुरुमुख से वाणी सुनने को वहां पहुंची। विधिपूर्वक प्रणाम कर भेंट देकर कुछ दिनों को वह वहां ठहर गयी।

खत्री सुभिक्खरपि वीक्ष्य गुरोः प्रभावं, तां गूजरीं स जननीं तु गुरोर्ब्रवीति।
पुत्रीं गृहाण तनयस्य विवाहहेतोः, सैषा स्थिता चरणयोर्भज जीतकौरम्।।११।।
सुभिक्ख खत्री ने गुरु का प्रभाव देखकर गुरु की माता गूजरी से कहा कि अपने पुत्र के विवाह के लिए मेरी पुंत्री को स्वीकार करो। यह आपके चरणों में ठहरी है, जीतकौर को अपना लो।

स्वीकृत्य तस्य विनतिं रचिते समीपे, रम्ये नवे लवपुरे प्रणिपत्य नैनाम्।
स्मृत्वा गुरून् च विधिना तु विवाह्य पुत्रं, सा स्वीकरोति जननी गुरु-जीतकौरम्।।१२।।
माता गूजरी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर नैना देवी को प्रणाम कर समीप मे बनाए हुए नये लव पुर में गुरुओं का स्मरण कर विधिपूर्वक विवाह करके जीतकौर को वधू स्वीकार किया।

गौरीपुरस्य नृपतिर्गुरुगीः प्रसादं, ज्ञात्वा स्वजन्मविषये स तु रत्नराजः।
औपायनं गजहयासनरत्नजातं, दत्वा गुरुं खलु नमन् मुदितो बभूव।।१३।।
आसाम में गौरीपुर के राजा रत्नराज ने अपने जन्म के विषय में गुरु के वचनों का आशीर्वाद जानकर हाथी, घोड़े वस्त्रासन रत्नादि वस्तुओं को समर्पित कर प्रणाम करते हुए बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की।

आगम्य काबुलपुराद् दुनिचन्दशिष्यः, सर्वस्वमेव गुरवे तु निवेदनाय।
सार्धं द्विलक्षमितमूल्यधृतं वितानं, श्रद्धोपहारमिति तत्पदयोरयच्छत्।।१४।।
काबुल (आफगानिस्तान) से सब कुछ गुरु को समर्पण की इच्छा से आ करके शिष्य दुनीचन्द ने दो लाख रुपये मूल्य के बड़े शमियाने को श्रद्धा के उपहार के रूप में देकर गुरु के चरणों में प्रणाम किया।

तद्गौरवं विपुलयन्ति समर्थशिष्या, धर्मस्य शासनमिदं परमादरेण।
ग्रामान् प्रबोध्य निखिला परितो मिलित्वा, खाद्यान्नपोषणपरां रचनां च चक्रुः।।१५।।
गुरु महाराज के गौरव को समर्थ शिष्यों ने परम आदर से बढ़ाया यह धर्म का शासन है। अतः गांवों को मिलकर जगाया और भोजन सामग्री पोषण की एक परम्परा बना दी।

गोविन्दरायविभवे परितोऽथ शिष्याः, शस्त्रास्त्रवाजिगजसंग्रहणेषु लग्नाः।
तेषां बलं विपुलयन् रणजीतनामा, घोषं करोति नवनिर्मित-दुन्दुभिश्च।।१६।।
गुरु गोविन्दराय की सम्पत्ति में अब शिष्य शस्त्र अस्त्र घोड़े हाथियों के संग्रह करने गें लग गये। उनकी ताकत को बढ़ाता हुआ रणजीत नाम का नगाड़ा बजता रहता था।

सर्वत्र सौख्यशरणं धरणी समृद्धा, नैवाऽऽततायि-घटना श्रवणे तु याति।
ग्रामेषु संगतसुखं भजनं भजन्ते, शंसन्ति कीर्तनजपे गुरुनाम मर्त्याः।।१७।।
सब ओर सुख था, धरणी समृद्ध थी, आततयियों की खबर नहीं सुनी जा रही थी। गांवों में संगत का सुख, भजनों का गान होता था। लोग कीर्तन जप में गुरु नाम कहते थे।

नैना मुदाहरति दैत्यविनाशिनीं तां, योगं सिषेव शुभशक्तियुतं गुरुस्तु।
वीरान् पुपोष निजशिष्यजनान् च त्रातुं, सद्धर्मशौर्यलसितान् पुरुषान् चकार।।१८।।
गुरु गोविन्दराय ने नैना देवी को दैत्यविनाशिनी बताया, शुभ शक्ति वाले योग का सेवन किया। अपने शिष्यों और लोगों की रक्षा को वीर लोग पाले लोगों को धार्मिक शूरता से शेभायमान किया।

दृष्ट्वा प्रवृद्धमति-शौर्यबलं च तेषां, भीता मसन्दपुरुषा जननीं ब्रुवन्ति।
'सन्ता' न राजभटतुल्यमथाचरेयुः, क्रुधा नु पार्वतनृपाः कलहं विधेयुः।।१९।।
उनकी बढ़ती हुई शूरतावाली सेना देखकर भयभीत मसन्द लोगों ने माता गूजरी से कहा कि संतों को राजपुरुषों की तरह नहीं रहना चाहिए। कहीं क्रोधित पहाड़ी राजा उनसे झगड़ा न कर बैठें।

माता ब्रवीति मृगयारणशस्त्रकेलीः, सिक्खास्त्यजन्तु शमरोधि न सेवनीयम्।
ब्रूते गुरुर्न तु भयेन वयं वसाम, शास्तुं खलान् विपथगान् मम जन्महेतुः।।२०।।
माता ने गोविन्दराय से कहा शिकार, युद्ध और हथियार चलाना सिखों को छोड़ देना चाहिए। यह शांति विरोधी है। गुरु ने कहा हम डर से नहीं रहेंगे कुमार्गगामी दुष्टों को दण्डित करने को ही मेरा जन्म हुआ है।

शिष्यांस्ततो रणविधौ पटुकर्तुकामः शस्त्रास्त्रबाणधनुरश्वविधिं पपाठ।
दीक्षा-क्रिया कुशलयोद्‌धृनरान् विधातुं, पूर्णं स शक्तिनिचयं विपिने सिषेव।।२१।।
तब शिष्यों को युद्ध विधि में कुशल करने की इच्छा से शस्त्र अस्त्र बाण धनुष घुड़सवारी की विधि पढ़ाई। कुशंल योद्धा लोगों की दीक्षा (ट्रेनिंग) क्रिया करने के लिए वन में उसने पूर्ण शक्ति का उपयोग किया।

धर्मे रणे च कुशलं तमपूर्वसन्तं, द्रष्टुं तु यान्ति बहवो गुरुसंगतास्ते।
तेष्वेव रामशरणः स्वसुतामयच्छत्, तां सुन्दरीं च गुरवे जननीं प्रसाद्य।।२२।।
धर्म और रण में कुशल उस अनोखे सद्‌गुरु को देखने को बहुत बड़ी-बड़ी संगतें आने लगीं। उनहीं में रामशरण ने अपनी सुन्दरी कन्या मां गुजरी को प्रसन्न कर गुरु को निवेदित की।

गार्हस्थ्यतामनुभवन्नपि स प्रशिक्षुः, काले प्रसिद्धिमनुयाति विपश्चितैस्तैः।
विद्ये द्विधेऽमुकपरत्रहिताय बोद्धुं, नित्यं शृणोति निखिलार्थविवेक्तुकामः।।२३।।
गृहस्थ सुख भोगता हुआ भी वह प्रशिक्षक विद्वानों के साथ प्रसिद्धि को प्राप्त हो रहा था। इस लोक और परलोक के हितकारक दोनों विद्या जानने के लिये सब सामग्री का विवेचन करता हुआ सुनता था।

धर्म-क्रियां भजति नामजपं च सेवां, माध्यन्दिनं चलति शिक्षणदीक्षणं च।
चण्डीचरित्रमथ भागवतं च गीतां, भाषाकृतां स्वरचितां कविभिः शृणोति।।२४।।
वह गुरुगोविन्द नाम जप सेवा आदि धर्म कार्यों को भजता था। दिन में शिक्षा दीक्षा चलती थी। वह चण्डी का चरित्र, भागवत, गीता अपनी भाषा में रचना कर कवियों से सुनता था।

आसीद् विलासपुरभूपतिभीमचन्द्रः, श्रुत्वा स दुन्दुभिनिनादमतीव तीव्रम्।
शङ्के प्रयाणमपरेण कृतं नृपेण, राज्यं ममेदपहर्तुमितः प्रयातः।।२५।।
विलास पुर के राजा भीमचन्द्र थे। उसने नगाड़े की तेज आवाज सुनी और संदेह किया कि मेरा राज्य छीनने के लिए किसी और राजा ने आकर चढ़ाई कर दी है।

तं सूचयन्ति सचिवाः कहलूरराज्ये, क्रीतोऽस्ति यस्तु गुरुवासकृते प्रदेशः।
सिक्खाश्चरन्ति मृगयां विपिनेषु तत्र, गोविन्द-दुन्दुभिकृतो ध्वनतेऽत्र नादः।।२६।।
उस राजा को मंत्रियों ने बताया कि गुरुने जो भूमि निवास के लिए कहलूरराज्य में खरीदी थी, वहां पर सिक्ख वनों में शिकार खेलते हैं। गोविन्दराय के नगाड़े का यह शब्द वहां गूज रहा हैं।

राजा तु चारमुखतो गुरुसैन्यशक्तिं, ज्ञात्त्वा विभाव्य समयं समरे विरोधि।
विज्ञाप्य दूतमुखतः स्वयमेव यातो, नत्वा गुरुं मुदमवाप विलोक्य सर्वम्।।२७।।
राजा ने दूतों के वचनों से गुरु के सैन्य बल को जानकर और युद्ध विरोधी समय देखकर दूतों से सदेंश भेज कर स्वयं गमन किया और सब कुछ देखकर गुरु को प्रणाम कर प्रसन्नता प्राप्त की।

राजा शतद्रुतटविस्तृतभूमिभागे, ज्ञात्वा गुरुर्भवति भक्तियुतो जनेषु।
समृद्धिमेति जनता भयवैरमुक्ता, मौनेन शंसति किशोरगुरोः प्रभावम्।।२८।।
राजा ने शतलज नदी तट के विस्तृत भू–भाग पर शक्ति से गुरु की मान्यता जानी। जनता भय और वैर से मुक्त होकर समृद्ध हो रही थी। उसने मौन होकर गुरु महाराज के प्रभाव को कह दिया।

लोभान निवृत्य नगरीं सचिवान्सः ब्रूते, चिन्ता ममात्र जनिता गुरुशक्ति वृद्धया।
संतस्तु शस्त्रगजवाजिधरो न भाति, श्रेष्ठो ललाम-धरणे भवतीति भूपः।।२९।।
राजा ने नगर में लौटकर लोभ से मंत्रियों से कहा गुरु गोविन्दराय की बढती शक्ति की चिंता ने मुझे व्याकुल कर दिया। संत हाथी घोड़े हथियारों वाला नहीं होता। राजा ही श्रेष्ठ रत्नों को धारण करता है।

संमन्त्र्य मित्रसचिवैः सहयोगिभूपैः, लोभेन पत्रमलिखद् गुरवे स दर्पात्।
वस्तूनि पाणिग्रहणे ददतुर्भवन्तः, सन्ता ददन्ति खलु रत्नधराश्चभूपाः।।३०।।
मंत्रियों मित्रों और सहयोगी राजाओं से सलाह कर उसने कपट से गुरु के लिए पत्र लिखा आप इन वस्तुओं को राज–विवाह में दे दो। सन्त देते हैं। राजा लोग रत्नों को धारते हैं।

राज्ञे निवदनमिदं नतु स्वीकृतं वै शिष्यैः समर्पितमिदं निधिरस्ति तेषाम्।
ज्ञात्वा गुरोरभिगतं विफला नृपोऽसौ, संसूच्य तं बदति नीतिभयार्तिमार्गम्।।३१।।
राजा की प्रार्थना स्वीकार नही हुई। शिष्यों ने इसे समर्पित क़िया है। यह उनकी निधि है। गुरुका अभिमत जानकर राजा का प्रयास विफल हो गया। उसने नीति, भय, कष्ट के मार्ग की सूचना देकर कहा---

शास्त्रानुसारमिति शान्तिदयातपांसि, रत्नानि भान्ति परमार्थरतस्य पुंसः।
संघर्षमूलमपहाय सुखेन द्रव्यं, वासं समाचरत वा ब्रजताऽत्र राज्यात्।।३२।।
शास्त्रों के अनुसार शांति दया तप आदि रत्न परमार्थ में लगे हुए मनुष्य को शोभा देते हैं। संघर्ष की जड़ इस धन दौलत को सुख से हटाकर वसो या राज्य छोड़कर अन्यत्र चले जाओ।
पत्रं विलोक्य गुरुणा लिखितं न देयं, यामो वयं न वसतिं परित्यज्य दूरम्।
सन्ता वयं रघुपतेश्चरितं जपामो, दैन्यं पलायनमतो न हि रोचते नः।।३३।।
राजा भीमचन्द के पत्र देखकर गुरु ने लिखा कि कुछ भी नहीं दिया जायेगा। हम वास छोड़ कर भी दूर नहीं जायेगें। हम संत लोग रघुपति राम के आचरण का पालन करते हैं। दीनता वा भागना हमें अच्छा नहीं लगता है।-

पत्रं गतं नरपतिं ननु भीमचन्दं, शस्त्रास्त्रसंग्रहपरा प्रथिता च वार्ता।
दीप्तिस्तदा गुरुवरस्य शठांश्च शास्तुं, रामस्य सायक धनुर्धर-धार्मिणोऽभूत्।।३४।।
राजा भीमचन्द के पास गुरु का पत्र चला गया और शस्त्रास्त्र संग्रह की बात फैलती पहुंच गई। दुर्जनों का दलन करने वाली गुरु गोविन्द राय की दीप्ति उस समय धनुष बाण धारी राम जैसी देदीप्यमान हो रही थी।

इतिश्री दशमेश चरिते बाल व्यवस्था वर्णने पञ्चमः सर्गः।।५।।

अथ षष्ठः सर्गः

गोविन्दरायः कहलूरभूपं, विधूय शस्त्रास्त्रचयं चकार।
संगृह्य शूरान् परितः स्वशिष्यान्, रणोद्यमं तीव्रतरं दधार।।१।।
गुरु गोविन्दराय ने कहलूर के राजा का अनादर कर शस्त्रास्त्र जमा करने प्रारंभ किए। चारों ओर से अपने शूरवीर शिष्यों को एकत्रित कर युद्ध की तैयारी तेज कर दी।

पक्षे उभे युद्धमती तदानीं, सर्वत्र लोके श्रुतिगोचरोऽभूत्।
रोद्धुं विरोधं खलु नाहनेन्द्रो निमन्त्रयामास गुरुं स्वराज्ये।।२।।
दोनों पक्ष युद्ध का विचार बनाकर तैयार हो रहे हैं। यह बात सभी जगह सुनी गई। इस विरोध को रोकने के लिए नाहन के राजा ने गुरु को अपने राज्य में आने के लिए निमंत्रित किया।

नृपस्य भावं जननी विलोक्य, ब्रूते गुरुं मानय नाहनेन्द्रम्।
मात्राज्ञया दुन्दुभिवादनेन, प्रवासयात्रा गुरुणा कृता सा।।३।।
राजा के मानसिक भाव को जानकर माता गूजरी ने गुरु से कहा–नाहन के राजा के निमन्त्रण का सम्मान करो। तब गुरु ने माता की आज्ञा से नगाड़ा बजाते हुए नाहन को प्रस्थान किया।

स नाहनेन्द्रो गुरुस्वागतार्थं, सीम्नः प्रदेशे सजनो जगाम।
प्रणम्य सत्कृत्य पुरे च नीत्वा, निवासयामास गुरुं स्वहर्म्ये।।४।।
वे नाहन के राजा अपने स्वजनों के साथ गुरु की अगवानी के लिए अपनी सीमा पर आए। उन्होंने गुरु को प्रणाम किया, सत्कार कर नगर में ले जाकर गुरु को अपने महल में वास कराया।

स्नेहेन यातेषु दिनेषु तेषु, वने चरन्तौ मृगयार्थमेतौ।
दृष्ट्वा सुरम्यं यमुनासुकूलं, विश्रामहेतोर्धरणौ निषण्णौ।।५।।
दिन प्रेमपूर्वक बीत रहे थे, ये जंगल में शिकार को घूम रहे थे। यमुना का सुन्दर किनारा दोनों देखकर आराम करने के लिए भूमि पर बैठ गये।

गोविन्दरायः प्रणयेन ब्रूते, न्यस्तं पदं गन्तुमना न चास्मि।
तदाज्ञया कर्मकरान् नियुज्य, पौंटागुरुद्वारशिला च न्यस्ता।।६।।
गोविन्द राय ने प्रेमपूर्वक कहा--पैर रख दिया है, अन्यत्र ज़ाने की इच्छा नहीं है। तब राजा ने उस गुरु की आज्ञा से कारीगर नियुक्त कर पाँवटा गुरुद्वारे का शिलान्यास किया।

स नाहनेन्द्रेण सहाय्यमाप्तो, दुर्गं विधायाऽरिभयं बिभेद।
संगृह्य शस्त्रास्त्रगजाश्ववाहान्, शूरांश्च वीरान् शरणे बभार।।७।।
उस गुरु ने नाहन के राजा की सहायता पाकर किला बनाकर शत्रु--भय को नष्ट कर दिया। शस्त्र अस्त्र हाथी घोड़ों का संग्रह कर शूरवीरों को शरण में रख दिया।

पौंटां वसन् नामजपं प्रभाते, ततश्च शास्त्राणि लिलेख नित्यम्।
शस्त्रास्त्रयुद्धं मृगयां परा`, शौर्यादिगाथां कुरुते निशायाम्।।८।।
पौंटां में रहते हुए सवेरे नाम जप करते थे फिर पुस्तकें लिखते थे। अपरा में अस्त्र शस्त्र युद्ध शिकार होता था। रात्रि में शौर्य आदि की कथा करते थे।

अर्थार्थिनो ज्ञान पिपासवो वा, सुखैषिणो धर्मपराः सभायाम्।
गुरुं समायान्ति समन्ततस्ते, श्रयन्ति शृण्वन्ति भजन्ति भोगम्।।९।।
धन चाहने वाले, ज्ञान पाने वाले, सुखाभिलाषी, धार्मिक जन चारों ओर से गुरु की सभा में वहां आते थे, आश्रय लेते थे, सुनते थे और भोग पाते थे।

गुरूपदिष्टा पठनाय वेदान्, शोभा च गण्डा त्वथ रामसिंहः।
काशीं गता संप्रति कर्मवीरौ, विश्वेश्वरस्थे जतने मठे ते।।१०।।
गुरु महाराज के कहने से वेद पढने के लिए शोभासिंह, गंडासिंह, रामसिंह, कर्मसिंह और वीरसिंह ये पांच आदमी काशी के जतन मठ में संस्कृत पढ़ने को गये।

आसन् द्विपञ्चाशदतीव बुद्धा, गुरोः सभायां कवयस्तदानीम्।
ज्ञानाय तैर्भागवतानुवादं, भाषा-महाभारतमत्र सृष्टम्।।११।।
ब़हुत बोध (ज्ञान) वाले ५२ कवि उस समय गुरु की सभ्रा के थे। उन्होंने ज्ञान के लिए भागवत का अनुवाद और महाभारत की लोक भाषा में रचना की थी।

सम्प्रैषयत् सैय्यदबुद्धुशाहः, शतानि पञ्चानि पठानवीरान्।
कृपालदासस्य तथैव शिष्या, गता गुरुं पञ्चशतं तदानीम्।।१२।।
सैय्यद बुद्धुशाह ने पांच सौ पठान वीरों को गुरु के पास भेजा। वैसे ही सन्त कृपाल दास के अखाड़े के पांच सौ शिष्य गुरु की शरण में चले गये।

सिक्खास्तथानन्दपुरादुपेताः, शस्त्रास्त्रयुक्ताः शतपञ्चसंख्या।
धर्म-क्रियायुद्धविधौ गुरुस्तान्, शिक्षाप्रदाता स्वयमेव ह्यासीत्।।१३।।
वैसे ही आनन्दपुर से शस्त्रास्त्रों से युक्त पांच सौ सिक्ख वहां आए। धर्म कार्य और शस्त्र विद्या की शिक्षा उन्हें गुरु गोविन्दराय स्वयं देते थे।

गोविन्दराये नंनु नाहनेन्द्रे, मैत्री विलोक्याऽथ फतेहशाहः।
गुरुं ययौ मित्रमतिर्विशेषं, प्रभूतसंभारयुतस्तदानीम्।।१४।।
गोविन्दराज और नाहन के राजा में मित्रता देखकर गढ़वाल के राजा फतेहशाह उस समय विशेष भेंट लेकर मित्रता के विचार से गुरु के पास गए।
आहूतवान् नाहनपं गुरुः स, ज्ञात्वा वृतान्तं गढ़वालभूपात्।
सत्कृत्य तं सर्वविधं प्रशंसन्, चकार सन्धिं समयानुकूलाम्।।१५।।
गढ़वाल के राजा से समाचार जानकर गुरु ने नाहन के राजा को बुलाया और उसका सत्कार कर, हर प्रकार से प्रशंसा करते हुए समय के अनुसार दोनों में मेल कराया।

प्रेम्णा विसृष्टो गढ़वालभूपो, गायन् गुणान् श्रीनगरं जगाम।
श्रेयोविधातुश्च गुरोस्तु सद्य, पुत्रस्य सो जन्ममहोत्सवोऽभूत्।।१६।।
प्रेम से भेजा हुआ गढ़वाल का राजा गुरु का गुणगान करता श्रीनगर वापस आया। कल्याण की कामना करने वाले गुरु को तत्काल पुत्र जन्म का महान उत्सव प्राप्त हुआ।

सा सुन्दरी यं सुषुवे कुमारं, मनांसि जेता स नृणां बभूव।
'अजीत सिंहः', कृतनामधेयः, प्रभूतशौर्यादिगुणैः प्रदीप्तः।।१७।।
माता सुन्दरी ने जिस बालक को जन्म दिया, वह लोगों के हृदय हरने वाला था। उसका नाम अजीत सिंह किया गया। वह बहुत ज्यादा शूरता उदारता आदि गुणों से प्रकाशमान था।

श्रीरामरायो हरिरायपुत्रो, दिल्लीं गतो मित्रतया कदाचित्।
औरङ्गजेबेन तदादिग्रन्थे, पृष्ठः स शब्दं परिवर्तते स्म।।१८।।
कभी गुरु हरिराय के पुत्र श्री रामराय मित्रता की भावना से दिल्ली गये। तब आदि ग्रन्थ में औरंगजेब के पूछने पर उन्होंने एक शब्द का परिवर्तन कर दिया।

पित्रा विषण्णेन स रामरायो, निष्कासितः पन्थहिताय तावत्।
औरङ्गजेबेन फतेहशाहः, सम्प्रार्थितस्तस्य निवास-हेतोः।।१६।।
तब पिता ने दुखी होकर उन रामराय को पन्थ की भलाई के लिए पन्थ से बाहर कर दिया। अब औरंगजेब ने फतेहशाह से उनके निवास हेतु स्थान देने के लिए प्रार्थना की।

तं गौरवं पालयितुं नरेशो, गढ़ाधिपो जीवन-वृत्ति-हेतोः।
श्रीरामदासाय ददौ स्वभूमिं, स देहरादूनमलञ्चकार।।२०।।
उस गौरव की रक्षा करने के लिए गढ़वाल नरेश ने जीविका के लिए श्री रामराय को अपनी भूमि दे दी। उसने देहरादून को अपना निवास स्थान बनाया।

धर्म-क्रियां शिष्यगणैः समन्ताच्, चरन् स भूमिं व्यतरज्जनेभ्यः।
गुर्वंशमाहर्तुमतो जनेभ्यः, केचिन्मसन्दाः पुरुषा नियुक्ताः।।२१।।
शिष्यगणों के साथ धार्मिक कार्य करते हुए उसने लोगों को जमीन बांट दी। इसलिए लोगों से गुरु भेंट लेने के लिए कुछ मसन्द (अधिकारी) पुरुष नियुक्त किए गए।

श्रुत्वा स गोविन्दकृतं च दुर्गं, शस्त्रास्त्रसेनाचयनं विशालम्।
स्मृत्वा बलिं तेगबहादुरस्य, मेलं विधातुं सचिवानपृच्छत्।।२२।।
उन रामराय ने गोविन्दराय के किले और विशाल हथियार तथा सेना का संग्रह सुनकर गुरु तेगबहादुर के बलिदान को याद कर मिलन करने के लिए मंत्रियों (सलाहकारों) को पूछा।

शङ्कां वहन्तो गुरुमेलने ते, सिक्खी गुरुं यास्यति चिन्तयित्वा।
बहिष्कृताः स्युः सुखवैभवेभ्यो, नैतन् मसन्दाः परिकल्पयन्ति।।२३।।
उन्होंने गुरुओं के मेलमिलाप में शंका करते हुए और यह सोचकर कि सिक्खी गुरु के पास चली जायेगी और पुनः वे सुख सम्पत्ति से छुड़ा दिए जायेंगे। अतः मसन्द लोग यह काम नहीं करना चाहते थे।

प्रदर्श्य भीतिं विविधैरुपायैर्निषिद्धवन्तो निजस्वार्थपूर्तौ।
स्वेच्छां चरन्तस्तु गुरोर्मसन्दास्तयोश्च मैत्रीं न तु कामयन्ते।।२४।।
उन्होंने अपना स्वार्थ साधने के लिए अनेक उपायों से रामराय को भय दिखाकर रोक दिया। मनमर्जी करने वाले मसन्दों ने उनकी आपसी मित्रता की कामना नहीं चाही थी।

विश्वस्तदूतं स गुरुं तमेकं, संप्रेष्य गोविन्दमिदं बभाषे।
नौकां विहर्तुं यमुनां प्रयामि, त्वया तथैवागमनं विधेयम्।।२५।।
उसने गुरु को एक विश्वासी दूत भेज कर गोविन्द राय से यह कहा कि मैं नौका विहार को यमुना नदी पर आ रहा हूँ। आप भी ऐसे ही प्रबन्ध करके वहाँ पर आइये।

परस्परं सौजनमावहन्ती, नौकारथयोः संगतिरेवमासीत्।
उभौ परिष्वज्य मिथश्च वार्ता, प्रेम्णा स्वकीयां कुरुतस्तदानीम्।।२६।।

आपस में सुजनता बढ़ाने वाली नाव में बैठे हुए उनकी संगति ऐसे हुई। तब दोनों ने भेंट कर आपस में प्रेम पूर्वक अपनी बातचीत प्रारम्भ की।

श्वासप्रयाणं च समीपवर्ति, श्रीरामरायस्तु विलोक्य वृद्धः।
मसन्दशाठ्यं सकलं प्रकाश्य, भार्ये च त्रातुं विनयं चकार।।२७।।

व द्ध रामराय ने अपनी मृत्यु को समीपवर्ती जानकर मसन्दों की सारी धूर्तता की बातें बता कर दोनों पत्नियों की रक्षा करने के लिए गुरु से प्रार्थना की।

वार्तावसाने तटमागतः स, गोविन्दरायस्तु मसन्दवर्गम्।
पराङ्मुखं वीक्ष्य ब्रवीति सत्यं, धूर्ता मसन्दाः सदयो गुरुश्च।।२८।।

बातचीत की समाप्ति के बाद किनारे पर आए गोविन्दराय महाराज ने मसन्दों को उलटा मुंह किया हुआ देखकर कहा कि गुरु सच्चे दयालु हैं और मसन्द लोग ही धूर्त हैं।

द्वित्रिदिनेभ्यो गुरुरामरायः, समाधिलीनो भवति स्म पूर्वम्।
कालक्रमेण दिवसत्रयाय, लीनः समाधौ स गृहे बभूव।।२६।।

पहले से ही गुरु रामराय दो तीन दिन की योग समाधि लिया करते थे। समय बीतते वहां फिर तीन दिन के लिए वे गुरु घर पर समाधि में लीन हो गये।

खिन्ना मसन्दा गुरुसङ्गमेन, मृतः समाधौ गुरुरस्मदीयः।
उद्घोष्य सर्वे परियोज्य काष्ठं, ते दग्धवन्तो गुरुमेव तावत्।।३०।।

गुरुओं के मेल से खिन्न मसन्दों ने 'हमारे गुरु समाधि में मर गये हैं' घोषणा करके घर में ही सभी ने लकड़ी जोड़कर गुरु को भस्म कर दिया।

"पञ्चाबकौरा" गुरुधर्मपत्नी, परां व्यथां तां न च पारयन्ती।
आहूय पौंटानगरात्तदानीं, दुष्कृत्यमेषां गुरुमेव ब्रूते।।३१।।
गुरु की धर्मपत्नी पंजाब कौर ने उस दुःख को नहीं सहा और गुरु गोविन्दराय को पौंटा नगर से बुलाकर इन मसन्दों के द्वारा किए गए कुकर्म को बता दिया।

गुरुर्मसन्दान् पुरुषांश्च सभ्यान्, आहूय तन्निन्द्यकृतं बभाषे।
शाठ्येषु दण्डं गृहतो विवासं, मातुर्नियोगे कुशलान् चकार।।३२।।
गुरु ने मसन्दों और सभासदों को बुलाकर उनके इस कार्य की निन्दा की और वहाँ गुरु ने दुर्जनों को दण्ड देकर, घर से निकाल बाहर कर, योग्य लोगों को माता की सेवा में लगा दिया।

भार्या द्वितीयाऽस्य च राजकौरा, ततो मनीमाजरमाजगाम।
शिष्यास्तु ये मातरमेत्य तस्थुस्ते सोढ़ि-सन्तानपदं भजन्ति।।३३।।
इनकी दूसरी पत्नी राजकौर पंजाब में मनीमाजरा चली गई। जो शिष्य वहां माता के पास जाकर ठहर गये थे वे सोढि–गोत्र की संतान (पुत्र) हो गये।

'पंजाबकौरा' सदपत्यहीना, श्रीरामदासस्य समृद्धवासम्।
उदासिने ब्रह्मपथानुगन्त्रे, सन्यासिने संप्रददे तदानीम्।।३४।।
सन्तानहीन पंजाबकौर ने श्री रामराय के इस देहरादून के समृद्ध निवास को उदासी ब्रह्मज्ञान (वेदान्त) का अनुगमन करने वाले उस सन्त सन्यासी को उस समय से समर्पित कर दिया।

स देहरादूनमठो जनन्याः, शिक्षा-प्रसारे शुभधर्मकार्ये।
सम्पत्प्रयोगं कुशलं वितन्वन्, मार्गं गुरूणां प्रथितं चकार।।३५।।
माता का वह देहरादून का मठ (गुरुद्वारा) शिक्षा प्रसार में और शुभ धर्म कार्यों में कुशलता के साथ सम्पत्ति का विनियोग करता हुआ गुरुओं के मार्ग को प्रशस्त कर रहा था।

इति श्री दशमेश चरिते पौंटा नगरनिवासे षष्ठः सर्गः।।६।।

अथ सप्तमः सर्गः

बद्रीशं नमति फतेहशाहभूपः, कन्यायाः कलयति तत्र लग्नकार्यम्।
माङ्गल्ये वरयति भीमचन्द-पुत्रं, साधुत्वं प्रणयमतिः बिभर्ति नित्यम्।।१।।

गढ़पति श्री फतेहशाह भगवान बद्रीनाथ को प्रणाम करते हैं। अपनी कन्या का विवाह–लग्न–कार्य करना है। अतः मंगल कार्य हेतु भीमचन्द्र के पुत्र का वरण किया गया है। वह हमेशा प्रेम से सज्जनता का व्यवहार करता है।

सम्प्राप्ते नियततिथौ सुताविवाहे, प्रेम्णाऽसौ विनययुतः फतेहशाहः।
आशीर्भिर्भवति सुखं भवादृशानां गोविन्दं परिणय-पत्रिकां लिलेख।।२।।

निश्चित दिन पर लड़की के विवाह की तिथि आने पर राजा फतेहशाह ने प्रेम से नम्रतापूर्वक–'आपलोगों के आशीर्वाद से ही सुख होता है' कहते हुए', गुरुगोविन्द राय को विवाह में निमंत्रण–पत्र लिखा।

गोविन्दः प्रथमकृतं तु भीमचन्दाद्, बैरं तं स्मरति तदा विवाहकार्ये।
नो सम्यग् गमनमतिर्बभूव तावत्, कन्यायै प्रचुरमदाच्च यौतुकानि।।३।।

गोविन्दराय ने भीमचन्द से प्रथम हुए वैरभाव को स्मरण कर विवाह में स्वयं जाना उत्तम नहीं माना। किन्तु उन्होंने कन्या के लिए बहुत सी दहेज सामग्री भेज दी।

नीत्वा तद् विनययुतो तु नन्दचन्दो, राजानं प्रणतिपुरस्सरं निवेद्य।
कर्तव्यं समुचितमत्र याचमानः, पुण्यं तल्लसति समाजसेवकानाम्।।४।।

गुरु के सेवक नन्द चन्द ने उस सामग्री को ले जाकर नम्रतापूर्वक राजा के पास भेज दी और अपने योग्य सेवा कार्य की मांग की। क्योंकि समाज सेवकों का पुण्य सुन्दर शोभा देता है।

सत्कारं विमलमतिः फतेहशाहः, प्रीतः तं गुरु इव स्वागतं चकार।
भृत्यानां त्वुपवनमध्य एव तेषामावासं मुदितमना विधाति भव्यम्।।५।।

निर्मल बुद्धि से गुरु के समान उसका फतेहशाह ने स्वागत सत्कार किया। मन में प्रसन्न होकर बगीचे में उसके सेवकों का भव्य आवास बनवाया था।

प्रारब्धं सकलसुरार्चनं गृहेषु, मांगल्या चलति ततो विवाहयात्रा।
राजन्यैः सपरिजनैः स्वसैन्यगुप्तैः, युक्तासीत् प्रबलनिनाद-घोषयन्ती।।६।।
घरों में सभी देव पूजाएं प्रारम्भ हुई। मंगल वाली बारात वहाँ से चलती है। वह बारात राजाओं सेवकों, सैनिकों से रक्षित होकर जोर शोर करती हुई जा रही थी।

केतूनामुपरि विसर्पिणी पदोत्था, धूलिः सा लसति यथा वितानमाला।
काष्टानां परिमितिमेति तूर्यध्वानं, यात्रा सा विभवविलासिनी रराज।।७।।
झण्डों के ऊपर पैरों से उड़ी हुई धूल चन्दोया बना रही थी। चारों दिशाओं में दूर दूर तक सहनाई सुनाई दे रही थी। ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने वाली वह बारात भव्य शोभा दे रही थी।

दक्षान्नॄन् पथि सुविधां विधातुकामः, प्रेष्याऽग्रे चलति सुखेन भीमचन्दः।
पौंटायां नृपशिबिराय कर्म कर्तुं, शक्तास्ते गुरुमपि तादृशं वदन्ति।।८।।
रास्ते में सुविधाकरने के लिए जो दक्ष लोग थे, उन्हें आगे भेज कर भीमचन्द सुखपूर्वक जा रहे थ। पौंटा में राजा का शिविर बनाने के लिए उन समर्थशालियों ने गुरु गोविन्द से ऐसा ही कार्य करने को कहा।

राजाज्ञां गुरुरथ नैव स्वीचकार, स्मृत्वा तत् प्रवसनकारणं स्वकीयम्।
किं कार्यं गमनमथापि नैव तेषां, पन्थानं मृगयतु भूपतिस्तथान्यम्।।९।।
गुरु गोविन्दराय ने राजा को अपने प्रवास का कारण जानकर राजा की इस आज्ञा को नहीं माना। उन्होंने कहा–काम तो क्या? ऐसे लोगों का यहां से जाना भी नहीं हो सकता है। अत राजा अपना दूसरा ही मार्ग ढूंढें।

शक्तिश्चेत् सकलनृपैः समेत्य भूयो, मां जित्वा ब्रजतु विवाहसाधनाय।
पञ्चैते शतपुरुषा मदीयशिष्या, उद्दण्डान् दमयितुमेव सन्ति शक्ताः।।१०।।
यदि राजा में शक्ति है तो [illegible] है तो सब राजाओं के साथ मुझे जीत कर ही विवाह करने को जावें। [illegible] ये पांच सौ शिष्य उद्दण्डों को दलने के लिए पर्याप्त समर्थ हैं।

सन्देशं समधिगतं यदा नृपेण, श्रुत्वा तद् विपुलबलं गुरोः सकाशे।
निर्विघ्नं भवतु विवाहमङ्गलं मे, याञ्चां सः प्रणतियुतो गुरुं करोति।।११।।
अब राजा ने गुरु का सन्देश पाया और गुरु की बड़ी सेना के सम्बन्ध में सुना तो मेरी विवाह यात्रा बिना विघ्न के पूरी हो, ऐसा सोचकर गुरु से प्रमाणपूर्वक प्रार्थना की।

गोविन्दो सचिवमुखेन याचनां तां, सख्यं तं गढपतिना कृतं विचार्य।
सम्पन्ना भवतु सुखं वरस्य यात्रा, गन्तुंताननुमतिदो बभूव तावत्।।१२।।
गोविन्दराय ने मंत्री के मुख से राजा के यात्रा करने की मांग सुनकर और गढ़वाल के राजा से मित्रता का विचार कर बारात को हर्षपूर्वक वहाँ से जाने की आज्ञा दे दी।

शोभन्ते त्वथ वरयात्रिणोऽद्रिपीठे, पश्यन्तो हिमगिरि-वैभवं समन्तात्।
प्राप्तास्ते सुरसरितस्तटे पुनीते, स्नात्वा वै परमसुखं तथैव जग्मुः।।१३।।
चारों ओर हिमालय के वैभव को देखती हुई पहाड़ की पीठ पर वह बारात बड़ी शोभा दे रही थी। जब वे गंगा के पवित्र तट पर पहुंचे तो उन्होंने स्नानकर परम आनन्द पाया।

वीक्ष्य श्रीनगरमतीव जातहर्षाः, सत्कारं सविधि चकार भूधरेन्द्रः।
सर्वेषां कुशलमनामयं च पृष्ट्वा, बद्रीशं प्रणमति सः फतेहशाहः।।१४।।
श्रीनगर को देखकर वे बहुत खुश हुए। उस पर्वतेश्वर ने विधिपूर्वक सभी का सत्कार किया। सबकी कुशल क्षेम जानकर उसने बद्रीनाथ को प्रणाम किया।

भीमः स नगर-विलोकने रतोऽपि, ज्ञात्वा तान् गुरुपरिचारकान् तदानीम्।
पृष्टः सन् विततवितानमत्र दृष्ट्वा, क्रोधोन्धो गढपतिमेत्य स ब्रबीति।।१५।।
राजा भीमचन्द्र ने नगर देखने में लगे हुए भी जब उन गुरु के सेवकों को उस समय पहचाना और पूछने पर उनका शामियाना यहां लगा देखकर क्रोध में भरकर गढवाल के राजा से कहा–

गोविन्दो गुरुपदवीं दधाति शाठ्याद्, राजानः पददलिताः कृतास्तु दम्भात्।
यात्रायां मम विहितश्च तेन विघ्नो, निष्काश्यो भवति वयं तदा वसेम।।१६।।
यह गुरु गोविन्द दुर्जनता से गुरु बना हुआ है। इसने घमण्ड से राजाओं का बड़ा अपमान किया है। उसने हमारी यात्रा में विघ्न भी किया है। यदि इसको निकालो तो हम यहाँ ठहरें।

श्रुत्वैनां पथि घटनां फतेहशाहः, कन्यायाः परिणयकार्यविघ्नभूताम्।
सन्देशं कथयति नन्दचन्दशिष्यं, नैच्छामो गुरुगृहदत्तयौतुकं वै।।१७।।
कन्या के विवाह में विघ्नदायक रास्ते की इस घटना को सुनकर फतेहशाह ने गुरु के नन्दचन्द शिष्य को बुलाकर कहा कि हम गुरु का दिया दहेज नहीं स्वीकार कर रहे हैं। वापस चले जाओ।

वार्ता तां सपदि निशम्य नन्दचन्दो, सामग्रीं कुशलतया समेत्य भृत्यैः।
प्रस्थानं त्वरितमतिश्चकार तावद्, विश्वासो न भवति मत्तभूपतीनाम्।।१८।।
इस बात को सुनकर तत्काल नन्द चन्द शिष्य ने सेवकों द्वारा सारी सामग्री समेट कर शीघ्रता से वापस प्रस्थान किया। क्योंकि उद्दण्ड राजाओं का विश्वास नहीं किया जा सकता है।

यान्तं तत् विपुलधनं स भीमचन्दो, दृष्ट्वा वै हरणविधौ मनश्चकार।
भूपालैः सहमत एव लोभद्रष्टः, स्वान् वीरान् झटिति दिदेश लुण्ठनाय।।१६।।
जाते हुए बड़े धन को देखकर भीमचन्द राजा ने उसे लूटने का मन बनाया। लोभ से दंशा राजाओं से सहमत होकर उसने वीरों को उन्हें लूटने की आज्ञा दे दी।

वीरो ऽसौ त्वरितमतिः गुरुं तु गत्वा, वृत्तान्तं विनययुतो तदुक्तवांश्च।
गोविन्दो समुचितमेव तं प्रशंसन्, कार्यार्थी कथयति साधुवादशब्दान्।।२०।।
मतिमान् उस वीर ने, जाकर गुरुको नम्रतापूर्वक सारी घटना बताई। गुरु ने उनकी अच्छी प्रशंसा की और योग्य काम करने का उसे धन्यवाद दिया।

सम्पन्नं परिणयबन्धनं तदानीं, मोदन्ते सकलजनाः सुखेषु मग्नाः।
आतिथ्यं समुचितमेव तत्र तेषां, माधुर्यं बहति निरन्तरं प्रवासे।।२१।।
अब विवाह संस्कार पूर्ण हो गया था। सुखों में डूबे सभी लोग प्रसन्न हो गये थे। इस प्रवास में इनके अतिथि सत्कार से लगातार मधुरता वह रही थी।

प्रस्थाने गुरुकृतवैरभावनां तां, मार्गस्थो सपदि विशोद्धुमेव तावत्।
विज्ञाते बलनिचये फतेहशाहे, भीमस्तं कलुषमतिर्वचो ब्रवीति।।२२।।
रास्ते में हुई गुरु की वैर–भावना को वापस जाते समय दूर करने की इच्छा से और फतेहशाह की सेना का समूह देखकर कलुष–बुद्धि से राजा भीमचन्द ने फतेहशाह से कहा–

सम्बन्धाद् वयमिह मित्रतां वहामः, कन्यायाः श्वसुरपदस्य गौरवं मे।
कार्यं मे भवतु भवान् भवेत् सहाय्यो, निर्मूलं मम पथकण्टकं करोतु।।२३।।
हम सम्बन्धी होने से मित्रता का पालन करें। कन्या का श्वसुर होना मेरे लिए गौरव है। मेरा काम हो सकता है, यदि आप सहायक हो तो मेरे रास्ते के कांटे को आप उखाड़ फेंके।

योत्स्येऽहं सपरिजनं निपातुकामो, गोविन्दं प्रमुखबलैर्भवाग्रणीस्त्वम्।
साहाय्यं नृपतिगणाश्चरन्तु सार्धं, जित्वा तं विशतु वधूः स्वकीयहर्म्ये।।२४।।
मैं गोविन्दराय को सभी लोगों सहित मारने के लिए युद्ध करूगाँ। आप सेना सहित आगे साथ आओ। ये राजा लोग भी साथ में सहायता करेगें। उसे जीत कर ही बहू अपने महल में प्रवेश करे।

श्रुत्वैतत् प्रणतिवचः फतेहशाहो, युद्धं तत् कथयति मंत्रिभिर्विचार्य।
पौंटायां गुरुजनदर्प-शोघनार्थं, प्रस्थानं सकलबलं करोतु तावत्।।२५।।
भीमचन्द के इस नम्रता के वचनों को सुनकर मंत्रियों से विचार कर फतेहशाह ने गुरु से युद्ध करने के लिए कहा। पौंटामें गुरु के लोगों के घमंड को नष्ट करने के लिए सारी सेना को राजा ने प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी।

प्रस्थाने सपदि बभूव वाद्यघोषः, सा यात्रा चलितवती सहासरोषा।
विश्रम्य निशि यमुनातटे तदानीं, गोविन्दं जयितुमतो विचारयन्ति।।२६।।
उनके प्रस्थान पर तत्काल बाजे बजे। हँसी और क्रोध से भरी हुई वह बारात चलने लगी। रात में उस समय यमुना के किनारे पँहुचकर आराम करके गोविन्द राय को जीतने का विचार करने लगे।

उत्तुङ्गं गिरिशिखरं विलोक्य दुर्गं, व्यूहं तै ग्रंन्थितमतो नदीतटेऽस्मिन्।
पौंटायां गुरुविजयाय भूपतीनां, नेतृत्वं खलु कृतवान् फतेहशाहः।।२७।।
दुर्गम–पहाड़ों के शिखरों को देखकर उन्होंने इस नदी के तट पर व्यूह रचना की। तब पौंटा में गुरु गोविन्दराय को जीतने के लिए राजा फतेहशाह ने इस युद्ध का नेतृत्व किया।

सन्देशं हरति गुरुं नृपस्य दूतो, नोद्वेगो पथि भवता कदापि कार्यम्।
साहाय्यं चरति सदा प्रजा नृपाणां, राजानः स्वजनबलैः प्रशासयन्ति।।२८।।
राजा फतेहशाह का सन्देश दूत गुरु को ले जाता है–आपको कभी भी मार्ग में उद्वेग (रुकावट) नहीं करना चाहिए। प्रजा हमेशा राजा की मदद करती है राजा अपने लागों के बल से ही शासन करते हैं।

यद्भूतं तदपि विहाय सर्वकृत्यं, कर्तव्यं प्रणतजनैर्हितं नृपाणाम्।
पौंटायां त्यजतु शुभाय राजमार्गं, कालोऽयं कलहकृते न वो भवेद्वा।।२९।।
जो कुछ हो गया वह सब काम छोड़कर प्रणतजनों को राजाओं का हित ही करना चाहिये। अतः अच्छाई के लिए पौंटा का राजमार्ग त्याग दो। यह समय हमारे आपके झगड़े का कारण न बने।

सन्दिश्याऽमितबलचाप [illegible]
[illegible] खड्गहस्तान्, वीरान् स्वान् दिशति दिशां फतेहशाहः।
द्वाविंशा नु वयमितस्तु पार्वतेशाः, जेष्यामो गुरुगतसैनिकान् समस्तान्।।३०।।
राजा फतेहशाह ने गुरु को सन्देश भेजकर अपनी बड़ी सेना व धनुष हथियार धारी वीरों को निर्देश दिया, कि हम बाईस पहाड़ी राजा गुरु के पास के सैनिकों को युद्ध में जीत लेंगे।

श्रुत्वा तं गढपतिभूपदर्पवार्तां, गोविन्दो भजति न दैन्यभीतिभावम्।
ब्रूते तं गुरुगृहमेति सर्वलोको, वैशिष्ट्यं भवति न मानवेषु तत्र।।३१।।
गढपति के अभिमान भरी वार्ता को सुनकर गोविन्दराय को दीनता या भय नहीं हुआ। उन्होंने दूत से कहा कि गुरु के घर में तो सारा लोक आता ही है। यहाँ मानवों में कोई विशेषता नहीं होती है।

वाद्यानां ध्वननमितो निशम्य तीव्रं, तेषां तं बलनिचयं विभाव्य सम्यक्।
दीप्तान्तः स्मरति हरिं जिगीषया तान्, गोविन्दो रणविजयाय तत्परोऽभूत्।।३२।।
इधर उन्होंने बाजों की तेज बजती हुई आवाज सुनी,उनके सारे सेना के समूह को ठीक से जाकर,मन में प्रसन्न होकर गोविन्दराय ने युद्ध जीतने की इच्छा से हरि का स्मरण किया और उत्साह से समर को तत्पर हो गये।

शिष्यान् तान् वदति समागता परीक्षा, श्रेयो वा प्रियमपि मार्गमेकमेव।
स्वीकृत्य श्रयत समग्रधर्मशूराः, धर्मं मे दलनं तु दृप्तदुर्मतीनाम्।।३३।।
उन्होंने शिष्यों से कहा परीक्षा का अवसर आ गया है। श्रेय का अथवा प्रेय का एक ही मार्ग पर चला सकता है। आप सम्पूर्ण धर्म के शूरवीरों एक को ही स्वीकारो। मेरा तो घमण्डी दुष्ट बुद्धि–वाले लोगों का दलन करना ही धर्म है।

प्रणानां भयमिह वीक्ष्य युद्धभूमौ, चत्वारः शतमथ धाविताः पठानाः।
साधूनां सपदि कृपालदासयूथान् निर्याताः पथि शतपञ्च मृत्युभीताः।।३४।।
युद्ध–भूमि में प्राणों की हानि के डर से चार सौ पठान भाग गये थे। कृपालदास के झुण्ड से म त्यु से डरे हुए पांच सौ साधू भी भाग गये थे।

कालेखां शतशूरयुक्त एव युद्धे, निष्ठां स्वां प्रकटयितुं बभूव योद्धा।
श्रुत्वैतद् व्यथितमनाश्च बुद्धुशाहः, संयातः पथि शतसप्तशूरयुक्तः।।३५।।
योद्धा काले खां ने अपने सौ शूरमाओं सहित आकर ही युद्ध में अपनी विश्वसनीयता प्रकट की। इस भागने की घटना को सुनकर बुद्धुशाह मन में दुःखी होकर सात सौ शूरमाओं के साथ रास्ते में गुरु की सहायता के लिए आगे बढ़ आये।

भङ्गाणीमुभयदिशोः स्थिते तु सेने, ताड्यन्ते समरसहायकाश्च वाद्याः।
घोषोऽसौ गिरिकुहरेषु वर्धमानो, वीराणां हृदय-विकासमुन्निनाय।।३६।।

भङ्गाणी के मैदान में दोनों दिशाओं में वे दोनों सेनाएं खड़ी हो गई। युद्ध के सहायक बाजे बजने लगे। यह घोष पहाड़ों के गुफा घाटियों में बढ़ रहा था। वीरों के हृदय में वीरता का विकास बढ़ने लगा।

आकाशे प्रसरति तीक्ष्णखड्गपङ्क्ति, मल्लानां निवहमतीव शूलकारी।
कुन्तानां कटकचयं धनुः शराणां, झंकारं जनयति वीरहर्षध्वानम्।।३७।।

आकाश में तेज तलवारे लहरा रही थीं। पहलवानों का झुण्ड पीड़ा दे रहा था। भालों की सेना का समूह, वीरों के धनुष बाणों की झंकार हर्षध्वनि पैदा कर रही थी।

सन्नद्धाः कवचनिषङ् गवाणखड्गैः, युध्यन्ते सपदि भटाः क्षिपन्ति बाणान्।
झंकारैः रिपुतनुनाशिखड्गपातैः, चीत्कारैः विकटतरं वभूव युद्धम्।।३८।।

कवच धनुष बाण तलवारों से तैयार वीर बड़ी तेजी से बाण वर्षा रहे थे। शत्रुओं के शरीरों का नाश करने वाले खड्गों के झंकारों और चीत्कारों से युद्ध विकट भयानक हो गया था।

शस्त्रास्त्रैस्तडिदिव भाति खं स्फुलिङ्गैः, भल्लानामहिरिव सर्पिणी दशाऽभूत्।
हृरेषाभिस्तुरगमुखैश्च निसृताभिः, रक्ताक्ता विलसति घोरयुद्धभूमिः।।३९।।

हथियारों से निकली बिजली की चिनगारियों से भरा जैसे आकाश लगता था। भालों की गति सांपों जैसी लहराती बढ़ती दिखाई देती थी। घोड़ों के मुख से निकली आवाजों से और खून से भीगी भयानक युद्धभूमि शोभा दे रही थी।

शीघ्रं तं हनत रिपुं न सोऽपि गच्छेद्, वर्धन्तां विजयत पार्श्वघातकांस्तान्।
यूयं भो समरजयेन भुङ्क्त भोगान्, मृत्वा वा त्रिदिवपतिं नमस्कुरुध्वम्।।४०।।

आप शत्रु को जल्दी मारो, वह भी न जावे, बढ़ो, बगल के हत्यारों को जीतो। आप युद्ध जीतकर भूमि में भोग भोगो अथवा मरकर स्वर्ग में देवराज इन्द्र को प्रणाम करो।

युद्धेऽस्मिन् हरिचन्द-शस्त्रघातात्, सिक्खानां प्रबलगति र्न याति पारम्।
वर्धन्ते रिपुदलने तु शौर्यदीप्ताः, भग्नाशा यवनपदातयो प्रयाताः।।४१।।
इस युद्ध में सेनानी हरिचन्द के शत्रुओं की मार से सिखों की प्रबल गति रुक नहीं रही थी। वे शूरता से चमकते हुए बढ़ रहे थे। मुसलमानों की पैदल फौज आशा भंग होकर भाग गई थी।

संग्रामे गहनतरे मृता अनेके, वीराणामुभयदिशो निपातनं च।
रौद्रं तद् वहति धरा तदा स्वरूपं, भूपानां भवति भयं विलोक्य सिक्खान्।।४२।।
इस घने युद्ध में अनेक वीर मारे गये थे। दोनों ओर के योद्धा नष्ट हो गये थे। भूमि उस समय रौद्र रूप में भयंकर लग रही थी। शिष्यों (सिखों) को देखकर सभी राजाओं को भारी भय हो गया था।

गोविन्दः खरकरवालबाणपातैः, शत्रूणां विदधति सैन्यदेहपातम्।
स्वर्गस्थं खलु हरिचन्द्रसेनपं तं, शूरान् तान् नयति स सैनिकान् धरायाम्।।४३।।
गुरु गोविन्दराय ने तेज तलवार और बाण वर्षा से शत्रुओं की सेना के अनेक शरीर गिराये। सेनापति हरिचन्द्र को स्वर्ग भेज दिया। अनेकों शूर सैनिकों को प थ्वी पर सुला दिया था।

ते सर्वे विभव-विलासिनो नरेशा, वीराणां कदनमिदं विलोक्य युद्धे।
रोधव्यं भवतु कथं तदा रिपूणां, मार्गं तं विजयकरं न लब्धवन्तः।।४४।।
वे सभी भोग–विलासी राजा लोग युद्ध में इस तरह वीरों का दलन देखकर ढ्ंग रह गये कि शत्रु कैसे रोके जायें? उन सिक्खों के विजय के लिए किसी मार्ग को वे नहीं ढूँढ पाये।

संग्रामे लहरनृपो जगाम नाकं, निःसैन्ये भवति गतः फतेहशाहः।
विद्राति म्रियति बले स भीमचन्दः, प्राणाशाः सपदि पलायनं बिभर्ति।।४५।।
इस युद्ध में लहर का राजा स्वर्ग गया। सेना नष्ट होने पर फतेहशाह भी वापस चले गये। सेना मरने पर भीमचन्द पलायन कर गया। प्राणों की आशा तत्काल सभी को भगा देती है।

पाखण्डाः समरभुवं पराजितास्ते, धर्मस्था विनयपताकया जयन्ते।
गोविन्दो गगनगतं प्रभुं विचिन्त्य, सोल्लासो नमति नवोदयं स्वरूपम्।।४६।।

वे पाखण्डी युद्ध में हार गये। धार्मिक अपनी विनय भावना के झण्डे से जीत गये। गोविन्दराय महाराज ने आकाशवासी उस प्रभु के नये उदय होते स्वरूप को विचार कर उल्लासपूर्वक नमस्कार किया।

दुर्भाग्यं भजति च मेदिनीप्रकाशः, भङ्गाणीरणसरणौ गुरुं विरुद्ध्य।
प्रेयं तन् न फलति धर्म-भिन्नमार्गाद्, भद्रं क्व स्वजनकृते कथं भवेद्वा।।४७।।

नाहन के राजा मेदिनी–प्रकाश ने भंगाणी के युद्ध के रास्ते पर गुरु से विरोध कर दुर्भाग्य को ही पाया। धर्म से भिन्न मार्ग से प्रिय पाने की इच्छा फलदायी नहीं होती है। अथवा अपने लोगों का विरोधी का किस प्रकार कहां कल्याण हो सकता था।

गोविन्दे जयति भटाः पुरस्कृतास्ते, सम्मानं भजति गुरोश्च बुद्धुशाहः।
तुल्यार्धं यशसि गतः कृपालदासः, शिष्याणां प्रथमयशोवितानमासीत्।।४८।।

गुरु गोविन्दराय के जीतने पर सभी योद्धा पुरस्कृत किये गये। बुद्धुशाह ने गुरु का सम्मान प्राप्त किया। सन्त कृपालदास को गुरु के समान आधा यश मिला। गुरु महाराज के शिष्यों के प्रथम कीर्ति विस्तार का यह चन्दोया तना था।

"इति श्री दशमेशचरिते भंगाणी युद्धवर्णने सप्तमः सर्गः।।७।।

अथ अष्टमः सर्गः

विभ्रज्जयश्रीः समाराङ्गणे स, स्वस्थान् विधायाऽऽहतसैनिकान् तान्।
गोविन्दरायो निखिलैः स्वशिष्यैः, न्यवर्तताऽऽनन्दपुराय शीघ्रम्।।१।।

इस युद्ध में विजयश्री प्राप्त कर घायल सैनिकों को स्वास्थ लाभ करा कर गोविन्दराय महाराज अपने सभी शिष्यों के साथ आनन्दपुर को वापस लौट गये।

ननाद तीव्रं रणजीतवाद्यं, सच्छ्रीरकालः परितो बभूव।
सम्भारयुक्तैः रथवाजिवाहैः, वीरा समुल्लासभृताः प्रयाताः।।२।।

इस प्रयाण के लिए रणजीत नामक नगाड़ा बजाया गया। चारों ओर सत् श्री काल सुनाई दे रहा था। सामान से लदे हुए हाथी, घोड़े और वाहकों (श्रमिकों) से युक्त वीर लोग आनन्दपूर्वक वापस बढ़ रहे थे।

गुरुस्तदाद्यं शिविरं सनौढे, पुनश्च लाहौरपुरे द्वितीयम्।
ढौकास्थले द्वादशहायनीयं, स नाहनेन्द्रस्य कृते व्यलम्बत्।।३।।

गुरु ने पहला पड़ाव सनौढ़े में किया। दूसरा पड़ाव लाहौरपुर में किया। तत्पश्चात् ढौका नाभक स्थान पर नाहन के राजा मेदिनी प्रकाश की प्रतीक्षा में १२ दिन रुके रहे।

प्राथ्य गुरुं नाहनमेदनीशो, यातो न भीतः कहलूरभूपात्।
ढौकां न द्रष्टुं स्वजनैःसमेतः, सा स्वार्थलिप्सा ननु बाधकाऽऽसीत्।।४।।

गुरु महाराज के प्रार्थना करने पर भी वह नाहन का राजा कहलूर के राजा भीमचन्द से डर कर मिलने ढौंका नहीं आया। इस समय उनकी स्वार्थ की भावना गुरु से मेल करने में बाधक बनी हुई थी।

गुरुस्ततो रायपुरस्य राज्ञः, प्रियं चिकीर्षुस्तनयस्य मूर्ध्नि।
विधाय केशान् स बबन्ध पट्टं, खङ्गं ददौ सिंहबलं तु स्रष्टुम्।।५।।

तब गुरु गोविन्दराज ने रायपुर के राजा के साथ प्रिय व्यवहार के प्रतीक में शिर पर केश सम्भाल कर पट्टा बांध दिया और शेर जैसा बल उत्पन्न करने के लिए खांडा (तलवार) भी दे दी।

यात्राप्रसङ्गेन समागतानां, कीर्तिपुरे तत्र गुरुं श्रितानाम्।
भङ्गाणियुद्धं निखिलं स उक्त्वा, स्वधर्मपुत्रान् सजगान् चकार।।६।।
वहां से आगे कीरतपुर में यात्रा के कारण आए हुए अपने गुरुमुख चेलों को भंगाणी के युद्ध का सारा व तान्त सुनाकर इन अपने धर्मपुत्रों को धर्मद्रोहियों से सावधान किया।

पूर्वोज्झितं कीर्तिपुरात् स्वकीयं, शिष्यैः सहाऽऽनन्दपुरं स यातः।
गुरौ स्वगेहे समुपागतेऽसौ, दीपावली-मोद-महोत्सवोऽभूत्।।७।।
वहां कीरतपुर से अपने शिष्यों सहित पहले छोड़े हुए आनन्दपुर में वह चले गये। गुरु महाराज के अपने घर पर पुनः वापस आने पर हर्ष में दीपावली का महान उत्सव मनाया गया।

गुरुर्व्यवस्थां कुरुते तदानीं, धर्मोपदेशेन तथाऽस्त्रशस्त्रैः।
कृषिक्रियाशिल्पबिधौ विशेषं, समर्पितान् शिष्यगणान् चकार।।८।।
गुरु महाराज ने पुनः धर्म के उपदेशों से और अस्त्र शस्त्रों के शिक्षण से यहाँ नयी व्यवस्था बनायी। विशेषकर खेती बाड़ी शिल्प–कारीगरी में शिष्यों को समर्पित भाव से लगाया।

नैनां तु देवीं रिपुनाशहेतौ, शस्त्रास्त्रयुक्तां स्वजनान् बभाष।
सिंहस्थभावं स्वजनेषु भर्तुं, सिषेव सः शक्तिचयं समन्तात्।।६।।
गोविन्दराय ने दुश्मनों को नष्ट करने की कामना से नैना देवी को शस्त्रास्त्र–धारिणी बताया। शेर जैसे रहने वाले वीरता के भाव को अपने लोगों में भरने के लिए चारों ओर से शक्तिदायक वस्तुओं का वे संग्रह करने लगे।

स पन्थरक्षां सुदृढां विधातुं, ह्यानन्द-केशौ च फतेह-लोहौ।
होलागढं दुर्गचयं च पञ्च, ख्यातं चकार बलबुद्धिमन्तम्।।१०।।
उसने अपने धर्म पंथ की रक्षा को मजबूत करने के लिए आनन्दगढ़, केशगढ़, फतेहगढ़, लौहगढ़, होलागढ़, नामक पांच गढ़ों को बल–बुद्धि वालें वीरों से प्रसिद्ध बनाया।

दिल्लीश्वरोऽसौ युधि वित्तकार्श्याद्, धनं समाहर्तुमियैष यत्नम्।
कश्मीरभागे स च राज्यपालं, धनानि नेतुं नृपतीनबोचत्।।११।।
दिल्ली के बादशह औरंगजेब ने युद्ध में धन की कमी के कारण धन जमा करने का प्रयत्न किया। उसने कश्मीर के हिस्से, से राजाओं के पास से धन लाने को वहां के राज्यपाल (सूबेदार) को आज्ञा दी।

कश्मीरपालेन धनाय युक्तो, मीरो मिया जम्मुनृपं जगाम।
कृपालचन्दं नृपतिं धनार्थे, सेनासहाय्योऽलफखां प्रयातः।।१२।।
कश्मीर के राज्यपाल (सूबेदार) ने राजाओं से धन पाने को मीरमियां को जम्मू भेजा तथा कृपालचन्द से धन लाने के लिए सेना सहित अलफखां ने प्रयाण किया।

कृपालचन्दः कहलूरभूपान्नेतुं धनं तं प्रथमं बभाषे।
निःस्वस्तु भीमो गुरुमेव यातो, गुरुस्तु नादौणभुवं जगाम।।१३।।
कृपालचन्द ने मीरमियां को पहले कहलूर के राजा भीमचन्द से धन लाने को भेजा। अपने पास धन न होने से भीमचन्द गुरु गोविन्द राय के पास गये ओर तब गुरु गोविन्दराय नादौण नामक स्थान में पहुंचे।

ब्रूते गुरुर्नात्र धनं प्रभूतं, सन्तोषवृत्या वयमत्र संस्थाः।
न तुष्टिमापोऽलफखां वचोभिर्युद्धं तयोस्तीव्रतरं ततोऽभूत्।।१४।।
गुरु महाराज ने उससे कहा—यहां धन अधिक नहीं है। हम लोग यहां सन्तोष के व्यवहार से ही जीवन बिताते हैं। इन वचनों से अलफखां को सन्तोष नहीं हुआ। तब उनका वहाँ गुरु से घमासान युद्ध हुआ।

व्यासस्य तीरेऽ लफखां स जित्वा, जगाम सख्येन विलासपुर्याम्।
प्रोष्याऽष्टरात्रीस्तु गतो गृहेऽसौ, जुझारसिंहस्य जनिं शृणोति।।१५।।
व्यास नदी के तट पर अलफखां को जीतने से यह विलासपुर चले गये। आठ रातें बिताकर वहां से वे गुरु अपने घर आये, तो उन्हें जुझार सिंह के जन्म का समाचार मिला।

शान्तेषु सर्वेषु पुनः कदाचिल्, लाहौरपालस्य दिलावरस्य।
यातः सुतो रुस्तमखां सहेलं, तीर्त्वा विपाशां निशि तत्र योद्धुम्।।१६।।
सब के शान्त रहने पर लाहौर के सूबेदार दिलावर का पुत्र रुस्तमखां क्रीड़ा करता हुआ व्यास नदी पार करके वहां रात में लड़ने के लिए आया।

घने निशीथे स सुषुप्तिमग्नान् प्रहर्तुकामो खलु नीचवृत्या।
प्रज्वाल्य वासानबलांश्च हत्वा, जुगुप्सितं तत्र चकार कृत्यम्।।१७।।
घने अंधेरे में उसने नींद में डुबे हुए लोगों को नीचता के बर्ताव से मारते हुए घर जलाकर व औरतों को मारकर वहां घरणा से भरे कार्य किए।

कोलाहलस्तत्र महान् बभूव, सुप्तोत्थिताः सर्वजनाः समन्तात्।
तान् लुण्ठकान् रुस्तमखांसहाय्यान्, योद्धुं गताः शौर्ययुताः सरोषम्।।१८।।
वहां बुहत बड़ा शोरगुल हुआ। चारों ओर लोग सोने से जाग उठे। रुस्तमखां के उन लुटेरों से लड़ने को रोषपूर्वक शूरतासे लोग बढ़ते गये।

हतेषु वीरेषु पलायितेऽस्मिन्, निनिन्द लाहौरपतिः स्वपुत्रम्।
श्रुत्वा हुसैनी स्वबलाभिमानी, जेतुं ययौ तान् द्विसहस्रवीरः।।१६।।
वीरों के मारे जाने पर लाहौर के शासक ने अपने भगोड़े पुत्र रुस्तमखां की निन्दा की। इसे सुनकर अपनी ताकत का घमंड रखने वाला सेनापति हुसैनी दो हजार वीरों के साथ उन्हें जीतने को गया।

मार्गे जनानां दलनं स कुर्वन्, लुण्ठन् तदन्नं प्रदहन् गृहाणि।
विभीषयन् पार्वत-पार्थिवान् तान्, स्व-पादमूले त्वरितं जुहाव।।२०।।
वह रास्ते में लोगों को दलता था, उनका अन्न लूटता था, घर जलाता था, उन पहाड़ी राजाओं को डराता हुआ अपने कदमों में, उनको शीघ्रता से बुला रहा था।

तदा तु तं क्रूरतमं हुसैनीं, प्रसाद्य रक्षां स्वजनस्य कर्तुम्।
मेलं कृपालो मधुशाह-भीमौ, कृत्वा तदानीं ननु प्रेरयन्ति।।२१।।
तब उस क्रूर हुसैनी को मनाकर अपने लोगों को बचाने के लिए कृपालचन्द मधुशाह और भीमचन्द ने मेल मिलाप कर उसे प्रेरणा दी।

गोपालचन्दं तु गुलेरभूपं, जित्वा तदाऽऽनन्दपुरं जयेम।
गुलेरपो याचितवान् विपन्नः, सहायतां सन्तगुरुं दयार्द्रम्।।२२।।
हम गुलेर के राजा गोपालचन्द को जीतकर आनन्दपुर को जीतेंगे। गुलेर के राजा गोपालचन्द ने डरकर दयालु उस सन्तगुरु गोविन्दराय से रक्षा हेतु सहायता मांगी।

गुलेरपं रक्षितुमेव शीघ्रं, शिष्यं गुरुः संगतसिंहमाह।
सामन्तश्रेष्ठ! स्वबलेन सार्धं यत्नं विधत्स्व (कुरुष्व) प्रभवेत्तुशान्तिः।।२३।।
गुलेर के राजा की रक्षा करने को गुरु ने संगतसिंह नामक शिष्य को शीघ्रता से सहायता करने को कहा। हे श्रेष्ठ सेनानायक अपनी फौज के साथ जाकर कोशिश करो कि वहां शान्ति हो जाए।

कृपालभीमौ भजतां च सन्धिं, गोपालचन्द्रेण सहैव तावत्।
न शोकमग्नाश्च प्रजा भवेयुः, संघर्षमूलं सकलं हि दुःखम्।।२४।।
कृपाल चन्द और भीम चन्द गोपाल चन्द्र के साथ मेल कर लें। इस तरह जनता युद्ध के मरणशोक में न डूबे। क्योंकि संघर्ष की जड़ में दुःख ही छिपा रहता है।

गतस्ततः संगतसिंहः सन्धेर्मिथः प्रयासं कुरुते नृपाणाम्।
तस्य प्रयासे विफले प्रयाते, युद्धं द्वयोस्तद्बलयोर्बभूव।।२५।।
वहां से गये संगतसिंह ने उनमें परस्पर सन्धि की कोशिश की। उसकी कोशिश के बेकार होने पर उनकी दोनों सेनाओं की लड़ाई हो गई।

कृपालचन्द्रो बलवान् हुसैनी, स्वर्गं गतौ युद्धमती प्रहृत्य।
सहैव सः संगतसिंह-वीरः, तमेव सोपानपदं प्रयात।।२६।।
लड़ाई की बुद्धि वाले बलवान् कृपालचन्द और हुसैनी लड़ते हुए मर गए। उन्हीं के साथ वीर संगतसिंह भी स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ गये (मर गये)।

श्रुत्वा हुसैनीमरणं गुरुश्च, स्मरन्नकालं पुरुषं तदाह।
त्वया प्रभो। दुर्घटना पटीयसी, प्रधाविताऽन्यत्र घटाटवी सा।।२७।।
हुसैनी का मरण सुनकर गुरु महाराज ने अकाल पुरुष का स्मरण करते हुए कहा–हे प्रभो तूने बड़ी चालाकी वाली इस दुर्घटना की घटा को दूसरी जगह ही दौड़ा दिया।

जोरावरं तं तनयं प्रसूते, काले तदानीं ननु जीतकौरा।
माङ्गल्यवर्षी पुरुषश्चजातो, विघ्नो द्रुतं दूरतरं गतोऽभूत्।।२८।।
उस समय में जीतकौर ने जोरावर सिंह को जन्म दिया। अकाल पुरुष ने मंगलवर्षा की। विघ्न तेजी से स्वयं दूर होता चला गया।

श्रुत्वा हुसैनीं स्वसुतं हतं तं, शोकाभिभूतः स दिलावरः खां।
जुझारसिंहं वलवीर्यदीप्तं, प्रेम्णा समाहूय जगाद सर्वम्।।२६।।
अपने पुत्र हुसैनी की मृत्यु को सुनकर शोक में डूबे हुए दिलावर खां ने बल वीर्य के अभिमानी वीर जुझार सिंह को बुलाकर उससे प्रेमपूर्वक सभी बातें कही।

युद्धे प्रयाणाय प्रदाय सेनां, जित्वा रिपुं राज्यभुवं लभस्व।
गोविन्दरायं विजयं च लब्ध्वा, तदीयभूमिं स्वयमेव भुङ्क्ष्व।।३०।।
युद्ध में प्रयाण के लिए फौज देकर तुम दुश्मन जीत कर श्रेष्ठ राज–भूमि पाओ। उसने गोविन्द राय को जीतने को कहा और उसकी भूमि को स्वयं भोगो, ऐसा भी आदेश दिया।

लाहौरपालस्य निदेशकारी, ग्रामान् स सर्वान् बिकलान् चकार।
भल्लानवासं च विनाशयन्तं, योद्धुं गतो तं गजसिंहभूपः।।३१।।
लाहौर के सूबेदार के आज्ञाकारी जुझार सिंह ने सब गांवों को व्याकुल कर दिया। भल्लान बस्ती का नाश करते हुए देखकर उससे लड़ने को गजसिंह राजा सामने गये।

रोमाञ्चकारी तु बभूव युद्धं, द्वयोश्च सेना विघसं जगाम।
जुझार-सिंहस्त्रिदिवं प्रयातः, स्तुतिं गतो श्रीगजसिंह-भूपः।।३२।।
यह युद्ध रोंगटे खड़ा करने वाला था। दोनों की सेनाएं विनाश को चली गई। जुझार सिंह स्वर्ग चला गया। राजा गजसिंह की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

लाहौरभागे तु क्षतिं जननां, न द्रव्यलब्धिं प्रबलामशान्तिम्।
ज्ञात्वाऽतिकोपात्तनयं स्वमेकं दिल्लीश्वरो शान्तिविधेर्दिदेश।।३३।।
दिल्लीश्वर औरंगजेब ने बड़े क्रोध में लाहौर प्रदेश से धन न आने पर और लोगों के मारे जाने पर बढ़ती हुई अशान्ति को देखकर वहां अपने एक पुत्र को शान्ति स्थापित करने के लिए भेजा।

मुहज्जमो जेष्ठसुतस्तदीयो, मद्रप्रदेशे सबलो जगाम।
श्रुत्वा वृतात्तं धनवञ्चकानां, दण्डव्यवस्थां स्वजने ब्रबीति।।३४।।
उसका जेठा लड़का मुहज्जम सेना सहित मद्रदेश में चला गया। उसने धन की ठगी करने वालों की घटनाओं को सुनकर अपने लोगों से मजबूत शासन व्यवस्था करने को कहा।

न पार्वता भूपगणा विशेषं, भयेन राजस्वमितो नयन्ति।
निर्णीर्य मार्गं स च तेषु मिर्जा-वेगं ब्रतीति प्रति सङ्ग्रहाय।।३५।।
पहाड़ी राजा बिना विशेष डर के यहां राज कर नहीं देते हैं। इसका रास्ता निकाल कर उसने सेनापति मिर्जा वेग को उनसे धन जमा करने को कहा।

मुहज्जमाज्ञां परिपालयन् स, लाहौरप्रान्ते करवञ्चकानाम्।
आतङ्किनां संहरते स मिर्जाविगो धनानि च कुलानि सर्वम्।।३६।।
मिर्जाविग ने लाहौर प्रदेश में मुहज्जम की आज्ञा मानते हुए आंतक फैलाते हुए कर न देने वाले लोगों के परिवार और धन सब कुछ का हरण कर लिया।

भीतैस्तु तैः पार्वतराजवृन्दैः, सर्वं करं राजसुताय दत्तम्।
शान्तिं भजद्भिः ससुखं वसद्भिः, मुहज्जमस्तैः परितोषितोऽभूत्।।३७।।
डरे हुए उन पहाड़ी राजाओं ने सारा राजस्व राजकुमार मुहज्जम को दे दिया। शान्ति पाते हुए, सुखपूर्वक रहते हुए उन्होंने मुहज्जम को पूर्ण संतुष्ट किया।

मुहज्जमं दुष्टजनाः स्वसिद्धयै, त्यक्त्वा गुरुं तं परिवादयन्ति।
श्रीनन्दलालः सचिवोऽस्य मुख्यः, तान् दण्डयन् श्रीगुरुभक्तिमाह।।३८।।
दुष्ट लोगों ने अपने स्वार्थ को हल करने के लिए गुरु महाराज को छोड़कर मुहज्जम से उनकी शिकायत की। मुहज्जम के मुख्य सचिव नन्दलाल ने उन्हें दण्डित कर गुरु महाराज के प्रति अपनी भक्ति को प्रकट किया।

क्षेत्रे तदानीं प्रथिता सुशान्तिः, न पार्वताः स्वार्थरतास्तदाऽऽसन्।
जनाः समस्ताः स्वसुखं श्रयन्तः, स्वकर्मयोगे निरता बभूवुः।।३६।।
इस क्षेत्र में उस समय शान्ति फैली हुई थी। पहाड़ी राजा अपने स्वार्थ में रत नहीं थे। सभी प्रजाजन अपने जीवन का आनन्द लेते हुए अपने अपने काम जोड़ने में सुविधा से लगे हुए थे।

इति श्री दशमेश चरिते आनन्दपुरप्रत्यागमने अष्टमः सर्गः।।८।।

अथ नवमः सर्गः

गौरवं भजति मानवो मुदा, कीर्तयन् गुणगणान् हरेः सदा।
सोऽप्यकाल-पुरुषो नरं तृणं, वात्यया नयति निश्चितं स्थलम्।।१।।

भगवान के गुणों के गणों का कीर्तन करता हुए मनुष्य हमेशा गौरव पाता है। वह अकाल पुरुष आंधी से तिनके को जैसे मनुष्य को उसके निश्चित स्थान पर पहुंचा देता है।

पार्वता गुरुविरोधिनो नृपा, राज्यकार्यनिरतं मुहज्जमम्।
तोषयन्ति विविधैरुपायनै, आत्मराज्यपरिरक्षणोत्सुकाः।।२।।

गुरु महाराज का विरोध करने वाले पहाड़ी राजा अब राज काज में व्यस्त मुहज्जम को प्रसन्न रखते थे। अपने राज्य की रक्षा के लिए उत्सुक होकर वे मुहज्जम को अनेक भेंट देते थे।

वत्सरेषु शमदेषु षट्सु स, शास्त्रकाव्यरचनारतो गुरुः।
धर्मग्रन्थवचनान्यशोधयत्, तां शतद्रुसरितं न्यषेवत।।३।।

इस शान्ति के ६ वर्षो में गुरु गोविन्दराय शास्त्रों और काव्यों की रचना में लग गये। उस शतलज नदी के तट का सेवन करते हुए उन्होंने धर्मग्रन्थ की रचनाओं को शुद्ध किया।

सोऽत्ररामचरितं तु संस्कृतात् पाठनाय जनभाषयाऽलिखत्।
शिक्षणाय सकलान् जनान् तदा, शिष्यवर्गमपि दीक्षितं दधौ।।४।।

गुरु गोविन्दराय ने यहाँ पढ़ाने के लिए जनभाषा में संस्कृत से रामचरित का पंजाबी में अनुवाद लिखा। उन्होंने सब लोगों को शिक्षा दीक्षा देने के लिए अपने शिष्यों को भी प्रशिक्षण दिया।

वास्तु-शिल्प-मणि-धातु-शोधनं, भैषजं चरकसुश्रुतादिकम्।
संस्कृतस्य विविधं च वाङ्मयं, वेदितुं मतिरथास्य वर्धते।।५।।

गुरु गोविन्दराय जी की मति वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र मणि धातु आदि शुद्ध करने की विधि, चरक और सुश्रुत के आयुर्वेद की दवाई वाले संस्कृत के विविध वाङमय को समझने की हो गई थी।

प्रार्थयत् स बिबुधान् तदा द्विजान्, पाठयन्तु सुरभारतीं जनान्।
ते वदन्ति ननु वैदिको द्विजः, संस्कृतं पठति, संगतं न ते।।६।।
उन्होंने विद्वान् ब्राह्मणों से कहा कि आप सभी लोगों को संस्कृत पढ़ाया करें। ब्राह्मणो ने गुरु से कहा– केवल वैदिक सनातन धर्मी ही संस्कृत पढ़ते हैं, तुम्हारी संगतें नहीं।

तान् विहस्य गुरुणा च भाषितं, संस्कृतं भवतु लोकभाषाणम्।
तादृगेष समयः समागतः, भाषतां जनगणोऽपि संस्कृतम्।।७।।
गुरु महाराज ने उन ब्राह्मणों से हंसकर कहा–संस्कृत सभी लोगों की (बोलचाल की) भाषा हो। यह ऐसा समय आ ही गया है कि सभी सामान्य लोग भी संस्कृत भाषा बोले।

पञ्चशिष्यनिवहं गुरोस्तदा, शिष्य (सिक्ख) पन्थहितचिन्तने रतः।
आगतन्तु नगराद् वनारसात्, संस्कृतं सुरगिरामधीत्य वै।।८।।
तभी गुरु के पांच शिष्य (सिक्ख) पन्थ की भलाई के विचार से देववाणी संस्कृत सीख कर वाराणसी से आनन्दपुर में वापस आ गये।

ज्ञानकीर्तिकरमार्ग-चिन्तने, विश्रुताः पठनपाठने मताः।
काव्यशास्त्र-निगमागमादिषु, ख्यातिमत्र विपुलां भजन्ति ते।।९।।
वे ज्ञान और यश करने वाले मार्ग का आश्रय लेकर पढ़ने पढ़ाने में लग गये। काव्य, शास्त्र, वेद धर्मशास्त्र आदि ज्ञान में उन्होंने निश्चय ही बड़ी प्रसिद्धि पायी थी।

ब्रह्मकर्मविषयेषु शाश्वतं, जीवजन्ममरणादिहेतुषु।
शैवशाक्तजिनबौद्धवैष्णवे, नश्वरं विभवमस्ति तैर्मतम्।।१०।।
ब्रह्म, कर्म के विषय में , जीवन के जन्म मरण आदि कारणों में शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध और वैष्णव मंत में उन्होंने सर्वदा ही सम्पत्ति का होना ही नश्वर माना।

ज्ञेयमत्र नगराद् बनारसात्, संस्कृते निपुणतां निवेद्य ताम्।
शस्त्रयुद्धमृगयां विहाय ते, निर्मलं पथमिदं तदाऽश्रयन्।।११।।

यहां उन्होंने वाराणसी नगर में पढ़ी हुई अपनी संस्कृत भाषा में शास्त्रीय निपुणता को गुरु के समक्ष दिखाई। उन्होंने तब शस्त्र चलाना, युद्ध लड़ना, शिकार खेलना, इत्यादि हिसंक कर्म छोड़कर निर्मल मार्ग का आश्रय ले लिया।

ब्रह्मवाक्यपथमेव संश्रितान्, तान् विलोक्य गुरुणा सुविचिन्तितम्।
शास्त्ररक्षणमपि प्रकृष्टकृत्, सिक्खसंगतकृते विशेषतः।।१२।।

ब्रह्मवाक्य (वेदान्त) के मार्ग पर चलते हुए उनको देखकर गुरु महाराज ने सोचा शास्त्रों की रक्षा करना भी श्रेष्ठ है। सिख संगत के लिए विशेष हितकारी भी है।

पूर्णरक्षणविधिर्नवा भवेत्, संगतः प्रबलतां भजेत् पुनः।
शस्त्रसैनिकहयादिसंग्रहं, सर्वतो भवतु ता च सोऽवदत्।।१३।।

पूरी रक्षा की नई विधि हो, संगत बलवान बने, हर ओर से निर्भय होकर हथियार और घोड़ों का संग्रह संगत सब ओर से करें। आप गुरु महाराज ने उनसे कहा।

सो निमन्त्र्य बहुदक्षिणो द्विजान्, तेषु प्राप्य नियमपरायणान्।
तान् पप्रच्छ यजनं महत्तमं, येन पन्थगुरुता भवेद् भुवि।।१४।।

उसने अच्छी दक्षिणा का आश्रय लेकर ब्राह्मण बुलाए। उनमें नियम परायणों को चुना। उनसे उस बड़े यज्ञ के बारे में पूछा जिससे धरती पर (सिक्ख) पन्थ का गौरव बढ़े।

याजका द्विजगणा गुरुं तदा, सूचयन्ति विजयस्य साधनम्।
सिद्धया भवति दुर्गया जयस्तादृशं च यजनं विधीयताम्।।१५।।

उन यज्ञ करने वाले पुरोहितों ने गुरु से कहा कि देवी को सिद्ध करने से विजय प्राप्त होती है। ऐसा देवी का महान यज्ञ आयोजित किया जाना चाहिए।

तान् गुरुर्वदति याजकोत्तमं, तं नयन्तु यजने प्रकर्षकम्।
नैष्टिकं श्रुति-धुरन्धरं प्रभुं, यः समर्थ इति वो मतोऽधुना।।१६।।
गुरु ने उनसे कहा कि जो ब्राह्मण उत्तम यज्ञ करना जानता हो, यज्ञ की बढ़ोतरी के लिए उसे ले जाओ। जिसे निष्ठा–वाला, वेदशास्त्र ज्ञान में पूर्ण समर्थ जानते हो, आप उस विप्र को ही बुलाओ।

विप्रवृन्दमतिरेव तादृशी, स्तौति नामगणना यदाऽभवत्।
याजकोऽस्ति नगरे बनारसे, केशवोऽत्र यजनं विधास्यति।।१७।।
जब नामों की गिनती हुई तो ब्राह्मणों के समूह की यह संस्तुति हुई कि बनारस में उत्तम यज्ञ–विधि जानने वाला केशव पण्डित रहते हैं वही यहाँ यज्ञ करेगें।

सा गता श्रुतिपरम्परा ततः, केशवं प्रति बनारसं तदा।
न्यास-मन्त्र-विनियोग-पण्डितो ऽसौ जगाम गुरुयज्ञ-मण्डपे।।१८।।
यह यज्ञ की बात कानों कान बनारस में केशव पण्डित के पास पहुंची। मन्त्र के न्यास विधि और विनियोग में चतुर वह (केशव) विप्र गुरु के मण्डप में पधारे।

केशवो द्विजवृतः शिवार्चने, मन्त्र-पाठ-सहितो हविं ददौ।
यो जुहोत्यविरतं हुताशनं, याजनं नवममासतां गतम्।।१६।।
ब्राह्मणों से घिरे हुए केशव पण्डित शिवा (कल्याणकारिणी दुर्गा) के अर्चन में मन्त्र पाठ सहित आहुति दे रहे थे। वे लगातार यज्ञ कर रहे थे। वह यज्ञ नौ महीने तक अबिरत चलता रहा।

नोद्‌गता भगवती तथापि सा, संगतो वहति धैर्य-विप्लवम्।
श्रीगुरुस्तु हृदये व्यचारयत्, तैजसं ज्वलतु मेऽत्र संगते।।२०।।
वह भगवती देवी फिर भी ऊपर नहीं आयी। संगतों का धैर्य जाता रहा। श्री गुरु गोविन्द सिंह विचारने लगे कि यह तेज यहां मेरी संगत में भी जलता रहे।

यज्ञपूर्ति-मनसा ततो धृतां, तां समस्तहवनीयसम्पदान्।
कुण्डमध्यदहने क्षिपत्यसौ, दीप्ततीक्ष्णकरवालमुन्नयन्।।२१।।
उन्होंने यज्ञ की पूर्णाहुति करने की इच्छा से रखी हुई सारी हवन सामग्री को चमकती हुई तेज तलवार उठाते हुए वहाँ यज्ञकुण्ड में डाल दिया।

तां प्रदर्श्य वदति स संगतं, सा शिवा प्रकटितेयमीदृशी।
या विधास्यति वधं तु दुष्कृतां, सो बली भवति योऽसिधारकः।।२२।।
उस तलवार को लोगों में प्रदर्शित करते हुए गुरु ने कहा कि यह एक ऐसी (तलवार रूपी) शिवा प्रकट हो गई है जो हमारे शत्रुओं का विनाश करेगी। इस संसार में वही बलवान होता है जो तलवार धारण करता है।

न्यस्तजानुरथवीर-मुद्रया, स प्रसारितभुजे दधदसिम्।
उच्चरन् स्तुतिमतीव निर्भयां, शोभते विनतशीर्षको मुदा।।२३।।
उन्होंने घुटने टेक कर वीर मुद्रा में हाथ फैलाकर तलवार धारण की। वे सिर झुकाकर प्रसन्नता से निर्भय होकर खड्ग की स्तुति गाते हुए शोभा दे रहे थे।

खड्गदेव ! मधुकैटभार्तिद !, चन्द्रहास ! महिषासुरान्तक !।
चण्डमुण्डवधकृन्निशुंभहन्, हे कृपाण तव स्वागतं प्रभो।।२४।।
हे खड्गदेव, मधु–कैटभ को मारने वाले, हे चन्द्रहास, हे महिषासुर के विनाशक चन्द–मुण्ड का वध करने वाले, निशुंभ के वध करने वाले हे कृपाण ! प्रभो तुम्हारा स्वागत है।

चक्रनन्दकगदाधनुष्करः, श्रीपतिस्त्वमसि देवकी-सुतः।
शूलचापशरनागभूषितः, शङ्करो भवसि नीललोहितः।।२५।।
चक्र, तलवार, गदा, धनुषधारी देवकी पुत्र विष्णु तुम ही हो। त्रिशूल, धनुष, वाण, सर्प से शोभायमान नील लोहित शंकर भी तुम्ही होते हो।

भैरवो ऽसि धृत-शूलकुन्तकः, पाशरूपमपि बारुणं तव।
दग्धुमर्हति जगदर्धनञ्जयः, त्वद्बलेन मरुतां नभोगतिः।।२६।।
शूल और भाले वाले भैरव तुम हो, वरुण का पाश भी तुम्हारा ही स्वरूप है। आग बनकर संसार को जला सकते हो, तुम्हारे बल पर ही आकाश में मरुद् गण चलते हैं।

राघवो जयति रावणं त्वया, माधवो हरति कंसभीतिकाम्।
पाण्डवैः कुरुबलं निहन्यते, ताण्डवैः रिपुबलं पलायते।।२७।।
राम ने तुम्हारे द्वारा ही रावण को जीता, कृष्ण ने कंस का भय नष्ट किया। पाण्डवों ने कौरव–सेना नष्ट की। तुम्हारे ताण्डव नाच से शत्रु सेनाएं भाग जाती हैं।

क्षत्रिया विजयिनो रणाङ्गणे, शौर्यवीर्यबल-योग-शोभिनः।
भूतले सततशस्त्ररक्षिते, शास्त्रशिल्प-पठनं प्रवर्तते।।२८।।
शौर्य वीर्य बल योग से शोभायमान क्षत्रिय युद्ध–भूमि में तुमसे ही जीतते हैं। हथियारों से सुरक्षित भूमि पर ही शास्त्र व शिल्पकला की पढ़ाई होती रहती है।

चण्डिका हरिहरौ त्वमेव स, भैरवो वरुणवह्निमारुताः।
सर्वशक्तिमयखड्गदेवते, त्वं प्रसीद दुरितोपशान्तये।।२६।।
चण्डी, विष्णु, शिव तुम ही हो, भैरव वरुण अग्नि पवन तुम्हीं हो। हे प्रभो शक्तियों के संगठित खड्ग देवता ! पापों के विनाश के लिए तुम हम लोगों पर प्रसन्न रहो।

शक्ति कर्मगुणरूपधारणैः, विष्णुना सम सहस्रनामकैः।
खड्ग ! पासि भुवनं दुराकृतः, तेन देवसमता त्वयि स्थिताः।।३०।।
हे खड्ग तुम शक्ति, कर्म, गुण और रूपाकृति धारण करने से विष्णु जैसे हजार नामों से संसार को पापों से बचाते हो। इसलिए तुममें देवताओं की समग्र समता वर्तमान है।

शान्तिकान्तिसुखज्ञानवैभवं, धर्म-कर्म-धनधान्य-सञ्चयम्।
सर्वमेव तव वीर्यरक्षितं, जीवमात्रसदयः प्रसीदताम्।।३१।।
शान्ति, कान्ति, सुख, सम्पति, धर्म, कर्म, धन, धान्य की राशियाँ सब तुम्हारे बल से ही सुरक्षित हैं। हे सभी प्राणियों पर दया करने वाले खड्गदेव हम सब पर सदैव प्रसन्न रहना।

रक्षतात् सुदृढवाहुदोऽसि नः, पूर्णतां भजतु चित्तकामना।
पादयोस्तव मनो निलीयतां, पाहि मां स्वजनमेत्य साम्प्रतम्।।३२।।
अपने मजबूत हाथों से हमारी रक्षा करो। आप मेरे मन की इच्छा को परिपूर्ण करो। तुम्हारे चरणों में मेरा मन लगा रहे। आप आकर मुझ अपने आदमी की अब रक्षा कीजिए।

दुष्टवैरिनिवहं तु मारय, मां द्रुतं निजकरेण तारय।
देहि मेऽत्र परिवारपूरणं, सेवकेषु भवभूतिभूषणम्।।३३।।
हमारे सभी दुष्ट दुश्मनों के समूह को मार डालो। मुझे जल्दी अपने हाथ का सहारा देकर पार उतारो। मेरे परिवार को हर प्रकार से सभी सम्पदाओं से सम्पन्न करो। हमारे सभी सेवक शिष्यों में सभी सांसारिक भोग भरपूर रहा करें।

त्वां श्रयन्तु मम सिक्खसंगताः, धर्म-वीर-मतिभि र्निरन्तरम्।
त्वं शुभो मतिगतिप्रदो भव, जीवने जयकरो नता वयम्।।३४।।
धर्म–वीर की बुद्धि से मेरी सिक्ख संगत तुम्हारा सदा आश्रय लेती रहे। उन्हें तुम शुभ कल्याणकारी मति और गति दो, जीवन मे विजय दो। हम तुम्हारे चरणों के सामने झुके हुए हैं।

खड्ग एष गुरुणा समर्पितः, संस्तुतो विनतसंगतोऽग्रहीत्।
दुर्गयाऽर्तिहरया विभूषितः, तैः प्रसादमतिभिश्च धारितः।।३५।।
इस प्रकार प्रार्थना पढ़कर गुरु ने इस खड्ग को संगत को समर्पित किया और झुककर संगत ने स्वीकार किया। दुख दूर करने वाली माता ने अपने हाथ की कृपाण दी है। अतः उसका प्रसाद मानकर संगत ने कृपाण धारण कर ली।

त्वां विहाय शरणाय को भवेत्, प्रार्थना भवतु नैव चान्यतः।
शिष्यसेवक-जनस्य रक्षकः, केवलं त्वमसि सर्वसम्मतः।।३६।।
आपको छोड़कर निश्चित ही मुझे शरण कोई नहीं दे सकता है। मेरी मांग अब और किसी से है ही नहीं। आप शिष्यों और सेवकों की रखवाली करने वाले है। हे खड्ग एकमात्र तुम ही प्रभु हो ऐसा सेवकों ने स्वीकार कर लिया।

इति श्री दशमेश चरिते खड्गशक्त्यवतरणे नवमः सर्गः।।६।।

दशमः सर्गः

श्री-विलासं कृपाणं तं, निभयोल्लास-वर्धकम्।
प्रसादं श्रीगुरोर्मत्वा, संगतो मुदयाऽगृह्णात्।।१।।

निर्भय और चित्त के उल्लास को बढ़ाने वाले सरस्वती और लक्ष्मी की शोभा धारण करने वाले उस कृपाण को गुरु महाराज का प्रसाद मानकर संगत ने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया।

वेष्टयित्वा यथागात्रं, सुगुप्तं महतीं लघुम्।
शिल्पिभिः भूषितां लब्ध्वा, शूराः दीव्यन्ति सूर्यवत्।।२।।

शिल्पियों की चित्रकारी से सजी हुई गुरु के स्पर्श से पायी हुई, म्यान में छिपी बड़ी या छोटी उस तलवार को कमर पर लपेटकर शूरवीर शिष्य सूर्य जैसे चमकने लगे थे।

शक्तिं भगवतीमाद्या, नानकज्ञानरक्षिकाम्।
भुजङ्गानां भुजङ्गीं तां, शिष्या मेने बलप्रदाम्।।३।।

नानक के ज्ञान की रखवाली करने वाली, आदि भगवती शक्ति को अपने पास रखकर शिष्यों ने दुष्टों को डसने वाली, बल बढ़ाने वाली उसे मान लिया।

गुरुस्ततस्तु सर्वत्र, शिष्यान् सन्दिश्य सर्वतः।
वैशाखीदिवसाऽऽह्वानं, चकाराऽऽनन्दमन्दिरे।।४।।

तब गुरु ने सभी जगह सभी ओर से शिष्यों को सन्देश भेजकर वैशाखी दिवस पर आनन्दपुर मन्दिर में समागम का आह्वान किया।

आवाहनं गुरोः श्रुत्वा, दूरतो तेऽन्तिकात् पुरात्।
ग्रामात् स्थानात् समागम्य, श्रद्धया जग्मुः यूथशः।।५।।

गुरु गोविन्द का आह्वान सुनकर दूर से या पास के नगरों से ग्रामों से, स्थानों से, श्रद्धापूर्वक झुण्ड के झुण्ड श्रद्धालु शिष्यों की संगतें आने लग गयी थी।

ते संगताः समाजग्मुः, प्रभूत-सम्पदायुताः।
भावभक्तिरसासिक्ता, गोविन्दपादयोर्नताः।।६।।

वे सभी संगते बड़ी–बड़ी भेंटों को लेकर वहाँ पर आने लगी थी। भक्ति भाव के रस में भीगे वे गुरु गोविन्दराय के चरणों में झुकती गई।

आनन्दपुरधामैतत्, संकुलं सर्वतोऽभवत्।
स्कन्धावारे यथास्वैरं, वीराणां बर्धते गतिः।।७।।

वह आनन्दपुर का स्थान सभी ओर लोगों से पूरा भर गया था। छावनी में अपनी इच्छानुसार संगत के वीरों का आवागमन हो रहा था।

गुरुनिर्देशतः शिष्या, दिव्य-भोग-निषेविणः।
धर्मं कर्म च शृण्वन्तो, वसन्ति भूभुजो यथा।।८।।

गुरु के निर्देश से सभी शिष्य भोगों का सेवन करते हुए धर्म कर्म सुनते हुए राजाओं की तरह वहाँ निवास कर रहे थे।

प्रभाते धर्मगाथाभिः, मध्याह्ने शिल्पवार्तया।
क्रीड़ा-प्रधावनैः सायं, तेषां कालश्च गच्छति।।६।।

उनका समय सवेरे धर्म–कथाओं में, दोपहर को शिल्प–व्यापार चर्चा में और शाम को खेलकूद दौड़ों में बीतता था।

गुरुवाक्येषु निष्णाताः, श्रद्धावन्तः समर्पिताः।
शिष्या नान्यं प्रभुं मेने, तन्मनस्कास्तथागताः।।१०।।

गुरु के वचनों में डूबे हुए, श्रद्धा–वाले, समर्पित–भाव से सेवा करने वाले शिष्यों ने उन्हीं पर मन लगाकर उन्हीं के लिए आकर दूसरे व्यक्ति या भगवान को नहीं माना था (महत्व नहीं दिया था।)

तदुदन्तेन खिन्नोऽसौ, केशवोऽबोधयद् गुरुम्।
सावज्ञं विचरन्त्येते, शिष्या मान्यान् नमन्ति न।।११।।

उनके वृतान्त से दुःखी होकर केशव ने गुरु जी को समझाया–कि ये शिष्य अवज्ञापूर्वक घूमते है। दूसरे माननीय लोगों का मान नहीं करते हैं।

विप्रा वयं समाजस्य, शिक्षादीक्षा-पुरोहिताः।
भवत्सत्कर्मकर्तारः, परिभूतां दशां गताः।।१२।।

हम ब्राह्मण लोग समाज के शिक्षक, प्रशिक्षक, पुरोहित आपके सत्कर्मों को करने वाले यहाँ पर अनादर की दशा को पहुँच गये हैं।

गोविन्दः प्राह नम्रस्तं, विप्रं सप्रणयं ततः।
भगवन् भवतां शास्त्रैः, पन्थाः स रचितः श्रुतः।।१३।।

गुरु गोविन्द राय ने प्रेमपूर्वक नम्रता से उस ब्रह्मण केशव से कहा–हे महाराज आपके शास्त्रों ने ही यह रास्ता बनाया है। ऐसा सुना गया है।

विप्राः शमदमोपेताः, शास्त्र-लोचनभूषिताः।
क्षत्रियैः रक्षणीयाः स्युस्त्रिवर्गस्य हितेच्छया।।१४।।

शास्त्र रूपी आंख वाले शम दम गुणों से युक्त ब्रह्मणों की रक्षा तीनों वर्णों की भलाई की कामना से क्षत्रियों द्वारा सुरक्षित होनी चाहिए।

ब्रह्मणा क्षत्रियाः सृष्टास्त्राणाय मानवस्य वै।
शीर्षघातस्य रक्षायै, हस्तोऽग्रे पश्य वर्धते।।१५।।

मनुष्य की रक्षा के लिए ब्रह्मा ने क्षत्रिय बनाए। शिर पर चोट की संभावना होने पर देखो हाथ स्वयं ही आगे बढ़ जाता है।

वैश्या गोकृषिवाणिज्ये, सेवायां शूद्रजातयः।
आततायिकृतैः कृत्यैर्व्यवस्था दूषिताः पुनः।।१६।।

वैश्य लोग गोपालन, खेती, व्यापार में और शूद्र जातियाँ सेवा कार्य, नौकरियों में विभक्त थी। आततायी लोगों के अत्याचारों से यह व्यवस्था गड़बड़ा गई। (छिन्न–भिन्न हो गई है।)

समाजे संस्कृतिः क्लिन्ना, छिन्नाः धर्मस्य सेतवः।
दुष्कृतामुदयो नित्यं, दुःस्था जाता दशाऽधुना।।१७।।

समाज में संस्कृति सड़ गई है। धर्म के बांधों पर छेद हो गया है। अब दुराचारियों की उन्नति हो रही है। आज की सामाजिक दशा अच्छी नहीं रह गयी है।

विकृतिर्धर्मशास्त्रेषु, क्रियते दुर्जनैः पुनः।
सुखं साम्यं जगत्त्राणं, गुरवः साधयन्ति नः।।१८।।

दुष्ट लोग धर्म–शास्त्रों में भी विकार पैदा कर रहे है। इस समय हमारे गुरु लोग समाज में सुख समानता का भाव और संसार में मानव रक्षा का कार्य कर रहे हैं।

गुरुं त्रिवर्गदं मत्वा, मामेते समुपस्थिताः।
सर्वं मां मयि सर्वं च, मत्वा, ज्ञात्वा चरन्ति ते।।१६।।

गुरु को तीनों वर्गो का दानी मानकर ये शिष्य मेरे पास आये हैं। ये मुझे सब कुछ मानकर और मुझमें सब कुछ जानकर जीवन चला रहे हैं।

एतेषां कृपया हत्वा, शाठ्यान् शान्तिं वहाम्यहम्।
राज्यं भोगं जयं मानं, क्षत्राधीनं हि भूभुजाम्।।२०।।

इनकी कृपा से मैं दुर्जनों को मारकर शान्ति करवाता हूँ। क्योंकि राजाओं का राज्य, भोग, जीत, सम्मान क्षत्रियों के बाहुबल के अधीन ही रहता है।

प्राणपणेन शस्त्रास्त्रैराततायि विनाशकाः।
सदा पूज्या महैश्वर्यैः, शूरा वै धर्म-कांक्षिभिः।।२१।।

इसलिए धर्म की उन्नति चाहने वालों को अपनी जान लगाकर हथियारों के द्वारा अत्याचारी आततायियों का नाश करने वाले इन बलिदानी वीरों को बड़े ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ प्रदान कर मनाना चाहिए।

एतेषां पुरुषार्थैश्च, दीर्घसत्रा महीतले।
तपस्तपन्ति मुनयो, यान्ति सिद्धाः परं पदम्।।२२।।

इनके ही पुरुषार्थ से सुरक्षित होकर भूमि पर बड़े–बड़े यज्ञानुष्ठान सम्पन्न होते हैं। मुनि लोग अपनी तपस्या करते है। सिद्ध लोग सिद्धि से परम पद पाते हैं।

विप्रा विद्यां बिशः पण्यमन्ये च शिल्पिनः कलाम्।
राष्ट्रं कुर्वन्ति सम्पन्नं, रक्षितं क्षत्रियैः सदा।।२३।।

क्षत्रियों से सुरक्षित होकर ब्राह्मण विद्या में, वैश्य व्यापार में और दूसरे लोग शिल्पकला आदि में लगे हुए राष्ट्र को हमेशा समृद्ध बनाते हैं।

धीरा दान्ताः क्षमाः शक्ताः, महीं भोक्तुं पुराकृताः।
भोगैश्वर्यप्रसक्तास्ते, मन्मार्गेऽत्र धृतव्रताः।।२४।।

ये लोग धीरज वाले हैं, इन्द्रियों को वश में रखते हैं। क्षमाशील हैं, शक्तिशाली हैं, पृथ्वी को भोगने में समर्थ हैं। इस प्रकार भोग और ऐश्वर्य सम्पन्न ये मेरे मार्ग पर दृढ़ता से चल रहे हैं।

विक्रमार्जितराज्योऽसौ, सिंहो याति मृगेन्द्रताम्।
क्षत्रियो भोगकामेन, धर्मं रक्षति सङ्कटे।।२५।।

अपनी बहादुरी से शोभा देने वाला शेर ही वन का राजा होता है। दिव्य भोग की कामना से संकट में भी क्षत्रिय लोग धर्म की रक्षा करते हैं।

भाग्यं प्रबलमेतेषां, जीवनोत्सर्गकारिणाम्।
धर्मत्राणाय सृष्टानां भव्यं भवतु जीवनम्।।२६।।

जीवन का उत्सर्ग करने वाले इनका भाग्य बलवान है। धर्म की रक्षा के लिए उत्पन्न लोगों का जीवन होनहार (सुन्दर) होना ही चाहिए।

यथाकालं यथावस्थं, कर्मणा यच्च लभ्यते।
भुनज्मि सह शिष्यैः स्वैः, श्रेयसे सोऽपि कल्पते।।२७।।

मैं समय के अनुसार, अवस्थानुसार कर्म करने से जो कुछ भी प्राप्त होता है, इन शिष्यों के साथ ही खाता हूँ, वह भी कल्याणकारी ही होता है।

भवांश्च मम सम्पूज्यो, यज्ञकर्ता द्विजोत्तमः।
संकल्पो मे भवेत् सिद्धोः, मन्येऽहं त्वदनुग्रहात्।।२८।।

आप मेरे पूजनीय यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ है। आपकी कृपा से मेरा संकल्प सिद्ध होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

ह्यविज्ञातगतिर्ब्रह्मन्, सर्वोऽप्यत्रावधूयते।
क्षन्तव्यः सोऽपराधो हि, कालातीतं गतं श्रुतम्।।२९।।

हे ब्राह्मण पहचान न होने पर इस संसार में सभी की अवज्ञा होती है। इसलिए इस अपराध को क्षमा करो। यह सब सुना हुआ पुराना शास्त्र इस समय में लुप्त हो गया है।

भवांस्तु श्रुतसम्पन्नो, वेदविद्याविचक्षणः।
यत्किञ्चिद् हृदये वेद्मि, तं ब्रवीमि न वा, भयात्।।३०।।

आप तो बहुत शास्त्र पढ़े सुने हैं। वेदविद्या में निपुण हैं। मैं तो जो कुछ अपने मन में समझता हूँ, बोल रहा हूँ। इसमें भय कुछ भी नहीं हैं।

अहं शिष्यपराधीनो, ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः।
सेवाभिर्ग्रस्तहृदयः, शिष्यैः शिष्यजनप्रियः।।३१।।

हे ब्राह्मण ! मैं तो शिष्यों के अधीन हूँ। स्वतंत्र नहीं हूँ। इन शिष्यों की सेवा से मेरा हृदय भरा हुआ है। मैं इनका ही प्रियजन हूँ।

ये दारागारपुत्राऽऽप्तान्, प्राणान् वित्तं सुखं पदम्।
हित्वा मां शरणं याताः, कथं तान् त्यक्तुमुत्सहे।।३२।।

जो लोग स्त्री, घर, परिवार, पुत्र, विश्वनीय लोगों को, प्राण, धन, सुख और पदवी छोड़कर मेरी शरण में आये हैं, मैं उन्हें कैसे छोड़ दूं।

मयि निबद्धहृदया, रागिणः समदर्शिनः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या, सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा।।३३।।

मुझमें हृदय लगायें, अनुराग रखने वाले, ब्रह्म समान देखने वाले ये लोग मुझे भक्ति भाव से वश में करते हैं। जैसे अच्छी स्त्रियाँ अपने कुलीन पति को वश में रखती हैं।

एतेषां भाति मे सेवा, दत्तं भुक्तं कृतं हितम्।
मनोबचःकर्मभिर्मे, सर्वस्वस्याधिकारिणः।।३४।।

मुझे, इनकी सेवा करना, देना, खाना, कामकरना, भलाई करना अच्छा लगता है। मन वचन कर्म से ये मेरे सब सम्पत्ति के अधिकारी है।

शिष्या हि हृदयं मेऽत्र, शिष्यानां हृदयं त्वहम्।
मदन्यं ते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि।।३५।।

क्योंकि मेरा हृदय ये शिष्य ही हैं। उनका मन भी मैं ही हूँ। मुझसे बाहर वे कुछ नहीं जानते हैं और मैं भी उनसे बाहर कुछ भी नहीं जानता हूँ।

भवता कृतकृत्योऽहं, मीमांस्येऽहं भवद्विधिम्।
कुशलाः सोढ़िवंश्याश्च, वयं धर्मपरायणाः।।३६।।

आपने मुझे कृतार्थ किया। मैं आपकी विधि का विवेचन कर रहा हूँ। कुशल वंश के और सोढ़ि वंश के हम लोग धर्म में ही परायण रहते हैं।

स भवानाशिषं दत्वा, मङ्गलानि तनोतु नः।
क्षमाधनो महाप्राज्ञः, क्रोधं संहर सत्वरम्।।३७।।

ऐसे ब्राह्मण गुरु आप आर्शीवाद देकर हमारी मंगलकामना करें। आपका धन तो क्षमा है। आप बुद्धिमान हैं। आप अपना क्रोध शीघ्र शान्त कीजिए।

एवं प्रबोधितो विप्रः, प्रणिपातैः पुरस्कृतः।
सत्कृतो दक्षिणादानैः, गोविन्देन विसर्जितः।।३८।।

इस प्रकार से गोविन्द राय ने केशव विप्र (ब्राह्मण) को ज्ञान प्रदान कर, प्रणाम कर मनाते हुए, दक्षिणादान से सम्मानित कर वापस भेज दिया।

असिधर्मभृतस्तस्य, नवोत्थानरतस्य सः।
सन्मार्गं दिशतो लोके, निर्गुणे रंस्यते मनः।।३९।।

आततायि विनाशक वीरता के तलवार रूपी धर्म धारी, नया उन्नति का संकल्प लिए हुए सन्मार्ग वाले उस गुरु गोविन्द का मन निर्गुण ब्रह्म में लगा था।

कालेऽस्मिन् लोकयात्रायां, जीवात्माऽयं जनिं दधौ।
नाम्ना फतेहसिंहोऽसौ, गुरुवंशप्रकाशकः।।४०।।

इस समय में सांसारिक यात्रा में गुरु के वंश का प्रकाश फैलाने वाले फतेहसिंह नाम के इस जीवात्मा (चतुर्थ पुत्र ने) जन्म लिया।

इति श्री दशमेश-चरिते गुरुशिष्य-सम्बन्धवर्णने दशमः सर्गः।।१०।।

एकादशः सर्गः

बसन्ते लसिते भूमौ, शीतं भीतं पलायते।
दिनेषु वर्धमानेषु, भास्करस्तीव्रतायते।।१।।

वसन्त ऋतु के विलासपूर्वक आते हुए ही सर्दी डर कर भाग रही थी। बढ़ते हुए दिनों से सूर्य का ताप भी तीव्र होने लगा था।

नवोन्मेषा धरा तावत्, प्रवालैस्तरुणायते।
द्रुमपादपगुल्मेषु, पवनः सौरभायते।।२।।

नई आँख खोलती हुई भूमि भी नये लाल लाल पत्तों से जवानी बढ़ा रही थी। पेड़, पौधे, झाड़ियों में हवा भी सुगन्धित होकर बह रही थी।

आनन्दपुरधामैतत्, पुरुषैः संकुलायते।
खड्गप्रसादलब्धानां, हृदयमुज्ज्वलायते।।३।।

यह गुरु गोविन्दराय का आनन्दपुर नामक स्थान पुरुषों की भीड़ से भर रहा था। कृपाण धारण का प्रसाद पाए हुए शूरों का हृदय उज्ज्वल–उल्लास से भर रहा था।

वैशाखी पर्वणि प्राप्ते, निवासो विस्तरायते।
शिविरेषु च शिष्याणां, गणना विपुलायते।।४।।

वहाँ वैशाखी के पर्व पर लोगों के निवासों की संख्या फैल रही थी। शिविरों में तो आते हुए शिष्यों की गिनती व्यापक रूप से बढ़ रही थी।

विस्तृतं मण्डपं तत्र, वितानैः परिदीयते।
सुभव्यं स्थाप्यते मञ्चं, पटवासैर्निलीयते।।५।।

वहां पर तम्बू चंदोयों से बड़ा भारी मण्डप बनाया जा रहा था। अति उत्तम मंच बन रहा, पर्दो से वह ढका जा रहा था।

शिष्याणां संस्कृतिस्तत्र, मिलापैर्जीवनायते।
नद्धैरुपायनैः भूरि, संमर्दैः सङ्घायते।।६।।

यहाँ पर मेल–मिलाप से शिष्यों की जीवन–शैली नया जीवन पा रही थी। भेटों से लदी हुई आती भीड़ों का समागम लगातार बढ़ता जा रहा था।

गुरोः पदं विचिन्वन्ती, दृष्टिः सा व्याकुलायते।
सच्छ्रीरकालघोषेण, प्रणामो व्यञ्जनायते।।७।।

गुरु के पद कमलों का ध्यान करती हुई शिष्यों की आंखें दर्शन को व्याकुल हो रही थीं। सत्–श्री–अकाल की गूंज से लोगों का पारस्परिक अभिवादन चल रहा था।

स्थीयतां पीयतां वारि, भुज्यतां भोगमास्यताम्।
श्रूयतां श्रीगुरोः शब्दं, संवादस्तत्र श्रूयते।।८।।

"ठहरिए, जल पीजिए, भोग पाइये, बैठिए, श्री गुरु की वाणी सुनिए" ऐसी शिष्यों की बातचीत वहां सुनाई दे रही थी।

सभाऽऽकीर्णाः सहस्त्रणां, गुरुवाणीजुषां नृणाम्।
यथायोग्यं यथावस्थं, व्यवस्था सा विधीयते।।६।।

गुरु की वाणी का सेवन करने वाले हजारों लोगों की सभा भरी हुई थी। वहाँ परिस्थिति के अनुसार, योग्यातानुरूप सभी प्रबन्ध हो रहा था।

गुरौ मञ्चे समारूढे, पीठासीने श्रुता ध्वनिः।
'यो ब्रूते सो निहालः स्यात्' 'सच्छ्रीरकाल रक्षतात्'।।१०।।

गुरु के मंच पर आकर अपने आसन ग्रहण करने पर चारों ओर से ध्वनि सुनाई दी– 'जो बोले वह निहाल (सम्पन्न) हो, सत् श्री अकाल सबकी रक्षा करें।'

घोषो जातस्तदोच्चैश्च, व्योम तूर्णं व्यदारयत्।
भूयो निश्शब्दतां याते, गुरुर्धर्ममुपादिशत्।।११।।

वह घोष बड़े जोर से हुआ, और तत्काल आकाश को फाड़ने लगा। फिर नीरवता सी छा गई (मौन हो गये।) गुरु ने धर्म के उपदेश बोलने प्रारम्भ कर दिए थे।

दिव्यं तत्कीर्तनं जातं, लोकोत्तरचमत्कृतम्।
शुभाऽऽशिषां च कालोऽभूद्, गुरुदर्शनकांक्षिणाम्।।१२।।

लोकोत्तर चमत्कार वाला वहां कीर्तन सम्पन्न हुआ था। गुरु के दर्शन करने वालों का, आशीर्वाद पाने का समय भी हो गया था।

प्रणाममतिकामानां, गृहौत्सुक्यकृतां पुनः।
लब्धकामफलार्थानां, प्रतीक्षा सा चिरायते।।१३।।

गुरु को प्रणाम करने की कामना करने वालों की, घर जाने के प्रति उत्सुकता रखने वाले लोगों को, अपने मनोरथों की सफलता पाने वालों को इंतजार में देरी हो रही थी।

तदोत्थाय गुरुः पीठात्, कोषात्कर्षन्नसिं बहिः।
नभोमध्ये समुत्थाप्य, गभीरया गिराऽवदत्।।१४।।

उसी समय सद्गुरु आसन से उठ खड़े हुए और तलवार को म्यान से बाहर निकालकर और प्रकाश में उठाकर गंभीर वाणी में बोलने लगे।

शिरो वाञ्छति खड्गोऽसौ, नरमुण्डं ददातु यः।
स यात्वग्रे सभामञ्चे, भवानी तेन प्रीयताम्।।१५।।

यह खड्ग तलवार भक्त का सिर चाहती है। जो अपना सिर देना चाहता हो वह आगे बढ़े। इससे भवानी दुर्गा प्रसन्न हो जायेंगी।

निस्तब्धः संगतो जातः, कम्पमानस्तु गर्जनात्।
प्राणत्राणाय भीतानामुद्वेगोऽभूत्पलायने।।१६।।

सारी संगत अवाक् हो गई, गुरु की गर्जना से कांपने लगी थी। डरपोक लोगों में प्राण बचाने के लिए भागने की घबड़ाहट पैदा हो गई थी।

त्रिराकर्ण्य गुरोर्वाक्यं, दयारामः समुत्थितः।
ब्रूते धन्योऽस्मि गुर्वर्थे, विनियोगः प्रियो मम।।१७।।

तीन बार गुरु का आह्वान सुनकर श्री दयाराम खड़े हो गये और बोले—मैं धन्य हो गया हूँ। आज गुरु के काज में मेरा उपयोग बहुत ही प्यारा है।

अहो श्रद्धा च विश्वासो, गुरुमार्गे दुरत्ययः।
यदा समर्पितं चित्तं, प्राणमोहस्य का कथा।।१८।।

आश्चर्य है कि गुरु के मार्ग पर चलते हुए श्रद्धा और विश्वास नहीं छोड़ा जा सकता है। जब मन ही वहां दे दिया है तो प्राणों के मोह की बात ही कहां रहती है।

भुजे निगृह्य तं वीरं, नेपथ्ये गतवान् गुरुः।
खड्गपातध्वनिर्जातो, रक्तवाहमदृश्यत।।१६।।

उस वीर को भुजा से पकड़ कर गुरु पर्दे के पीछे ले गये थे। वहां तलवार चलने की आवाज सुनायी दी और बाहर बहता हुआ खून दिखाई दिया।

रक्त-रञ्जित-खड्गं तं, गृहीत्वा गुरुरागतः।
तथैवाऽघोषयद् भूयो, द्वितीयं कामये शिरः।।२०।।

खून से सने हुए उस खड्ग को लेकर गुरु बाहर मंच पर आए और उसी तरह बोले कि मैं दूसरा सिर चाहता हूँ।

भयाश्चर्यनिलीनेषु, स्तब्धेषु विस्मितेषु च।
निषण्णेषु सभासत्सु, गुरोर्दृष्टिर्निरीक्षते।।२१।।

लोग भय और आश्चर्य में डूब गये थे। सभी ठगे से आश्चर्यचकित रह गये थे। बैठे हुए उन सभा के लोगों में गुरु की दृष्टि किसी को ढूंढ रही थी।

तेषु सर्वेषु पश्यत्सु, धर्मदासस्तदोत्थितः।
नश्वरं जीवनं मत्वा, गुरुं ब्रह्म विचारयन्।।२२।।

उन सब लोगों के देखते हुए धर्मदास जीवन को नश्वर मानकर, गुरु को ही परब्रह्म मानते हुए सभा में खड़े हो गये।

प्रार्थयद् रक्षताद् धर्मः, सदा विजयतां गुरुः।
गुरोर्दत्तं शरीरं मे, गुरोः कामाय भूयताम्।।२३।।

उसने प्रर्थना की–धर्म हमारी रक्षा करे, गुरु की हमेशा जीत होती रहे। यह श्री गुरु का दिया हुआ शरीर उन्हीं के काम में पूरा हो जाये।

सोत्साहं स गतो मञ्चे, नत्वा पादौ पुरः स्थितः।
गुरुस्तं पूर्ववन्नीत्वा, शब्दं स्रावं व्यभावयत्।।२४।।

वह धर्मदास उत्साहपूर्वक मंच पर चढ़ गये, गुरु के चरणों में प्रणाम कर आगे खड़े हो गये। पहले की भांति ही गुरु उन्हें ले गये, शब्द सुना गया और रक्त बहता हुआ दिखाई दिया।

शोणिताक्तं पुनः खड्गं ते ऽपश्यन्गुरुमागतम्।
गुरुस्तीव्रेन शब्देन, तृतीयं याचते शिरः।।२५।।

उन संगत के लोगों ने रक्त से भरे खड्ग को धारण किये पुनः वापस आये गुरुजी को देखा। श्री गुरु ने तेज आवाज में फिर संगत के लोगों से तीसरे शिर की मांग प्रकट की।

किंकर्तव्येषु मूढेषु, विस्मयोद्‌वेगवाहिषु।
गुरुकृत्यं च पश्यत्सु, निस्तब्धेषु जडेषु च।।२६।।

क्या करना चाहिए? मूढ़ बने हुए, आश्चर्य और घबड़ाहट वाले, गुरु के कार्य को देखते हुए, तथा बिना हिले डुले, जड़ बने लोगों में–

मुहुकमेन चन्देन, ध्यातं ब्रह्म परं गुरुम्।
पुरस्कृत्य शिरः सद्यः, श्रद्धयोक्तमिदं वचः।।२७।।

मुहुकमचन्द ने परम ब्रह्म गुरु का ध्यान किया और तत्काल अपना सिर गुरु की सेवा मे प्रस्तुत कर श्रद्धापूर्वक यह बात कही–

गुरो नः किमपि नास्ति, तव तुभ्यं समर्पये।
भूयोऽपि जननं मे स्याद्, गुरुपादाब्जसेवने।।२८।।

हे गुरु हमारा तो इस संसार में कुछ भी नहीं है। तुम्हारा दिया हुआ है तुम्हें ही दे रहा हूँ। मेरा पुनर्जन्म भी गुरु के चरणों की सेवा के लिए ही होवे।

तथैव सा क्रिया जाता, भूयो घोषो गुरोरभूत्।
"नाद्याऽपि पूर्यते धर्मः, तुर्यं शीर्षं समर्प्यते"।।२९।।

ऐसे ही यह काम हुआ, गुरु की फिर यही घोषणा हुई–धर्म की पूर्ति अभी भी नही हो रही थी। अब चौथा सिर तुम्हें समर्पित किया जाता है।

संगतो व्यथते घोरं, नैव चण्डी प्रसीदति।
हतभाग्यान् विलोक्याऽस्मान्, जीवलोभेन मोहितान्।।३०।।

सारी संगत घोर दुःख मान रही थी कि हम भाग्यहीन, प्राणों के लोभ से मोह में फंसे हुए लोगों को देखकर देवी प्रसन्न नहीं हो पा रही हैं।

तदा साहिबचन्देन, महोत्साहेन जीवनम्।
प्रणम्य गुरु-पादाब्जे, बलिं दातुं समर्पितम्।।३१।।

तब बड़े उत्साह से साहब चन्द ने गुरु के चरणों में सिर झुका कर प्रणाम करते हुए बलिदान करने के लिए गुरु को अपना जीवन समर्पित कर दिया।

कर्म भूतं तथैवोग्रं, चण्डस्वरविभूषितम्।
प्रीयतां प्रीयतां दुर्गे ! पञ्चमं ते नयेः शिरः।।३२।।

फिर उसी प्रकार का उग्र कर्म हुआ और प्रचण्ड शब्द हुआ! हे दुर्गे प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ। मैं तुम्हारे लिए अभी पंचम सिर लाता हूँ।

श्रुत्वा नेपथ्यशब्दं तं, शोणिताऽसिं करोत्थितम्।
दीप्तं गुरुमुखं दृष्ट्वा, निर्निमेषं नराः स्थिताः।।३३।।

उस नेपथ्य की आवाज को सुनकर, हाथ में उठी रक्तभरी तलवार को देखकर तथा गुरु के देदीप्यमान मुख मण्डल को देखकर लोग बिना पलक झपकाये हुए बैठे रहे।

सर्वेषु तत्र पश्यत्सु, पञ्चमो हिम्मतो मलः।
उत्सर्जनं स्वशीर्षस्य, कर्तुं नत्वा स्थितोऽग्रतः।।३४।।

इन सब लोगों के देखते हुए वहाँ पर पांचवा शिष्य हिम्मतमल अपने शिर का त्याग करने के लिए गुरु को प्रणाम कर आगे खड़ा हो गया।

पञ्चमावृत्तिमालेभे, नेपथ्ये सा क्रिया तदा।
खड्गशब्दो गुरोः रूपं, श्रुतिदृष्टि-पथं गतौ।।३५।।

वही कार्य पर्दे के पीछे पांचवी बार दुहराया गया। खड्गपात का शब्द और गुरु का रूप सब लोगों ने सुना और देखा था।

पञ्चानां प्रियशिष्याणां, बलिर्दत्ता मयाऽधुना।
नाद्याऽपि पूर्यते कामो, वीरानन्यान् ददाम्यहम्।।३६।।

मैंने अब तक प्राणों से प्यारे अपने पांच शिष्यों की बलि दे दी है। अभी भी कामना पूरी नहीं हो पा रही है। मैं अब और वीरों की बलि देता हूँ।

शिष्याः शृण्वन्तु सर्वेऽत्र, कालो लब्धः स्वश्रेयसे।
गुर्वर्थे जीवत्यागस्य, युष्माकं सुमहोत्सवः।।३७।।

हे सभी शिष्यों ! यहाँ पर सभी सुन लो। अपने कल्याणकारी मुक्ति के समय का आप लोगों को लाभ मिल रहा है। यह गुरु के प्रयोजन की सफलता के लिए जीवन बलिदान करने का महान उत्सव आया है।

समर्पयन्तु स्वां कायां, परमार्थाय नश्वराम्।
ममैतां वा वलिं धर्म्यां, गृह्णातु वो भवेच्छिवम्।।३८।।

आप लोग परमार्थ के लिए अपने नश्वर शरीरों का स्वंय समर्पण कर दो अथवा धर्म वाली मेरी इस बलि को खड्ग स्वीकार करें। आप लोगों का कल्याण हो।

नैतच्चित्रं सभामध्ये, सोत्साहा उत्थिता जनाः।
पूर्वोऽहं तेऽब्रुवन्नुच्चैः मत्ता उत्सर्गकामिनः।।३९।।

यह आश्चर्य नहीं था ? सभा के बीच में सभी लोग– पहले मैं, कह कर खड़े हो गये। ये लोग मदमस्त बलिदान की इच्छा वाले जोर से उल्लास से घोषणा कर रहे थे।

क्वचिद्भीतिर्न तत्राऽऽसीद्, गुरो मे गृह्यतां शिरः।
धिगस्मान् जीवलोभेन, मोहपाशेन यन्त्रितान्।।४०।।

वहां कहीं भी कोई डर नहीं था। हे गुरुदेव मेरा सिर स्वीकार करो। हमारे इस जीवन के लोभ को धिक्कार है, जो हम मोहपाश से बंधे हुए हैं।

उन्मादिनो वर्धमानान्, संभ्रमोत्साहसम्भृतान्।
शिष्यान् उच्चै ब्रवीति स, जागृता चण्डिकाऽधुना।।४१।।

उन्माद वाले, संभ्रम और उत्साह वाले बढ़ते हुए शिष्यों से गुरु ने जोर से उच्चारण किया–अब हमारी रणचण्डी जाग चुकी है।

स्थीयतां स्थीयतां स्थाने, मञ्चारोहं विसर्जत।
दत्तावधानाः पश्यन्तु, शृण्वन्तु संगता ! गिराम्।।४२।।

आप लोग अपने स्थान पर बैठे रहें। मंच पर चढ़ना छोड़ दें। सावधानी से देखिए। हे संगत के लोगों मेरी वाणी को ध्यान से सुनो।

मञ्चमनावृत्तं कृत्वा, गुरुर्दृश्यमदर्शयत्।
केसरीवस्त्रशस्त्रास्त्रैः, सज्जान् तान् बलिदानिनः।।४३।।

मंच पर आवरण हटाकर, गुरु ने लोगों को दृश्य दिखाया–केसरी वस्त्र धारी शस्त्रास्त्रों से सजे हुए वे पांचों बलिदानी वीर पुरुष मंच पर खड़े थे।

घोषिता गुरुणा पञ्च, प्रधानाः पन्थपोषकाः।
सिंहा दुष्कर्मद्रंष्टारः, स्रष्टारः संगतस्य ते।।४४।।

उन पांचों को गुरु ने मुख्य पन्थ–धर्म के पालनपोषण करने वाले, दुष्कर्मो को दसने वाले, संगत की सृष्टि करने वाले पांच शेर घोषित किया।

खड्गहस्ता च दुर्धर्षा, देवी सैतेषु जागृता।
या पालयति नः सेतून्, गुरुभिः प्राणितान् सदा।।४५।।

हाथ में कृपाण (खांडा) लिए, किसी से भी न दबने वाली वह शक्तिः इन पांचों में जागी हुई है, जो हम गुरुओं के द्वारा प्राण पाए हुए धर्म के बोधों की, मर्यादाओं का पालन करेगी।

स गुरुः सिंह-सृष्ट्यर्थं, विधिं नूत्नां तदाऽसृजत्।
ब्रूते शिष्यगणान् सम्यक्, पश्यत सिंहसर्जनम्।।४६।।

उन गुरु गोविन्द जी ने सिंह बनाने की नई विधि का सर्जन किया। उन्होंने शिष्यों से कहा—अच्छी तरह शेर बनाने की विधि देख लो।

गुरुर्निर्माय खड्गेन, लौहपात्रेऽमृतं जलम्।
पञ्चपाठान् पठन् तत्र, वर्षा-पानमकारयत्।।४७।।

गुरु ने लोहे के बर्तन में खड्ग से अमृत जल का निर्माण कर, पांचों पाठों को पढ़ते हुए (अमृत) वर्षा करायी और उन्हें अमृतपान कराया।

घोषितोऽमृतपानेन, सर्वबन्धविवर्जितः।
विशुद्धः खालसाः सिंहः, शिष्यो यातु परं पदम्।।४८।।

गुरु ने घोषणा की कि इस अमृतजल को पीकर, सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर शुद्ध, खालसा शेर शिष्य परम—पद को जायेगा। (प्राप्त करेगा)

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्, ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्।
खे लसत् तस्य भावेन, खालसान् वो श्रिये कृताः।।४६।।

सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन उस आकाशवासी ब्रह्म ज्योति के भाव से शुभ लाभ के लिए तुम्हें खालसा नाम दिया गया है।

केशान् कङ्कं कृपाणं च, कङ्कणं कच्छवाससम्।
खालसा धारयेन्नित्यं, गुरोश्च गौरवं वहेत्।।५०।।

केश, कंघा, कृपाण, कड़ा, कच्छा इन पांच चीजों को खालसा वीर हमेशा धारण करे और जीवनभर गुरु के गौरव का निर्वाह करता रहे।

वहेद् गुरुर्जपेद् गुरुं, गुरुवार्णी श्रयेन् नमेत्।
ऐक्यं चरतु सर्वेषु, पञ्चाज्ञां धारयेद् हृदि।।५१।।

उस खालसा को गुरु पार लगाता है, जो उसे जपता है। गुरुवाणी के आश्रय से जीता है, नमस्कार करता है। सबमें एकता (समता) का व्यवहार करता है। वह पंचों की आज्ञा को हृदय से धारण करके ही धार्मिक होता है।

जपहीनं प्रसादं स, परस्त्रीं सर्पिणीमिव।
झटत्कारात् ऋते मासं, धूम्रं पानं सदा त्यजेत्।।५२।।

वह बिना जप के भोग को, दूसरे की स्त्री को सांपिनी जैसी, झटके के बिना मांस को और धूम्रपान शराब–पान हमेशा छोड़ दें।

सच्छ्रीरकालशब्देन, नमेत् सर्वान् समाहितः।
यो वदेत्सो निहालः स्याद्, उच्चरन् अग्रतः श्रयेत्।।५३।।

वह सिंह–शिष्य सावधान होकर सबसे "सत् श्री अकाल" कहकर नमस्कार करे। "जो बोले वह निहाल हो" का उच्चारण करके बढ़ता रहे।

पञ्चानेतान् पुरस्कृत्य, सद्धर्माऽमृत-पायिनः।
विधिना स गुरून् मत्वा, शिष्यो भूत्वाऽमृतं पपौ।।५४।।

उन गुरु ने इन धर्म से अम त पीने वाले पांचों सिंहों को आगे करके उन्हें गुरु मानकर और स्वंय शिष्य वन कर अमृतपान किया था।

अहो धर्मप्रभावोऽयं, विचित्रो भुवि भासते।
स्वयं गुरुः, स्वयं शिष्यः, मान्यान् मार्गे चकार सः।।५५।।

यह धर्म का विचित्र प्रभाव उस भूमि पर प्रकाश कर रहा था। अपने आप गुरु स्वंय शिष्य बन गये और इस मार्ग पर माननीय पंच लोगों को अग्रसर कर दिया था।

इति श्री दशमेशचरिते खालसा-पन्थसर्जने एकादशः सर्गः।।

द्वादशः सर्गः

अनन्तः शाश्वतः कालः, कालोऽयं कलनात्मकः।
नियन्ता कालचक्रस्य, सर्वत्राऽसौ प्रक्रीडति।।१।।

काल अनन्त और शाश्वत है। यह काल गणनात्मक भी है। इस काल चक्र का नियंत्रण करने वाला परमात्मा सभी ओर अपना खेल खेल रहा है।

एकोंकारः सतो नाम, कर्ता पुरुषनिर्भयः।
निर्वैरोऽकालमूर्तोऽसौऽयोनिः सर्वो गुरोः कृपा।।२।।

वह अकाल पुरुष एक ओंकार सत्ता का नाम है। वह सबका निर्माता, सभी शरीरों (घटों) का वासी, निर्भय विचरण करता है। उसका किसी से वैर नहीं, काल नहीं, रूप नहीं हैं। वह अजन्मा माना जाता है, सबको पैदा करने वाला वह गुरु की कृपा का प्रसाद है।

तदेषणपरो धर्मः, पन्थाः स गुरुणा कृतः।
ककारैः पञ्चभिः ख्यातः, पञ्चाज्ञा-धर्म-सेतुकः।।३।।

उसी को चाहने वाला यह धर्म का मार्ग गुरु ने प्रकट किया। उसे पांच ककारों (केश, कंघा, कड़ा, कच्छा और कृपाण) से प्रसिद्धि मिली और पांच पंचों की आज्ञा से निर्मित धर्मरक्षक बांध बन गया था।

वर्ण-भेदो गतो पारं, समता चेतनायते।
अमृतपायिनां तेषां, गुरुर्ब्रह्म विराजते।।४।।

इसमें ऊँच नीच का वर्णभेद नष्ट हो गया था। सबमें बराबरी का भाव जाग रहा था। इन अमृतपान करने वालों का गुरु ही ब्रह्म के रूप में विराजमान था।

शिष्येषु विनयाधानात्, क्षत्र-तेजो विवर्धते।
दुष्कृतां शमनायालं, तेषामैक्यं समेधते।।५।।

शिष्यों को शिक्षित करने से क्षत्रिय-तेज बढ़ रहा था, जो दुष्टों को शान्त करने के लिए समर्थ था। उनकी आपस में एकता बढ़ती जा रही थी।

गोरक्षा-कृषि-वाणिज्ये, सेवायां तेऽथ संगते।
संगता गुरुवाक्ययेषु, निष्ठाः शूरा धृतव्रताः।।६।।

वे लोग गायों की रक्षा में, खेती बाड़ी में, व्यापार–नौकरी और संगत में गुरु की सद्वाणी पर श्रद्धा से जुड़े हुए थे। व्रत, नियम–पालक इन शूरवीरों की गुरु पर निष्ठा थी।

प्रवर्धन्ते समन्तात् ते, गुरोर्मन्त्रं विजृम्भते।
पन्थाः प्रसारतां याति, वार्ता तानमृतायते।।७।।

वे चारों ओर से बढ़ रहे थे, गुरु का मन्त्र बढ़ रहा था। उनका पन्थ फैल रहा था। वह समाचार उन्हें अमरता प्रदान कर रहा था।

सचेतनेषु सिक्खेषु, दीक्षितेषु गुरोर्मते।
संवदत्सु जनौघेषु, श्रद्धा शृण्वत्सु जायते।।८।।

इन शिष्यों (सिक्खों) में चेतना थी, गुरु के मत में दीक्षित (प्रशिक्षित) थे। भीड़ भाड़ में, लोगों में संवाद होते थे, जिसे सुनते ही उनमें गुरु की वाणी के प्रति श्रद्धा बढ़ रही थी।

धर्मशस्त्रभृतान् वीक्ष्य, लुण्ठका भीतिकां गताः।
विरुद्धे शासने तन्त्रे, धर्मस्थाः स्थिरतां श्रिताः।।६।।

उन धर्म और शस्त्र धारण करने वालों को देखकर सभी लुटेरे डर गये थे। इस हिन्दु विरोधी–राज–व्यवस्था में धर्म में ठहरे हुए वे सिक्ख लोग स्थिरता को ला रहे थे।

उद्विग्नाः पार्वता भूपाः, पार्श्वस्थाः क्षत्रपास्तदा।
नवीने सात्विके राज्ये, धर्मसूर्यः प्रकाशते।।१०।।

उनके उत्थान से पहाड़ी राजा घबरा गये थे। समीपवर्ती सामन्त (सूबेदार) भी व्याकुल हो गये थे। सिक्खों के इस नये सात्विक राज्य में धर्म का सूर्य प्रकाशमान हो रहा था।

भीमचन्दे दिवं याते, तदानीं शासके पदे।
नाम्नाऽजमेरचद्रोऽसौ, पुत्रो राज्येऽभिषेचितः।।११।।

राजा भीमचन्द के मर जाने पर उस समय शासक के पद पर उसके पुत्र अजमेर चंद का राज्याभिषेक कर दिया गया था।

वार्तामाकर्ण्य चारैः स, मन्त्रिभिश्च सुमन्त्रितः।
चिन्तितो मानसे जातो, व्यवस्थालोपशङ्कया।।१२।।

वहाँ गुप्तचरों से इस सिक्ख–पन्थ प्रसार की बात सुनकर, मन्त्रियों से सलाह कर, पुरानी वर्णाश्रम व्यवस्था के लोप (नाश) होने की शंका से वह अजमीरचन्द मन में बहुत चिंतित हुआ।

तन्निराकरणार्थाय, पुरोहित-पुरस्सरः।
आहूय सम्मतान् भूपान्, गुरुं द्रष्टुं समाययौ।।१३।।

इसका निराकरण करने के लिए पुरोहित परमानन्द को साथ लेकर देशीय सम्मत राजाओं को बुलाकर अजमेर चन्द गुरु से मिलने को गया।

आनन्दपुरमासाद्य, साक्षात्कृत्य जनान् ततः।
खालसापूतशब्देन, नवं पन्थानमाश्रितान्।।१४।।
सत्वोत्कर्षेण निर्भीकान्, खड्गशक्तिधरान् नृपः।
कसेरीभाव बिभ्राणान्, वीक्ष्य विस्मयमागतः।।१५।।

उस राजा ने आनन्दपुर में आकर लोगों से साक्षात्कार किया। लोगों को खालसा शब्द से पवित्र हुए, नये मार्ग पर चलते हुए, सत्वगुण से बढ़े हुए, निर्भीक, कृपाण–रूपी शक्तिधारी, केसरी–वस्त्र पहने हुए को देख कर राजा ने बड़ा आश्चर्य किया।

गुरुमासाद्य स ब्रूते, कोऽयं पन्था नवीकृतः।
वर्णाऽऽश्रमव्यवस्थायां छिन्नमूलाश्च जातयः।।१६।।

उस अजमेर चन्द ने गुरु से जाकर कहा—यह तुमने कौन सा नया पंथ चलाया है, जिसने हमारी वर्णाश्रम व्यवस्था की जातियों की जड़ ही काट दी है।

अत्र पूज्या न पूज्यन्ते, छिन्द्यन्ते, धर्म-सेतवः।
शास्त्राणि भारभूतानि, वेदो खेदं वहत्यसौ।।१७।।

यहाँ पूजनीय लोग नहीं माने जा रहे हैं। धर्म के बंधन काटे जा रहे हैं। शास्त्र बेकार हो गये हैं। वेद, भगवान भी दुःखी हो रहा है।

पूर्वजैर्नो धृतो धर्मो, दूष्यते वोऽनुयायिभिः।
धृति-दम-क्षमा-स्थाने, दर्पौद्धत्यं च दृश्यते।।१८।।

आपके अनुयायियों द्वारा हमारे पूर्वजों द्वारा अपनाया धर्म दूषित किया जा रहा है। धीरज, मन का दमन और क्षमा के स्थान पर घमंड और उद्धत्ता दिखाई दे रही है।

गुरुणा प्रस्तुतो भावो, हिन्दुशक्तिर्विलीयते।
मुगलानां दुराचारैः, पीडिता निखिला जनाः।।१६।।

गुरु ने भाव प्रस्तुत किया कि हिन्दुत्व की शक्ति नष्ट हो रही है। मुगलों के दुराचारों से समस्त जनता पीड़ा पा रही है।

समुत्थिते क्षत्रशक्तौ, शाठ्याचारं विलीयते।
जात्युद्धाराय सिंहानां, सृष्टिं प्रभुः ससर्ज सः।।२०।।

क्षत्रिय–शक्ति के उत्थान से दुर्जन–शठों का अत्याचार अदृश्य हो गया है। उस भगवान ने जाति के उद्धार के लिए इन शेरों की रचना की है।

पीत्वाऽमृतमकालं तं, नत्वा पुरुषमव्ययम्।
दीक्षिता विधिनाऽनेन, सिक्खा जेष्यन्ति दृष्कृतः।।२१।।

अमृतपान कर उस अविनाशी–अकाल–पुरुष को नमस्कार कर इस ढंग से प्रशिक्षित सिक्ख दुराचारी आततायियों को जीत लेंगे।

संगछध्वं संवदध्वं, स वो मनांसि जायताम्।
वैदिकं धार्मिकं वाक्यमेतेषु कामये त्वहम्।।२२।।

'मिलकर चलो, प्रेम से बोलो, आपस में मानसिक–भाव समान हो।' यह वैदिक धर्म का वचन मैं इनमें बढ़ाना चाहता हूँ।

वर्णबन्धान्मया मुक्ताः, सर्वे क्षात्राः पराक्रमैः।
आततायि-विनाशाय, शस्त्रिणः संगताः कृताः।।२३।।

मैंने इन्हें वर्णबन्धन से मुक्त किया है। सभी पराक्रम से क्षत्रिय हैं। आततायियों को नष्ट करने को इन्हें मैंने शस्त्रधारी बनाया है।

सिंहचर्मावृताद् भीतिं, रासभात् लभते जनः।
किं पुनः खालसाद् वीरात्, त्रस्यन्ति दुर्जना न वा।।२४।।

शेर के चमड़े से ढके गधे से भी लोग डरते हैं। तो फिर खालसा वीर से दुर्जन क्यों नहीं भय पायेंगे।

निर्निमेषा मेषमाता, समक्षं हन्यते सुतः।
सुतस्य क्लेशकर्तारं, सिंहनी हन्ति सत्वरम्।।२५।।

बेटा समाने मारा जाता है तो केवल भेड ही बिना प्रतिकार किये चुपचाप देखती रहती है। शेरनी तो संतान को सताने वाले को तत्काल मार डलती है।

वर्णाश्रमगतं धर्मं, स्वार्थ-लिप्सुभिर्विकृतम्।
अकालपुरुषेणाहं, नियुक्तस्तस्य शुद्धये।।२६।।

स्वार्थ चाहने वालों ने वर्णाश्रम–धर्म क़ो बिगाड़ दिया है। उसमें शुद्धि के लिए अकालपुरुष ने ही मुझे नियुक्त किया है।

पुरुषस्य त्रिपादस्य, पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः।
प्रवेशोऽमृतपानैः सः, संगतैक्याय स्वीकृतः।।२७।।

अमृतरूप उस तीन पाद वाले अकाल पुरुष के चौथे पाद का यहाँ जन्म होता है। उस चतुर्थपाद के प्राणियों का परमात्मा प्राप्ति में, संगत की एकता में अमृतपान से पुनः प्रवेश का यह मार्ग मेरे द्वारा स्वीकार किया गया है।

जपे श्रमे भयं नास्ति, नमने श्रवणे सुखम्।
कृपाणी पापहा शूरः, सत्वोत्कर्षे धृतव्रतः।।२८।।

गुरु का नाम जपने और परिश्रम से जीवन जीने में यहां भय नहीं है। गुरुवाणी को प्रणाम करके और सुनने से सुख बढ़ता है। कृपाण धारण करने वाला शूर पापों को नष्ट करते हैं। उसके जीवन का ध्येय सत्वगुण की ही उन्नति हो जाता है।

सत्वोत्कर्षेऽशुभं नास्ति, दासानां दुर्गतिः सदा।
कर्मारामैर्महोत्कर्षैः, देशोद्धारं चराम्यहम्।।२६।।

सत्वगुण के बढ़ने से अशुभ नहीं होता है। दासों की हमेशा दुर्गति होती है। काम करने में सुख मानने वाले उत्कर्षशाली लोगों से ही मैं देश का उद्धार करवा रहा हूँ।

स्वप्रजानां समुत्थानाद्, राजा प्रकृतिरञ्जनात्।
शिक्षा-रक्षा-पालनाद्यैः, कर्मभिर्जायते शुभम्।।३०।।

अपनी प्रजा की उन्नति से, प्रजा को प्रसन्न रखने से राजा शोभा पाता है। जनता की शिक्षा, रक्षा और पालन–पोषण के कार्य से शुभ फल होता है।

वयं प्रजासहाय्याय, योगक्षेमाय नायकाः।
मार्गममुं समाश्रित्य, सत्याधर्मा भवन्तु नः।।३१।।

हम प्रजा की मदद के लिए उनके योग क्षेम के लिए नेतृत्व करते हैं। हमारे इस पन्थ का आश्रय लेकर आप भी सच्चाई को पहचानिए।

आर्यावर्तो न दास्याय, तेषां गौरवदायकाः।
'खालसाः' सत्यधर्मस्थाः करिष्यन्ति सहायताम्।।३२।।

यह आर्यावर्त देश गुलामी करने को नहीं है। उसका गौरव गाने वाले सत्य धर्म में टिके खालसा उसकी उन्नति में सहायता करेंगे।

श्रुत्वा वचांसि पथ्यानि, श्रीगोविन्दगुरोर्मुखात्।
परमार्थं विदित्वापि, राजानो नैव मेनिरे।।३३।।

इन हितकारक वचनों को गुरु गोविन्द के मुख से सुनकर भी परमार्थ को जानते हुए भी उन राजाओं ने इसे स्वीकार नहीं किया।

अनिश्चयं परं जग्मुः, पदभोगैकमानसाः।
राजनीतिं विभाव्य स्वां, मौनाः स्वविषयं ययुः।।३४।।

पद और भोग की मानसिकता वाले वे निश्चय नहीं कर पाये। अपनी तत्कालीन राजनीति को देखकर वे चुपचाप अपने देशो को चले गये।

कामेर्ष्यालोभमोहेन, विमतान् तान् समीक्ष्य सः।
खालसान् ग्रामवासेषु सावधानान् करोति स्वान्।।३५।।

उन राजाओं को काम–इर्ष्या लोभ मोह से विमुख देखकर गुरु ने सभी गांवों में अपने खालसाओं को इनसे सावधान कर दिया।

गोविन्दसिंहः सततं समन्ताद्, निर्मातुमैक्यं खलु भारतेषु।
शिष्येषु क्षात्रं ज्वलनं प्रचण्डं, विधातुकामो यतते नितान्तम्।।३६।।

श्री गोविन्दसिंह ने चारों ओर सभी भारतवासियों में एकता का निर्माण करने और प्रचण्ड क्षत्रिय तेज जलाने का अपना अभियान जारी रखा था।

इति श्री दशमेश चरिते खालसाधर्मोत्थान-प्रयासे द्वादशः सर्गः।।

त्रयोदशः सर्गः

प्रवर्तिते धर्मपथे प्रकृष्टे, सर्वत्र सत्संगविधौ समाजे।
स संगते लंघहरे श्रमे वा, संभूय निष्ठां सकलेषु ब्रूते।।१।।

धर्मपथ के प्रकर्ष पर चलते हुए वे गुरु गोविन्द सिंह सभी जगह समाज में, सत्संग में, संगत में, लंघर में, श्रम के कार्यो में एक साथ लगने की भावना का उपदेश देते थे। (दृढ़ भावना बनाते रहते थे।)

भवेद् गुरुर्नः परमो गुरुर्वा, प्रीतो प्रयासैर्मम खालसानाम्।
उत्साहशौर्यैः श्रमसिक्त-कार्यैः, स दानमानै र्जनसेवकैस्तैः।।२।।

गुरु गोविन्द कहते थे कि वह गुरु अथवा परम गुरु (नानक देव व अकाल पुरुष) मेरे खालसाओं के सत् प्रयत्नों से, उत्साह और शूरता से, श्रम–सिंचित कार्यों से और उसके दान और सत्कार द्वारा, जनसेवकों से अधिक प्रसन्न होंगे।

ओंकारमूलो हृदये स्थितो वः, 'सच्छ्रीरकालः पुरुषः' समेषाम्।
ज्ञात्वाऽमृतास्तं सकला भवन्तु, निपात्य बाह्यान्तर-शत्रुसङ्घम्।।३।।

ओंकार मूल वाला वह सत् श्री अकाल पुरुष सबके हृदय में निवास कर रहा है। उसको जानकर, बाहर भीतर के सभी बाधक शत्रुओं का विनाश कर सब संगत अमर होवें।

यावत्स्थितोऽसौ हृदये जनानां, घातेऽपि काया सबला च स्वस्था।
विसर्जिते सा मलिना च पूतिं, मृत्युं प्रयाति कृत-भैषजेऽपि।।४।।

वह अकाल पुरुष जब तक लोगों के हृदय में है तब तक घात लगने पर भी शरीर ठीक स्वस्थ और बलवान रहता है। उसके छोड़ने पर वही शरीर दवाई करने पर भी मलिन, दुर्गन्ध, सड़न, मृत्यु को चला जाता है।

सच्छ्रीरकालं परि खे लसन्तं, विहाय स्वान्ते विषयेषु सक्तः।
अन्ते प्रमादात् परिहृत्य धर्मं(रत्नं) भोगार्थलोभैर्भ्रमति भवाब्धौ।।५।।

महाकाश में विराजमान हृदय में रहने से उस सत् श्री अकाल पुरुष का परित्याग कर मानव मन प्रमाद से धर्म जैसे रत्न को त्याग कर भोग और धन के लोभ में संसार सागर में भ्रमण करता रहता है।

संसारबन्धं परिच्छेतुकामो, विक्रम्य जीवेच्च ददातु किञ्चित्।
भीतिं न कुर्याद् धृतिबुद्धियुक्त्या, पापानि हत्वा सुकृतं लभेत।।६।।
जो सांसारिक बन्धन काटना चाहता है उसे बहादुरी से मेहनत कर जीवन चलाना चाहिए और वह अपनी कमाई से कुछ दान भी करे। वही धीरज और युक्ति से दुराचार का नाश कर पुण्य को प्राप्त करता रहे।

तत्रैकदा चित्तभयं विहातुं, रम्यं प्रकृष्टं चरितं विधातुम्।
दृष्टान्तरूपेण स खालसानां, गुरुः प्रयोगं जनतासु चक्रे।।७।।
गुरु गोविन्द ने खालसाओं के मानसिक डर के व्यवहार को नष्ट करने को और रमणीय प्रकर्ष (उत्थान) वाला चरित्र बनाने की कामना से दृष्टान्त रूप से जनता में एकबार समझाने को प्रयोग किया।

स सिंहचर्मावृतरासभं वै, क्षेत्रे मुमोच नवसस्यपूर्णे।
चरत्यसौ क्षेत्र-कृषिं बभञ्ज, भयान्नरै मार्गमिदं च त्यक्तम्।।८।।
उस गुरु ने शेर के चमड़े से ढके गधे को लहलहाते अनाज के पौधों से भरे खेत में छोड़ दिया। उसने खेत की फसल चर दी,(नष्ट कर दी।) लोगों ने डर से यह खेत का मार्ग ही त्याग दिया था।

सस्यादनात् पुष्टतनुः खरोऽसौ, मुमोच नादं ननु धैवतं स्वम्।
प्रताडितः स्वामिगृहं जगाम, नद्धो बभूव खलु भर्तृ-भारैः।।६।।
फसल खाने से तकड़े इस गधे ने जब अपना धैवतनाद छोड़ा, तो लोगों द्वारा पीटे जाने पर वह अपने स्वामी के घर को भाग गया और उसके बोझ को फिर से ढोने लगा।

गुरुर्बभाषे प्रियसंगता मुदा, भवद्भिर्वृते ननु चिन्तनीयम्।
बीर्याणि ज्ञात्वा रिपवोऽस्मदीया, मैत्रीं भजन्तु, खलतां त्यजन्तु।।१०।।
गुरु ने जनता से कहा कि मेरी प्रिय संगतों को अपने आचरण के बारे में प्रेम से सोचना चाहिए। हमारे शत्रु हमारी शक्ति पहचान कर हमसे मित्रता करते हुए भय से वैर भाव छोड़ देंगे।

सुसंस्कृताः केसरिणो भवन्तः, शस्त्रास्त्रनद्धाश्चरतः स्ववृत्तिम्।
उर्जस्वलं पुण्यपराक्रमाप्तं, धर्मार्थकामं ससुखं लभध्वम्।।११।।
आप लोग संस्कार–सम्पन्न–केसरी वस्त्रधारी शेर हो। सभी हथियारों से युक्त अपनी आजिविका चलाते रहो। उत्तम सत्कर्म और बहादुरी से मिले धर्म, अर्थ और काम को सुखपूर्वक प्राप्त करते रहे।

ये यान्ति पन्थं (मार्ग) परित्यज्य भीताः, पातं लभन्ते, गुरुणा न रक्ष्याः।
अन्धं तमस्ते प्रविशन्ति घोरं, क्लिश्यन्ति नश्यन्ति गतागतेन।।१२।।
जो पन्थ को छोड़कर डर कर जाते हैं उनका पतन होता है। गुरु रक्षा नहीं कर सकते है। वे घोर अन्धेरे के नरक में पहुँचते हैं, कष्ट पाते हैं और आवागमन में नष्ट होते हैं।

कुतर्कजन्यं परिपाटिभूतं, भोगात्मकं तच्चरितं त्यजन्तु।
श्रेयस्करं पूर्तपथं चरन्तो, यूयं गुरो धाम, सुखं लभध्वम्।।१३।।
कुतर्कों से पोषित परिपाटी (परम्परा) बने हुए भोग आसक्ति के उस आचरण को आप त्याग दो। दानमान से कल्याणकारी मार्ग पर चलते हुए आप लोग सुखपूर्वक गुरु के धाम को प्राप्त करते रहो।

सैषा धरा वः कुशलैः सुसेव्या, दण्डे दयायां प्रभवः श्रुतास्ते।
उदात्तवृत्तास्तनयास्तु तेषां, सत्येन शौर्येण श्रयन्तु कामान्।।१४।।
यह वही भूमि है जिसे तुम्हारे कुशल–वँशी राजाओं ने पाला है। वे इस पर दया करने और दण्ड देने के स्वामी थे। उनके उत्तम चरित्र वाली सन्तानें सच्चाई और शूरता से अपने अभिलषित वस्तुएं प्राप्त करें और भोग भोगा करें।

स शौर्यबीजं प्रबलं विधातुं, संस्कारवृत्तिं कुरुतेऽनुकूलाम्।
सिंहान् शिशून् विक्रम-शिक्षणाय, क्रीडाविधिं नव्यतरां चकार।।१५।।
उसने शूरता के बीज को प्रबल करने के लिए अनुकूल संस्कार का व्यवहार किया। सिंह बालकों को पराक्रम की शिक्षा देने के लिए उससे नवीन खेलों की विधि बनाई थी।

होलागढाऽऽनन्दपुरस्य मध्ये, मार्गोऽतिदीर्घो रचितोऽतिभव्यः।
शस्त्रास्त्रभल्लैर् विविधैः क्रियाभिः, प्रक्रीडितुं शिष्यगणान् बभाषे।।१६।।
होलागढ और आनन्दपुर के मध्य में मार्ग को बहुत भव्य बनवाया था और वहां पर उन्होंने शिष्यों को शस्त्र, अस्त्र कुस्ती आदि अनेकों क्रियाओं में कुशलता से प्रदर्शन करने को कहा था।

ब्रूते गुरुः होलकपर्व पूर्वं, सुखाय मेलाय जनेषु त्वासीत्।
काले गते दुर्मदपङ्करागैः तदेव जातं विकृतं समाजे।।१७।।
गुरु ने लोगों को समझाया कि पहले यह होली का पर्व लोगों में सुख और मेल के लिए होता था। समय बीतते हुए अनुचित मद, कीचड़ और रंगों से समाज में खराब हो गया है।

अथाधुनोत्कर्षकरं स्वदेशे, शस्त्रास्त्र-मल्लादि-क्रियाप्रवीणाः।
उत्साह-कौतूहल-केलिभाजः, शूलासियष्टिकरणैः रमध्वम्।।१८।।
अब अपने देश में उत्कर्ष लाने के लिए आप लोग शस्त्र--अस्त्र–कुस्ती में दक्ष हो जाओ। उत्साह और कौतूहल से खेलते हुए भाले, तलवार, लाठी आदि उपकरणों को सीखने में सभी रमे रहो।

गुर्वाज्ञया हर्षित-शिष्यवृन्दाः, शूलैश्च भल्लैरथमुद्गरैश्च।
यष्टिप्रहारैः करवालघातैः, क्रीडन्ति रम्यं गुरुमार्गनिष्ठाः।।१९।।
गुरु गोविन्द सिंह की आज्ञा से हर्षित होकर सिक्खों के जत्थों ने गुरु के द्वारा निर्दिष्ट आनन्दपुर और होला गढ़के मार्ग में स्थित होकर भाले, बर्छी, गदा, लाठी और तलवारों की झंकारों से दिन भर खेलना प्रारम्भ किया।

हयाधिरूढाश्च पदातयश्च, स चालनं तत्र चरन्ति दीप्ताः।
सुविस्मयोऽभूत् पथि दर्शकानां, विलोक्य सर्वान् गुरुराप मोदम्।।२०।।
घोड़ों पर सवार और पैदल लोग वीरता से दमकते हुए वहां परेड कर रहे थे। दर्शकों को इन्हें देखकर आश्चर्य होता था और गुरु गोविन्द सिंह बड़ा आनन्द मानते थे।

विलोक्य दक्षांश्चतुरान् च शूरान्, गुरुर्जनान् तांश्च पुरस्करोति।
महाप्रसादस्य ददाति भोजं, प्रमोदपूर्णोत्सवरात्रिरासीत्।।२१।।
गुरु ने उन दक्ष, होशियार और शूर लोगों को देखकर पुनः पुरस्कार दिए। महाप्रसाद का भोज (दावत) दिया। वे रात्रियाँ आनन्द से भरी हुई होती थी।

क्रीडां च तां ग्रामगता जनौघा, गुर्वाज्ञया तत्र चरन्ति नित्यम्।
सर्वत्र सौख्यं धन-सम्पदश्च, प्रकर्षकालः प्रथितो गुरोः सः।।२२।।
गांवों में लोग गुरु की आज्ञा से इस खेल को हमेशा खेलते रहते थे। हर ओर सुख और धन सम्पत्तियाँ बढ रही थी। यह गुरु की उन्नति का श्रेष्ठ समय था।

पुरातनी नानकदेवसृष्टा, बुभुक्षिते लंघहरी व्यवस्था।
स्वक्षेत्रजैरन्नचयैः कृताऽऽसीत्, शिष्यैः स्वभोगेन च पोषिताऽभूत्।।२३।।
भूखों को भोजन देने की लंघहर की (भूख मिटाने की) सामूहिक व्यवस्था पहले गुरु नानक देव ने अपने खेत से उत्पन्न अनाज से करने को कही थी और वह शिष्यों द्वारा अब तक पाली जा रही थी।

गुर्वशंमन्नं गुरुद्वारनीतं, तत्रैव स्याल्लंघहरी व्यवस्था।
सम्प्रार्थितः सोऽमरदासदेवः, स्वीकृत्य शिष्यान् मुदितान् चकार।।२४।।
"गुरु के नाम से निकला हुआ अन्न गुरुदारों में ले जाकर वहीं लंघर की व्यवस्था होनी चाहिए।" गुरु अमरदास ने शिष्यों की ऐसी प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें प्रसन्न किया था।

अस्मद्गृहात्संग्रहणीयमन्नं, केनापि तत्र ननु प्रापणीयम्।
गुर्वंशहाराय गुरुर्दयालुः, नियुक्तवान् क्षेत्रगतान् मसन्दान्।।२५।।
हमारे घर से लेने योग्य अन्न को किसी को अवश्य वहां पहुंचाना चाहिए। इसलिए गुरु के अंश को लाने के लिए दयालु गुरु ने स्थानीय मसन्द (प्रमुख) पुरुषों को नियुक्त कर दिया था।

ालक्रमेण स्वसुखे निमग्ना, दुष्टाशयाः स्वार्थधियो हि केचित्।
वेच्छां चरन्तः, पुरुषं वदन्तः, स्वल्पान्नलब्धान् कृषकान् तुदन्ति।।२६।।
मय पाकर उनमें कुछ लोग अपनी सुख सुविधा में लीन होकर लालच
े बुरे विचारो से स्वार्थ की बुद्धि के हो गये थे। वे स्वेच्छानुसार चलते
े, कठोर शब्द बोलते थे और कम अनाज वाले किसानों को तंग करते
े।

ेषां मनो मोहगतं प्रकृष्टं, पदेषु सर्वोच्चमहं च जातः।
ाप्तं बहु स्वल्पमतोऽन्न-क्षेत्रे, भागं वहन्ति कुशलाश्च छद्मे।।२७।।
उनके मन में बड़ा भारी अज्ञान हो गया कि मैं तो पद में बड़ा हो गया हूँ। वे
ेते तो बहुत अन्न थे किन्तु अन्न क्षेत्र (लंगर) को थोड़ा अन्न भेजते थे। छल
करने में वे होशियार हो गये थे।

ुनिर्दयं क्वापि वहन्ति कर्म, कुशासनाचार-रता अनेके।
मनस्विभिः सह्यमिदं न वाच्यं, गुरुं वदन्ति परिवाद-वाक्यम्।।२८।।
कहीं कहीं वे निर्दय काम करते थे। अनेक लोग दुराचार में लग गये थे। यह
बदनामी मनस्वी शिष्य लोग नहीं सह जाते थे। वे गुरु की भी निन्दा (शिकायत)
करते थे।

जनैस्तमाकर्ण्य विचार्य शीघ्रं, सर्वान्समाहूय मसन्दवृन्दान्।
गुरुः प्रपच्छ क्रमशो वृतान्तं, कृत्यं च तेषां दुरिते रतानाम्।।२९।।
लोगों से यह सुनकर और शीघ्रता से विचार कर सभी मसन्दों के समूहों को
बुला कर गुरु ने बारी से विस्तारपूर्वक उन छलपूर्वक जीने वालों के इस कुकर्म
के वृतान्त की पूछताछ की।

ततः स दण्ड्यान् विनियोज्य दण्डे, कर्तव्यपालान् स्वगृहे ररक्ष।
पदं मसन्दं कृतवान् समाप्तं, निष्ठा गुरौ ब्रह्ममयी बभूव।।३०।।
तब उसने सजा के योग्य लोगों को सजा दी और अपना कर्तव्य पालन करने
वालों को अपने यहाँ रख लिया। मसन्द की पदवी समाप्त कर दी। तबसे उन
लोगों की गुरु में ब्रह्म (परमात्मा) वाली धारणा बन गई थी।

स संगतं प्राह स्वयं भवन्तो, गुर्वंशमाहृत्य नयन्तु स्वेच्छम्।
क्षेत्रे स्थिता लंघहरी व्यवस्था, प्रपालनीयाऽऽप्तजनैर्मिलित्वा।।३१।।
उसने संगत को कहा कि आप लोग अपने आप ही इच्छानुसार गुरु के हिस्से का अन्न लाया करें। अपने इलाके में विश्वनीय लोगों द्वारा मिलकर (लंगर) का प्रबन्ध तुम्हें स्वयं करना चाहिए।

अकालभोगं गुरुगेहलभ्यं, ददातु सेवां तु बुभुक्षितेभ्यः।
दुर्भिक्षदुःखं सकलैर्मिलित्वा, पुण्याय लोके परिहारणीयम्।।३२।।
भूखे लोगों को कुसमय पर भी अकाल पुरुष का भोग गुरुदारों में मिलता रहे। सभी लोग मिलकर समाज में दुर्भिक्ष के दुःख को पुण्य कमाने के लिए दूर करते रहें।

पञ्चा गुरुद्वारगता श्रयन्तु, पाठं श्रुतिं कीर्तन-भोग-सेवाः।
दुर्वृत्तमुक्तां वसतिं लभन्तां, स्वजनभूमिं जननीं सुरक्ष्य।।३३।।
गुरुदारों में जाकर लोग पाठ, श्रवण, कीर्तन, प्रसाद सेवा पांच काम किया करें। दुराचार से दूर रहकर अपनी माता और मातृभूमि की रक्षा करके वहां निवास किया करें।

अस्मत्कृते खालस-धर्म-हेतोः, बैशाख-संक्रान्तिरतीव पुण्या।
पुण्योदयाय भवतां भवेयु दींपावली होलकमुत्सवश्च।।३४।।
खालसा धर्म के लिए हमारे लिए बैशाखी की संक्राति बड़ी पुण्यदायक है। आपके पुण्यों को बढ़ाने वाली दीवाली और होलिका–उत्सव भी होते रहें।

वैशाख-संक्रान्ति-सभा-समाप्तौ, रामूवसी श्रीगुरुमेत्य प्राह।
भवत्कृते मेऽत्र सुता च नीता, गृहाण भो साहिब-कौरहस्तम्।।३५।।
वैशाखी सभा के विसर्जन पर अब एक बार श्री गुरुके पास पहुंच कर रामूवसी ने कहा कि यहाँ मेरी अपनी पुत्री लायी हुई है। हे गुरु मेरी पुत्री साहिबकौर का हाथ ग्रहण करके उससे आप विवाह कीजिए।

प्राह गुरुः पञ्चजनेषु मध्ये, तुष्टोऽस्मि भो पुत्रचतुष्टयेन।
स दारसंगश्च मया तु त्यक्तः, विवाहमन्यत्र भवान् करोतु।।३६।।
गुरु ने उन पांच जनों के बीच में कहा कि मैं चार पुत्रों की प्राप्ति से प्रसन्न हूं। मैंने स्त्री–प्रसंग अब छोड़ दिया है।आप इसका विवाह कहीं और किसी पुरुष के संग करें।

खत्री ब्रवीति मम प्रार्थनाऽऽसीत्, जातां सुतां स्वां गुरवे ददामि।
ततो जना मातरमुच्चरन्ति, क्व तां वहेदन्यतमो जगत्याम्।।३७।।
रामवूसी खत्री ने कहा कि मेरी प्रार्थना थी कि इस उत्पन्न हुई पुत्री का विवाह गुरु से ही करूंगा। अतः तबसे लोग इसे मां कहकर पुकारते हैं। अब आपके अलावा दूसरा कौन पुरुष इससे विवाह करेगा।

साऽऽसीत् समस्या विषमा सभायां, गोविन्दरायेण कृता व्यवस्था।
संगादृते सा यदि तिष्ठतेऽत्र, ततो विवाहोऽपि वराय भूयात्।।३८।।
सभा में यह गंभीर समस्या हो गई। अब गोविन्द राय ने व्यवस्था बताई। यदि यह मेरे संग का ध्यान छोड़कर यहां रहना चाहती है तो विवाह करना भी कल्याणकारी हो सकता है।

ये खालसाऽग्रेऽमृतपायिनः स्युः, माता भवेत् साहिब-कौर-देवी।
गोविन्द रायो जनकः समेषां, वृद्धिर्भवेत् तेन च खालसानाम्।।३६।।
जो मेरे अब अमृत पान करने वाले खालसा शिष्य होगें उनकी माता साहिब कौर होगी और गोविन्द राय उनके पिता होंगे। इससे खालसाओं की वंशव द्धि भी होती जायेगी।

सा सम्मता साहिब-कौर-देवी, प्रगृह्य पित्रोः पदपङ्कजानि।
हर्षाश्रुपूर्णा च गुरुं जगाम, मोदं परं तत्र तु खालसानाम्।।४०।।
साहिब कौर देवी ने माता–पिता के चरण पकड़ कर इस बात को स्वीकार कर लिया और हर्ष के अश्रु बरसाती हुई गुरुगोविन्द के पास चली गई। इससे खालसाओं को परम आनन्द प्राप्त हुआ।

इति श्री दशमेश चरिते खालसा-व्यवस्थावर्धने त्रयोदशः सर्गः।।

चतुर्दशः सर्गः

विनिर्मिते धर्मचक्रे, सिंहायन्ते स्वतो जनाः।
रायपदं गुरुर्हित्वा, गोविन्दसिंह उच्यते।।१।।

धर्मचक्र के चलते ही लोग अपने आप ही शूर (शेर) बन गये थे। अब वे गुरु गोविन्द राय शब्द छोड़कर गोविन्द सिंह हो गये थे।

ज्वलितं धर्मज्योतिस्तत्, जनानां हृदि नूतनम्।
अन्यायोत्पीडनं यत्र, भस्मसात् क्रियते जनैः।।२।।

लोगों के मन में वह नई धर्म की ज्योति प्रज्वलित हुई थी, जिसके द्वारा उन्होंने अन्याय और अत्याचार को भस्म करना प्रारम्भ कर दिया था।

त्यागस्तपश्च निर्भीतिः, साहसं सुसमर्पणम्।
पुञ्जीभूता गुणा जाता, अकालीपुरुषेषु ते।।३।।

उन अकाल के (भक्त) पुरुषों में त्याग, तपस्या, निर्भय, साहस और आत्मसमर्पण के ढेर सारे सद्‌गुण उत्पन्न हो गये थे।

आशावन्तश्च विश्वस्ता, धर्मिष्ठाः सद्‌विवेकिनः।
गुरौ श्रद्धां दधत्येते, तत्पराः जीवत्यागिनः।।४।।

आशावान् विश्वासी, धार्मिक, अच्छी विवेक की शक्ति वाले वे लोग गुरु में बड़ी श्रद्धा रखते थे, वे उसके लिए जीवन त्यागने को प्रस्तुत रहते थे।

ते ब्रुवन्ति, गृहे ग्रामे, नाम जपत निष्ठया।
परिश्रमार्जित वित्तं, भोग्यं देयं यथेच्छया।।५।।

वे प्रत्येक घर में, गांवों में प्रेमपूर्वक निष्ठा से नाम जपने को कहते थे और अपनी मेहनत से कमाई हुई धनराशि को इच्छानुसार भोगने और बांटने को कहते थे।

घृणां वैरं परित्यज्य, स्मरत मृत्युमागतम्।
मिथ्या सांसारिकी माया, सच्छ्रीरकाल एधते।।६।।

आपस के घृणा और वैर को त्याग कर आती हुई मृत्यु का ध्यान रखो। सांसारिक माया व्यर्थ का बन्धन है। केवल सत् श्री अकाल ही बढ़ता है। (अविनाशी है।)

तेषां न्यायस्य मार्गेण, स्वार्थहिंसा विलुप्यते।
भयान्तक-विमुक्तेषु, सुकृतानि फलन्ति च।।७।।

उन लोगों के न्याय के मार्ग पर चलने से स्वार्थ की हिंसा गायब हो गई थी और भय तथा आतंक से मुक्त लोगों के पुण्य बढ़ने लग गये थे।

गुरुणा घोषितं नाहं, राज्यमैश्वर्यमर्थये।
प्रार्थये भारतीयानां, स्वराज्यं मानमूलकम्।।८।।

गुरु ने घोषणा की कि मैं राज्य या सम्पत्ति का संग्रह नहीं चाहता हूँ। मैं तो भारतवासियों का सम्मान जनक स्वराज की कामना करता हूँ।

यत्र सत्यं हितं तथ्यं, प्राणिनामार्तिनाशनम्।
शमनं दास्यभावनां, यवनैर्ये प्रवेशिताः।।६।।

जिस स्वराज में सच्चाई, भलाई, वास्तविकता और लोगों का कष्ट दूर हो। मुगलों ने हमारे भीतर जिन दासता के भावों को पैदा किया है, उनका नाश करवाना चाहता हूँ।

आर्यावर्तो न दास्याय, स वै लोकगुरुर्ध्रुवम्।
गुरु-शिष्याः न भोग्याः स्युः, भागभाजो भवन्तु ते।।१०।।

यह आर्यावर्त गुलामी के लिए नहीं। यह तो निश्चय ही लोगों गुरु रहा है। ये गुरु शिष्य भोगने की चीजें नहीं है, ये अपना (भोग) भाग अपने आप [illegible] बनें।

चतुर्दशः सर्गः

विनिर्मिते धर्मचक्रे, सिंहायन्ते स्वतो जनाः।
रायपदं गुरुर्हित्वा, गोविन्दसिंह उच्यते।।१।।

धर्मचक्र के चलते ही लोग अपने आप ही शूर (शेर) बन गये थे। अब वे गुरु गोविन्द राय शब्द छोड़कर गोविन्द सिंह हो गये थे।

ज्वलितं धर्मज्योतिस्तत्, जनानां हृदि नूतनम्।
अन्यायोत्पीडनं यत्र, भस्मसात् क्रियते जनैः।।२।।

लोगों के मन में वह नई धर्म की ज्योति प्रज्वलित हुई थी, जिसके द्वारा उन्होंने अन्याय और अत्याचार को भस्म करना प्रारम्भ कर दिया था।

त्यागस्तपश्च निर्भीतिः, साहसं सुसमर्पणम्।
पुञ्जीभूता गुणा जाता, अकालीपुरुषेषु ते।।३।।

उन अकाल के (भक्त) पुरुषों में त्याग, तपस्या, निर्भय, साहस और आत्मसमर्पण के ढेर सारे सद्‌गुण उत्पन्न हो गये थे।

आशावन्तश्च विश्वस्ता, धर्मिष्ठाः सद्विवेकिनः।
गुरौ श्रद्धां दधत्येते, तत्पराः जीवत्यागिनः।।४।।

आशावान् विश्वासी, धार्मिक, अच्छी विवेक की शक्ति वाले वे लोग गुरु में बड़ी श्रद्धा रखते थे, वे उसके लिए जीवन त्यागने को प्रस्तुत रहते थे।

ते ब्रुवन्ति, गृहे ग्रामे, नाम जपत निष्ठया।
परिश्रमार्जित वित्तं, भोग्यं देयं यथेच्छया।।५।।

वे प्रत्येक घर में, गांवों में प्रेमपूर्वक निष्ठा से नाम जपने को कहते थे और अपनी मेहनत से कमाई हुई धनराशि को इच्छानुसार भोगने और बांटने को कहते थे।

घृणां वैरं परित्यज्य, स्मरत मृत्युमागतम्।
मिथ्या सांसारिकी माया, सच्छ्रीरकाल एधते।।६।।

आपस के घृणा और वैर को त्याग कर आती हुई मृत्यु का ध्यान रखो। सांसारिक माया व्यर्थ का बन्धन है। केवल सत् श्री अकाल ही बढ़ता है। (अविनाशी है।)

तेषां न्यायस्य मार्गेण, स्वार्थहिंसा विलुप्यते।
भयान्तक-विमुक्तेषु, सुकृतानि फलन्ति च।।७।।

उन लोगों के न्याय के मार्ग पर चलने से स्वार्थ की हिंसा गायब हो गई थी और भय तथा आतंक से मुक्त लोगों के पुण्य बढ़ने लग गये थे।

गुरुणा घोषितं नाहं, राज्यमैश्वर्यमर्थये।
प्रार्थये भारतीयानां, स्वराज्यं मानमूलकम्।।८।।

गुरु ने घोषणा की कि मैं राज्य या सम्पत्ति का संग्रह नहीं चाहता हूँ। मैं तो भारतवासियों का सम्मान जनक स्वराज की कामना करता हूँ।

यत्र सत्यं हितं तथ्यं, प्राणिनामार्तिनाशनम्।
शमनं दास्यभावनां, यवनैर्ये प्रवेशिताः।।६।।

जिस स्वराज में सच्चाई, भलाई, वास्तविकता और लोगों का कष्ट दूर हो। मुगलों ने हमारे भीतर जिन दासता के भावों को पैदा किया है, उनका नाश करवाना चाहता हूँ।

आर्यावर्तो न दास्याय, स वै लोकगुरुर्ध्रुवम्।
गुरु-शिष्याः न भोग्याः स्युः, भागभाजो भवन्तु ते।।१०।।

यह आर्यावर्त गुलामी के लिए नहीं। यह तो निश्चय ही लोगों गुरु रहा है। ये गुरु शिष्य भोगने की चीजें नहीं है, ये अपना (भोग) भाग अपने आप पाने वाले बनें।

चतुर्दशः सर्गः

विनिर्मिते धर्मचक्रे, सिंहायन्ते स्वतो जनाः।
रायपदं गुरुर्हित्वा, गोविन्दसिंह उच्यते।।१।।

धर्मचक्र के चलते ही लोग अपने आप ही शूर (शेर) बन गये थे। अब वे गुरु गोविन्द राय शब्द छोड़कर गोविन्द सिंह हो गये थे।

ज्वलितं धर्मज्योतिस्तत्, जनानां हृदि नूतनम्।
अन्यायोत्पीडनं यत्र, भस्मसात् क्रियते जनैः।।२।।

लोगों के मन में वह नई धर्म की ज्योति प्रज्वलित हुई थी, जिसके द्वारा उन्होंने अन्याय और अत्याचार को भस्म करना प्रारम्भ कर दिया था।

त्यागस्तपश्च निर्भीतिः, साहसं सुसमर्पणम्।
पुञ्जीभूता गुणा जाता, अकालीपुरुषेषु ते।।३।।

उन अकाल के (भक्त) पुरुषों में त्याग, तपस्या, निर्भय, साहस और आत्मसमर्पण के ढेर सारे सद्गुण उत्पन्न हो गये थे।

आशावन्तश्च विश्वस्ता, धर्मिष्ठाः सद्विवेकिनः।
गुरौ श्रद्धां दधत्येते, तत्पराः जीवत्यागिनः।।४।।

आशावान् विश्वासी, धार्मिक, अच्छी विवेक की शक्ति वाले वे लोग गुरु में बड़ी श्रद्धा रखते थे, वे उसके लिए जीवन त्यागने को प्रस्तुत रहते थे।

ते ब्रुवन्ति, गृहे ग्रामे, नाम जपत निष्ठया।
परिश्रमार्जितं वित्तं, भोग्यं देयं यथेच्छया।।५।।

वे प्रत्येक घर में, गांवों में प्रेमपूर्वक निष्ठा से नाम जपने को कहते थे और अपनी मेहनत से कमाई हुई धनराशि को इच्छानुसार भोगने और बांटने को कहते थे।

घृणां वैरं परित्यज्य, स्मरत मृत्युमागतम्।
मिथ्या सांसारिकी माया, सच्छ्रीरकाल एधते।।६।।

आपस के घृणा और वैर को त्याग कर आती हुई मृत्यु का ध्यान रखो। सांसारिक माया व्यर्थ का बन्धन है। केवल सत् श्री अकाल ही बढ़ता है। (अविनाशी है।)

तेषां न्यायस्य मार्गेण, स्वार्थहिंसा विलुप्यते।
भयान्तक-विमुक्तेषु, सुकृतानि फलन्ति च।।७।।

उन लोगों के न्याय के मार्ग पर चलने से स्वार्थ की हिंसा गायब हो गई थी और भय तथा आतंक से मुक्त लोगों के पुण्य बढ़ने लग गये थे।

गुरुणा घोषितं नाहं, राज्यमैश्वर्यमर्थये।
प्रार्थये भारतीयानां, स्वराज्यं मानमूलकम्।।८।।

गुरु ने घोषणा की कि मैं राज्य या सम्पत्ति का संग्रह नहीं चाहता हूँ। मैं तो भारतवासियों का सम्मान जनक स्वराज की कामना करता हूँ।

यत्र सत्यं हितं तथ्यं, प्राणिनामार्तिनाशनम्।
शमनं दास्यभावनां, यवनैर्ये प्रवेशिताः।।६।।

जिस स्वराज में सच्चाई, भलाई, वास्तविकता और लोगों का कष्ट दूर हो। मुगलों ने हमारे भीतर जिन दासता के भावों को पैदा किया है, उनका नाश करवाना चाहता हूँ।

आर्यावर्तो न दास्याय, स वै लोकगुरुर्ध्रुवम्।
गुरु-शिष्याः न भोग्याः स्युः, भागभाजो भवन्तु ते।।१०।।

यह आर्यावर्त गुलामी के लिए नहीं। यह तो निश्चय ही लोगों गुरु रहा है। ये गुरु शिष्य भोगने की चीजें नहीं है, ये अपना (भोग) भाग अपने आप पाने वाले बनें।

गुरुगोविन्दसिंहस्य, शौर्यौदार्यस्य वर्धिकाः।
प्रतिपिण्डं गता वार्ताः, शिष्यानां वर्धते चयः।।११।।

गुरु गोविन्द सिंह की शूरता और उदारता को बढ़ने वाली ये बातें प्रत्येक ग्राम के व्यक्ति के पास गई और शिष्यों का समूह लगातार बढ़ने लगा था।

दस्यवो ये च लुष्ठाका, भीता लीनाः क्षयंगताः।
पापाचाराश्च सामन्ता, यवनैः शरणीकृताः।।१२।।

जो लुटेरे डकैत थे डर कर छिप गये थे, नष्ट हो गये थे। पापाचारी सामन्त लोग भाग कर मुगलों की शरण में चले गये थे।

राज्यभ्रंशधिया चैव, राजानः करदाः पुनः।
भोगैश्वर्य-विमुग्धत्वाद् मुगलानां समर्थकाः।।१३।।

कर देने वालो राजा लोग फिर राज्य के भ्रंश होने के विचार से और भोग एवं ऐश्वर्य में मोहित होने के कारण से मुगलों के ही समथर्क थे।

पापाचाररता धृष्टाः, पक्वा कालक्रमेण वै।
न गृह्णन्ति गुरोर्वाक्यं, स्वार्थकामहतात्मनः।।१४।।

जो पाप कार्यों में लगे रहते थे, धृष्ट थे, समय के कारण पक गये थे। वे स्वार्थ की कामना से आत्मा के मर जाने पर गुरु की बातों को नहीं सुनते थे।

गूढाचारैर्गतिं ज्ञात्वा, छिद्रान्वेषणतत्पराः।
ते चिन्वन्ति वधोपायं, प्रतीक्षन्ते यतस्ततः।।१५।।

ऐसे लोग कमियां ढूंढते हुए गुप्तचरों से गुरु की गतिविधि जानकर उनके वध का उपाय ढूंढते थे। वे जहाँ कही भी समय का इंतजार करते थे।

कदाचित् स्वजनैः साकं, मृगयार्थं गतं गुरुम्।
श्रुत्वा चारैश्च तं हन्तुं, भूपालौ चक्रतुर्मनः।।१६।।

कभी अपने लोगों के साथ शिकर खेलने को गये हुए गुरु की चर्चा गुप्तचरों से सुनकर दो राजाओं ने उन्हें मारने का मन बनाया।

मिलित्वा बलियाचन्द, आलमचन्दभूपतिः।
आक्रमतौ ग्रहीतुं तं, वनं रुद्धं समन्ततः।।१७।।

बलियाचन्द और आलमचन्द राजा ने मिलकर वन का घेराव किया गुरु गोविन्द सिंह को बन्दी बनाने के लिए आक्रमण किया।

तौ जघ्नतुः जनान् तत्र, गुरुं बद्धुं कृतोद्यमौ।
गुरुर्ज्ञात्वा तयोर्वृत्तं, गिरिपृष्टं रुरोह सः।।१८।।

उन दोनों ने वहां गुरु के लोगों को मार डाला, गुरु को बांधने का उद्यम किया। गुरु उनका समाचार जानकर पहाड़ के ऊपर चढ़ गये।

तेषु वाणान् मुमोचाशु, शत्रवस्त्रिदिवं गताः।
बलियाचन्द-बाहुश्च, शिष्येणैकेन खण्डितः।।१६।।

उन पर तब गुरु ने बाण वर्षा कर दी। वे शत्रु मर कर स्वर्ग चले गये। उस युद्ध में एक शिष्य ने राजा बलिया चन्द्र का हाथ काट दिया।

आलमचन्दशीर्षं च, छिन्नं चान्येन खड्गिना।
द्राविते बलियाचन्दे, चाऽन्ये प्राणेप्सवो गताः।।२०।।

दूसरे शस्त्र–धारी शिष्य ने आलमचन्द का सिर काट दिया। बलियाचन्द के भागने पर दूसरे लोग भी प्राण बचाने को भाग गये।

समाश्वास्य गुरुर्शिष्यान्, सद्गतिं मृतकान् ददौ।
निर्मलाश्च दिशो जाता, वात्याचक्रे तथागते।।२१।।

गुरु ने शिष्यों को धीरज दिया। उन्होंने मरे हुए लोगों को सद्गति प्रदान की। इस आंधी के वैसे ही चले जाने पर सभी दिशाएं साफ हो गई थीं।

अथैतां दुर्दशां भुक्त्वा, बलियाचन्दभूपतिः।
सरहिन्दपतिं पत्रे, गुरुभीतिमवर्णयत्।।२२।।

इस कांड में राजा बलियाचन्द ने ऐसी दुर्दशा भोग कर गुरु से भय का वर्णन करते हुए सरहिन्द के सूबेदार को पत्र लिखकर भेज दिया।

भङ्क्तुं गुरुप्रभावं तं, राज्यपालो वजीरखां।
लिलेख नृपतिं दिल्लीं, पार्वतानां भयं व्यथाम्।।२३।।

गुरु के बढ़ते प्रभाव को नाश करने के उद्देश्य से सरहिन्द के राज्यपाल वजीरखान ने पहाड़ी राजाओं के डर और दुःख की सारी कथा दिल्ली में बादशाह के दरबार में लिख कर भेज दी।

पत्रं पठित्वा दिल्लीस्थैः, गुरुं शामयितुं ततः।
सरहिन्दस्य साहाय्ये, द्वे सेने तु नियोजिते।।२४।।

पत्र को पढ़कर दिल्ली दरबार वालों ने गुरु का उपद्रव शान्त करने को सरहिन्द की मदद के लिए दो सेनाएं नियुक्त कर दी।

दीनावेगश्च पैदेखान्, सहस्रपञ्च-सैनिकैः।
दिल्लीतश्चलितौ शीघ्रं, गुरुकण्टकशौधकौ।।२५।।

पांच सौ सैनिकों को साथ लेकर दीनावेग और पैदेखान् गुरु रूपी कांटे को शोधने के लिए दिल्ली से जल्दी चल दिए।

रोपड़स्थानमागत्य, पार्वतैः सह संगतौ।
निन्दन्तौ तान् च सामर्थ्यं, स्वकीयं तौ प्रदर्शतः।।२६।।
रोपड़ नामक जगह में आकर वे पहाड़ी राजाओं से मिले। उन पहाड़ी राजाओं की हिम्मत की निन्दा करते हुए वे दोनों अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन करने लगे।

वार्तामाकर्ण्य चारेभ्यो, गुरुः शिष्यान् समादिशत्।
धर्मयुद्धं करिष्यामः, ताडितो दुन्दुभिर्मुहुः।।२७।।
दूतों से इस आक्रमण का समाचार पाकर गुरु ने शिष्यों को आज्ञा दी। हम इनसे धर्म–युद्ध करेंगे और फिर रणजीत नाम का नगाड़ा बजाया गया।

श्रुत्वाऽऽह्वानं महोत्साहाः, खालसा धर्मरक्षकाः।
परितो ग्रामग्रामेभ्य, आनन्दपुरमागताः।।२८।।
गुरु की पुकार सुनकर महान् उत्साही धर्म के रक्षक खालसा लोग चारों ओर गांवों से निकलकर आनन्दपुर में आने लगे।

गोविन्दो नायकान् वृत्वा, शस्त्र-सज्जान् च सैनिकान्।
व्यूहं कृत्वाऽथ गुल्मेषु, प्रत्याक्रमति तानरीन्।।२९।।
गुरु गोविन्द सिंह ने सेना के नेता को छांटकर शस्त्रों से सजे सैनिकों को लेकर व्यूह रचना करवाई और छोटी टुकड़ियों में उन शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया।

समरं तत्र दुर्घर्षं, सेनयोरुभयोरभूत्।
चीत्कारं दुन्दुभिध्वानं, वर्धमानमश्रूयत।।३०।।
वहाँ दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ। चीत्कार और नगाड़े की तेज बढ़ती हुई आवाजें चारों ओर सुनाई दे रही थी।

हेषन्ते वाजिनस्तत्र, श्रूयते खड्गझंकृतिः।
कथं पलायसे? तिष्ठ, मृत्युस्त्वां च प्रतीक्षते।।३१।।

वहां युद्ध में घोड़े हिनहिना रहे हैं। खड्गों की झंकार सुनाई देती है। कैसे भागता है? ठहर, मौत तेरी प्रतीक्षा कर रही है।

यो वदेत् सो निहालः स्यात्, सच्छ्रीरकाल वर्धतात्।
घोषेण खालसानां तु, मुगला मूर्च्छिता गताः।।३२।।

'जो बोले सो निहाल' "बढ़ता रहे सत् श्रीरकाल।" सिक्खों (खालसाओं) की इस घोषणा को सुनकर मुगल सैनिक मूर्छित होने लगे थे।

पैदेखां वदति दृष्ट्वा, हतोत्साहानू स्वसैनिकान्।
युधध्वं न पलायध्वं, जयत धर्म-द्रोहिणः।।३३।।

उत्साहहीन अपने सैनिकों को देखकर पैदे खां कहता है–लड़ों, लड़ों, भागों मत। इन सभी धर्मद्रोहियों को जीत डालो।

युद्धं नैतद् धर्मयुद्धं, सिक्खान् जयत नास्तिकान् (काफिरान्)।
वयं तु शासकास्तेषां, कथं तेभ्यो बिभीयते।।३४।।

यह युद्ध नहीं, धर्म युद्ध है। इन काफिर सिक्खों को जीतो। हम तो इन लोगों के शासक है? तुम इनसे क्यों डरते हो?

सच्छ्रीरकालघोषेण, वर्धमानाश्च खालसाः।
छिन्दन्ति यवनान् सेनां, दलन्ति द्रावयन्ति च।।३५।।

सत् श्री अकाल की आवाज से बढ़ते हुए खालसा लोग मुस्लिम सेना को छेद रहे थे, दल रहे थे और दौड़ा रहे थे।

अश्वारूढो गुरुस्तत्र, दीप्तोत्साहान् च खालसान्।
वर्धापनानि तान् ब्रूते, शत्रून् पातयतः पुरः।।३६।।

घोड़े पर सवार हुए गुरु उस युद्ध में सामने दुश्मन गिराते हुए उत्साह–सम्पन्न वीर खालसाओं को बधाई दे रहे थे।

पैदेखां सन्मुखे यातं, गुरुं ब्रूते-क्च गम्यते।
धिक् त्वां पदातिहन्तारं, मया युद्ध्यस्व चेद् बलम्।।३७।।

पैदे खां ने सामने जाते गुरु से कहा–कहां आते हो। पैदल सैनिकों को मारने वाले तुम्हें धिक्कार है। ताकत है तो मुझसे आकर लड़ो।

अश्वारूढो गुरुब्रूते, पूर्वं प्रहर साम्प्रतम्।
मृगं त्वां हन्मि तत्पश्चाद्, बाणद्वयविमोचने।।३८।।

घुड़सवार गुरु ने कहा–अब तुम पहले मुझपर प्रहार करो। तुझ जैसे मृग को मैं तुम्हारे दो बाण छोड़ने के बाद ही मारूंगा।

पैदेखां तत् समाकर्ण्य, रोषाददीप्तो गुरुं प्रतिं।
रक्षाव्यूहं चरन् तीक्ष्णं, शरमुच्चैर्मुमोच तत्।।३९।।

पैदेखां ने गुरु के ये वचन सुनकर रोष से दमकते हुए अपनी रक्षा क़ी व्यूह रचना करते हुए जोर से गुरु के ऊपर तेज बाण फेंका।

तस्मात् सुरक्षितं वीक्ष्य, द्वितीयं सन्धदौ शरम्।
मोघीभूते प्रयासेऽस्य, गुरुश्चापे दधौ शरम्।।४०।।

उससे गुरु को सुरक्षित देखकर उसने दूसरे बाण का संधान किया। उसके इस प्रयास के भी असफल होने पर अब गुरु ने धनुष पर बाण चढ़ाया।

स्वर्णपक्ष्मयुतो बाणः, कर्णं भित्त्वा परं गतः।
पैदेखां पतितः पृथ्व्यां, सर्वाङ्गकवचो मृतः।।४१।।

सोने के पंख वाला बाण उसका कान भेद कर पार चला गया। पैदे खां पृथिवी पर गिर पड़ा। कवच से सारा शरीर ढका हुआ भी मर गया था।

पैदेखां-पतनं दृष्टा, दलनं दृप्तसेनयोः।
पार्वतान् कौतुकासक्तान्, दीनावेगो दधौ भयम्।।४२।।

पैदेखां का पतन देखकर, दोनों सेनाओं के दलने को और पहाड़ियों की तामशें की आसक्ति देखकर दीना वेग को भारी भय हो गया था।

निन्दन् स पार्वतान् भूपान्, भग्नोत्साहः स्वसैनिकान्।
दीनावेगो गृहं यातुं, न्यवर्तत रणाङ्गणात्।।४३।।

पहाड़ी राजाओं की निन्दा करते हुए दीनावेग ने उत्साह भंग होने पर अपने सैनिकों को घर जाने के लिए युद्ध से लौटने का आदेश दिया।

खालसाः सैनिका घ्नन्ति, रिपून् युद्धात् पलायितान्।
यावद् रोपडं स्थानं, गुरुणा ते निवारिताः।।४४।।

युद्ध से भगे हुए उन सैनिकों को खालसा सैनिक मारते गये और रोपड़ (रूपनगर) नामक स्थान तक उन शत्रुओं को भागते हुए सिक्ख सैनिकों को गुरु ने रोक दिया।

कर्तितान् यवनान् दृष्टवा, रौद्रैस्तैः सिक्ख-सैनिकैः।
भीताश्च पार्वता बीराः, स्वराज्येषु गतास्तदा।।४५।।

इन विकराल सिक्खों से कटे हुए मुस्लिम सैनिकों को देखकर डरे हुए पहाड़ी वीर सैनिक भी अपने राज्यों में वापस चले गये।

इति श्रीदशमेशचरिते सिक्ख-यवन-संघर्षे चतुर्दशः सर्गः।

पञ्चदशः सर्गः

सा शाहसेना तु पराजिताऽभूद्, दिल्लीं गतो दुःखितदीनवेगः।
अत्राऽन्तरे दक्षिणराजवर्गं, दिल्लीश्वरः शास्तुमितो गतोऽभूत्।।१।।

वह बादशाह की फौज हार गई थी। दुःखी दीनावेग दिल्ली चला गया था। इसी बीच में इन दक्षिण के राजाओं को जीतने के लिए दिल्ली का बादशाह औरंगजेब वहां गया हुआ था।

ततो मराठाः सबलाः समस्तान्, सीमान्तभागान् स्ववशे चरन्तः।
औरङ्गजेबं च तृणाय मत्वा, ख्याताः प्रजासु कुशलाः सुसौम्याः।।२।।

वहाँ बलवान् मराठों ने सीमा प्रान्त के सभी लोगों को अपने अधीन कर औरंगजेब की मान्यता नष्ट करते हुए जनता में कुशल और सौम्य भाव प्राप्त कर लिया था।

प्रशासका बाहमनीप्रदेशे, तं शक्तितो निर्बलमेव चक्रुः।
विचिन्त्य स्वामात्यगणैर्व्यवस्थां, तान् साधितुं भूरिबलैः प्रतस्थौ।।३।।

बाहमनी प्रदेश के शासकों ने अपनी ताकत से उस मुगल राज्य को बलहीन ही कर दिया था। अपने मन्त्रियों से शासन व्यवस्था का विचार विमर्श कर वह बड़ी सेना लेकर उन्हें वश में करने को चला गया था।

चपेटपातं गुरुणां कृत तत्, निशम्य सर्वं खलु दीनवेगात्।
अमात्यवर्गो भ्रमितो बभूव, तैर्निन्दिताः पार्वत-पार्थिवास्ते।।४।।

गुरु द्वारा लगाई गई इस चपत की बात को दीनावेग से सुनकर दिल्ली के सभी मन्त्री चक्कर में पड़ गये थे। उन्होंने उन पहाड़ी राजाओं की बड़ी निन्दा की।

संमन्त्र्य सर्वं कुटिलं नयज्ञैः, संसूचिताः पार्वतभूमिपालाः।
सर्वे मिलित्वा गुरुधामपातं, कुर्वन्तु शीघ्रं यदि राज्यकांक्षा।।५।।

उन नीतिविशारद मन्त्रियों ने आपस में कुटिल मंत्रणा करके पहाड़ी राजाओं को सूचना भेजी कि अगर वे अपना राज्यं सुरक्षित चाहते हैं तो सभी मिलकर गुरु के स्थान आनन्दपुर का विनाश कर दें।

औरङ्गजेबो न च याति यावत्, तावत्प्रयत्नं त्वरितं चरन्तु।
राज्येन भ्रष्टा विलयं प्रयान्तु, शाहाऽऽगते दक्षिणराज्यलाभात्।।६।।
जब तक बादशाह औरंगजेब वापस नहीं आते हैं उससे पूर्व ही इस काम को प्रयत्नपूर्वक शीघ्र करें। नहीं तो औरंगजेब के दक्षिण जीतकर वापस आने पर आप सब राजगद्दी से च्युत होकर नष्ट कर दिए जाओगे।

पत्रेण चारैश्च विभाव्य सर्वं, भ्रान्तो भृशं स कहलूर-भूपः।
आमन्त्रयामास सभां नृपाणां, संप्रेष्य दूतान् नृपतींश्च नेतुम्।।७।।
पत्र से और दूत के द्वारा सभी समाचार समझ कर वह कहलूर का राजा अजमेर चन्द घबड़ा गया। उसने सभी पर्वतीय राजाओं को बुलाने के लिए दूत भेजकर बड़ी भारी सभा का आमंत्रण दिया।

औरङ्गजेबाद् भयमेत्य सर्वैर्गोविन्दसिंहो लिखितस्तदानीम्।
अस्माभिरेषा धरणी प्रदत्ता, पित्रे निवासाय च भाटकेन।।८।।
उन सबने औरंगजेब से भयभीत होकर उस समय गुरु गोविन्द सिंह को एक पत्र लिखा कि हमने यह भूमि तुम्हारे पिता को रहने के लिए किराये पर दी हुई है।

स त्वं प्रयच्छाशु समस्तभाटं, विहाय राज्यं व्रज वा ततोऽन्यत्।
सोढा वयं ते न तथा स्वतन्त्रं, संघर्षणं राजसु वञ्चकत्त्वम्।।९।।
इसलिए तुम सारा किराया तत्काल दे दो या राज्य को छोड़कर दूसरी जगह बस जाओ। हम तुम्हारी स्वतंत्रता को नहीं सह सकते हैं। राजाओं से संघर्ष करना तो तुम्हारा ठगपना ही है।

सम्प्रेष्य पत्रं सबलाः समस्ता, गतास्तदाऽऽनन्दपुरं च रोद्धुम्।
शस्त्रास्त्रनद्धाश्च विचारमूढा, दिल्लीं लिखन्त्यांक्रमणे स्वयोगम्।।१०।।
इस प्रकार पत्र भेजकर सभी सेना लेकर शस्त्रास्त्रों से तैयार होकर आनन्दपुर को घेरने के लिए चले गये। विचारों से मूर्ख वे राजा लोग दिल्ली के बादशाह को आक्रमण करने में योगदान देने के लिए लिखते हैं।

पत्रं पठित्वाऽऽगमनं चमूनां, गुरुर्विलोक्योत्तरमस्य ब्रूते।
क्रीताऽस्ति भूमिर्जनकेन मूल्यैः, तां रक्षितुं साहसिका जना मे।।११।।
पत्र पढ़कर तथा सेनाओं का आगमन देखकर गुरु ने उन्हें इसका उत्तर दिया कि मेरे पिता ने अपने मूल्यों से जमीन खरीदी है। उस भूमि की रक्षा करने को मेरे लोगों में प्रबल साहस है।

प्रदेयमानन्दपुरं न तावद्, युद्ध्यन्तु भुञ्जन्तु विशन्तु नाकम्।
लोकद्वयं हस्तगतं ममैषां, धर्माश्रितानां किल खालसानाम्।।१२।।
आनन्दपुर वापस नहीं लिया जा सकता है। अब युद्ध करो, राज्य भोगों या स्वर्ग पहुँचो। मेरे इन खालसा धर्मधारियों के हाथों में अब दोनों ही लोक हैं।

प्रत्युद्यमाय परितः स्वशिष्यान्, ग्रामान्तरेभ्यो गुरुराजुहाव।
उवाच तान् सा भवतां परीक्षा, राज्याय स्वर्गाय समागतेयम्।।१३।।
गुरु ने दूसरे गांवों से रण में उद्यम करने के लिए अपने सभी शिष्यों को बुलाया। उसने कहा– यह आप लोगों के राज पाने की या स्वर्ग जाने की परीक्षा की घड़ी आई है।

सङ्गृह्य शस्त्राणि च नायकस्य, यूयं नियोगे स्वदिशं च पात।
घाते रिपूणां, दलने चमूनां, सिंहा गजानामिव वः समर्थाः।।१४।।
अपने सेनानायक के आदेश से हथियार लेकर अपनी दिशा की रक्षा करो। रिपुओं को मारने में, सेनाओं को दलने में, हाथियों को मारने में शेर जैसे आप लोग समर्थ हैं।

सम्प्रार्थ्य तातं शतशूरसङ्घः, योद्धुं ययौ साकमजीतसिंहः।
उत्साहवन्तं ज्वलनं विलोक्य, महोत्सवोऽभून् ननु खालसानाम्।।१५।।
पिता से प्रार्थना करके सौ वीरों को लेकर गुरु–पुत्र अजीत सिंह लड़ने को गया। उत्साह वाले, जलती आग जैसे उसे देखकर खालसाओं में महान् उत्सव हो गया था।

सेनाऽऽक्रमन्ती गिरिपार्थिवानां, समस्तमानन्दपुरं रुरोध।
जाते रणे रागड़सैनिकानां, वने द्रुमाणामिव कर्तनं तत्।।१६।।
पहाडी राजाओं की आक्रमण करती हुई सेना ने सारे आनन्दपुर को चारों ओर से घेर लिया। अब युद्ध प्रारंभ होने पर वहाँ वन में पेड़ों की तरह सैनिक कट गये थे।

कथं प्रभूतैर्नवरागद्वेषैः, पक्षावुभौ तत्र जयं श्रयेताम्।
मासद्वयं युद्धमभूद् द्वयोस्तन्, न निश्चयं याति जयाय कोऽपि।।१७।।
बहुत बड़े नये रागद्वेष के बिना दोनों पक्ष कैसे जीत सकते थे। दो महीने तक उन दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। किसी भी पक्ष में विजय का निश्चय नहीं हो पाया था।

दृष्ट्वा प्रयत्नं विफलं तदानीं, ते पार्वता मंत्रणमत्र चक्रु।
जेतुं न शक्याः समरे च सिक्खाः, स्फूर्तं बलं दीव्यति खालसानाम् ।।१८।।
अपने प्रयासो को असफल जानकर उन पहाड़ी राजाओं ने आपस मे सलाह की कि ये सिक्ख युद्ध में जीते नहीं जा सकते हैं। इनमें खालसाओं का बढ़ता हुआ बल देदीप्यमान हो रहा है।

कर्तव्यभावं स समर्पणं च, ध्येयं गुरुं त्रातुमितोऽवतीर्णाः।
विनाशयन्तो विपुलान् जनान्ते, प्रवर्धमानाः परितो भवन्ति।।१६।।
इनमें कर्त्तव्य की भावना व आत्मसमर्पण है। अपने लक्ष्य की रक्षा करने वाले ये गुरु को बचाने के लिए ही आये हैं। ये सभी लोगों का नाश करते हुए चारों ओर बढ़ रहे हैं।

कालं गतं नैव च सैनिकेभ्यः, शस्त्रास्त्रखाद्यान्नमिदं समाप्तम्।
न वा धरायां वयमीदृशा वा, दिनानि नेतुं विफलानि शक्ताः।।२०।।
बड़ा समय चला बया। सैनिकों के लिए शस्त्र-अस्त्र, भोजन नहीं रहा। ऐसी जमीन पर अब हम अधिक दिन बेकार करने में भी समर्थ नहीं हैं।

सामेन भेदेन तु राज्यभागात्, प्रवासनं शान्तिप्रदं गुरोः स्यात्।
सम्प्रेष्य दूतं गुरुमेवमूचुः, भूपैः प्रजाः श्रेष्ठजनैश्च रक्ष्याः।।२१।।
शान्ति से या भेद से गुरु का इस राज्य से निकल जाना ही शान्तिदायक है। उन्होंने दूत भेजकर गुरु से कहा कि राजाओं को, श्रेष्ठ लोगों को सदा प्रजा की रक्षा करनी ही चाहिए।

गच्छेस्त्वमानन्दपुरं विहाय, स्वस्ति प्रजाभ्यश्च वयं व्रजेम।
नो चेत् समेषां किल नाशहेतोः, खाद्यान्नपूर्तिः प्रशमं प्रयाति।।२२।।
यदि तुम आनन्दपुर छोड़कर चले जाते हो तो प्रजा का कल्याण होगा और हम भी चले जायेंगे। नहीं तो भोजन की पूर्ति न होने से सभी लोगों की मृत्यु हो जायेगी।

दिल्लीश्वरो वो गमनेन तुष्टो, न रोषमस्मासु करोतु तावत्।
वयं प्रतिज्ञां शपथं च कुर्मः, न जीवहानिर्भवतो भवेत्सा।।२३।।
आपके आनन्दपुर से चले जाने पर, प्रसन्न होकर औरंगजेब हम पर नाराज नहीं होगा। हम भी प्रतिज्ञा करते है, कसम खाते हैं कि आप के जीवों का नुकसान नहीं होगा।

आकर्ण्य दूतादनुरोधवार्तां, पत्रं पठित्वा स गुरुर्दयालुः।
विश्वस्य तेषु शपथेन तावत्, त्रातुं जनान् निष्क्रमणं चकार।।२४।।
दूत से पत्र पढ़कर अनुरोध की बात सुनकर वे दयालु गुरु गोविन्दसिंह उनके शपथ खाने से उन पर विश्वास पर लोगों को बचाने के लिए निकल पड़े।

निर्मोहपिण्डे दिशि दक्षिणायां, वासं चकार स्वजनैः समस्तैः।
हन्तुं गुरुं लक्ष्य-भृता शतघ्नी-गोलेन स्वर्गच्छति रामसिंहः।।२५।।
उन्होंने दक्षिण दिशा में निर्मोह गांव मे जाकर अपने सभी लोगों के साथ निवास किया। गुरु को मारने के लिए साधी गई तोप की गोली से वहाँ सेवक रामसिंह मर गये।

गुरुः शतघ्नीपरिचालकं तं, बाणेन मृत्योः पथिकं करोति।
दुर्गं विधातुं कुरुते प्रयत्नं, स संगतस्य परिरक्षणाय।।२६।।
गुरु ने उस तोपचालक को अपने एक बाण से मार दिया। उन्होंने संगत की रक्षा के लिए किले का निर्माण करने का प्रयत्न किया।

दिल्लीश्वरो दक्षिण-देशद्रोहं, शास्तुं गतो नैव निवर्तितोऽभूत्।
वजीरखां स सरहिन्दपालः, समागतस्तस्य निदेशकारी।।२७।।
दिल्ली का बादशाह दक्षिण के देशद्रोह को दबाकर अभी नहीं लौटा था। उसकी आज्ञा का पालन करने को सरहिन्द का सूबेदार वजीरखां वहाँ लड़ने आया।

युद्धार्थमेतस्य विलोक्य यत्नं, तथोत्तरे पार्वतसैनिकानाम्।
मध्ये धृतो स्वल्पबलेन सार्धं, गोविन्दसिंहो न भयं जगाम।।२८।।
इस वजीर खान को युद्ध के लिए तैयार तथा उत्तरदिशा में पहाड़ी राजाओं को भी देखकर, बीच में थोड़ी सेना के साथ भी गोविन्द सिंह नहीं डरे।

ते खालसा वीक्ष्य वचो विघातं, लब्ध्वाऽऽशिषं शौर्ययुता ब्रुवन्ति।
विश्वासयोग्या न च पार्वतेशाः, क्व साधुवृत्तिः क्व च दम्भभावः।।२६।।
उन खालसा वीरों ने वचनों के हत्यारे पहाड़ी राजाओं को देखकर गुरु का आशीर्वाद पाकर वीरता से कहा कि पहाड़ी राजा विश्वास के योग्य नहीं हैं। कहाँ हमारा सज्जनता का भाव और कहाँ पहाड़ियों का घमंड।

पन्थस्य हेतोर्मरणं च दिव्यं, वयं जयेम किल लक्षवीरान्।
केऽमी वराका उदरम्भरार्वा, मध्ये रणे स्थातुमितः समर्थाः।।३०।।
सिक्ख पन्थ की रक्षा के लिए मर जाना ही श्रेष्ठ है। हम एक–एक लाख वीरों को युद्ध में जीत लेंगे। ये पेट भरने वाले बेचारे लोग वहाँ युद्ध के बीच में कैसे ठहर सकते हैं।

चापासिशूलैः करवालखड्गैः ते खालसा स्वर्गधिया त्वयुध्यन्।
युद्धे शतघ्नीचलितैश्च गोलैः, भुशुण्डिशस्त्रैर्न भयं बभूव।।३१।।
उन खालसाओं ने धनुष, तलवार, त्रिशूल, खड्गों से स्वर्ग पाने की बुद्धि से भयंकर युद्ध किया। इस युद्ध में तोपों के गोलों के चलने से बन्दूक आदि शस्त्रों से उन्हें भय नहीं हुआ था।

दृप्तैश्च सिक्खैर्निशितैः कृपाणैः, विखण्डिताः पार्वतसैन्यसंघाः।
अन्यैस्तुरुष्कागमनं निरुद्धं, स्वल्पैः प्रभूतं सरहिन्ददेशात्।।३२।।
उन बहादुर सिक्खों ने अपनी तेज तलवारों से पहाड़ियों की सेनाएँ काट डाली। दूसरे थोड़े से सिक्खों ने सरहिन्द देश से तुर्कों के आगमन को रोक दिया था।

स्वल्पाश्च सिक्खा प्रबलानरीन्तान्, विकर्तयन्तोऽल्पतरा भवन्ति।
स्वशिष्यरक्षां परिकर्तुकामः, शतद्रुपारं स गुरुः प्रयाति।।३३।।
थोड़े सिख उन बहुत शत्रुओं को काटते हुए कम होते जा रहे थे। अपने शिष्यों की रक्षा करने के भाव से वह गुरु शतलज नदी के पार चले गये।

गुरोः प्रयाणेन वजीरखां स, प्रत्यागतः स्वसरहिन्दगेहम्।
ते पार्वताः ध्वंसनकार्यसक्ता, स्वदेशगेहं मुदिताः प्रयाताः।।३४।।
गुरु के चले जाने से वजीरखां ने अपने घर सरहिन्द देश को वापस प्रस्थान किया। विनाशकार्य में लगे वे पहाड़ी भी अपने घर प्रसन्न होकर लौट गये थे।

स द्वेष्यभावो महिषासुरोऽभूद्, औरङ्गजेबः प्रथितोऽस्य चात्मा।
ते पर्वतेश सह राज्यपालैः, तस्याङ्गभूता गुरुमाक्रमन्ति।।३५।।
वह वैर की भावना ही महिषासुर दैत्य था, जिसकी आत्मा औरंगजेब है। उसके अंग उपाङ्ग बने सूबेदार सहित ये पहाड़ी राजा लोग गुरु पर आक्रमण कर रहे थे।

निनाय दूरं महिषासुरं तं गुरुः स्वधर्मे निरतो बभूव।
नष्टे दुःखं नश्यति मानवानां, सत्कर्म-वृत्तिः परिवर्धते च।।३६।।
गुरु उस महिषासुर को दूर कर धर्म की रक्षा में लग गये। इसके नाश होते ही मनुष्य की पीड़ा, दुःख नष्ट हो जाता है, और सत्कर्म का व्यवहार इससे बढ़ता जाता है।

इति श्रीदशमेशचरिते खालसायवन-युद्ध-विरामे पञ्चदशः सर्गः।

षोडशः सर्गः

विलासी-नृपो धार्मिको धर्मपालः, स्वराज्यागतं भाग्यतः सद्गुरोस्तत्।
पुरे स्वागतं हार्दिकं तत्र कुर्वन्, प्रभुं स्तौति नत्वा मनस्कामसिद्ध्यै।।१।।

विलासी के धार्मिक राजा धर्मपाल ने गुरु का अपने राज्य में भाग्यवश आने पर हार्दिक स्वागत किया और मनोकामना की सिद्धि के लिए नमस्कारपूर्वक भगवान की वन्दना की।

स्वहर्म्येऽतिभव्ये सभाकक्षमध्ये, विनिर्माय मञ्चं समाहूय पौरान्।
धरण्यां निविष्टः पदौ सेवमानो, गुरोर्वाङ्मयं श्रद्धया स श्रृणोति।।२।।

अपने सुन्दर महल में राज–सभा के कमरे में मंच बना कर, नागरिकों को बुलाकर भूमि पर बैठा हुआ पैरों की सेवा करता हुआ गुरु की बाणी को श्रद्धापूर्वक सुन रहा था।

प्रकृष्टा प्रबुद्धा गुरोर्भारती सा, जनानां हृदज्ञानमोहं धुनोति।
गतं ध्वान्तकामं भुजङ्गप्रयातं, प्रवृद्धं स्वरूपं स्वतो धर्मनिष्ठम्।।३।।

उन्नति देने वाली ज्ञान से भरी हुई वह गुरु की वाणी लोगों में हृदय के अज्ञान और मोह का नाश कर रही थी। सांप की कुटिल गति का अंधेरा और वासना नष्ट हो गये थे।

स तत्र स्वशास्त्रेषु शस्त्रेषु निष्ठो, यथावत् पुरश्चर्यया वर्तमानः।
विहारेण वृत्तेन नीत्या प्रयोगैः, समाराधयत्येव राष्ट्रव्रतं स्वम्।।४।।

वे वहाँ अपने शास्त्र और शस्त्रों में निष्ठा रखकर पहले के समान आचरण कर रहे थे। अपने व्यवहार से, आचरण से, नीति से और प्रयोगों से अपने राष्ट्ररक्षा के व्रत की आराधना कर रहे थे।

कदाचिद् गुरू रम्य-यात्रा-प्रसङ्गाद्, यदाऽऽखेटसक्तो 'विभोरे' जगाम।
तदाकर्ण्य भूपो विभोरस्य सद्य, गुरुं तं प्रसाद्य स्वगेहे निनाय।।५।।

कभी गुरु ने सुन्दर यात्रा में मन रमने से शिकार में लगे हुए विभोर के प्रदेश में प्रवेश किया। विभोर का राजा गुरु के आगमन को सुनकर प्रेमपूर्वक उन्हे तत्काल राजी करके अपने घर में ले आया।

गुरुर्वीक्ष्य भूपस्य भावं हृदन्तं, समस्तान् स्वशिष्यांश्च वासाय ब्रूते।
'विभोरे' स्ववासं शतद्रोश्च तीरे, सुखेनैव मासानि यावच्चकार।।६।।
गुरु ने राजा के हृदय का भाव समझ कर अपने सभी शिष्यों को रहने को कहा और विभोर राज्य में उन्होंने अपना निवास सतलुज के किनारे कई महीने किया।

शतद्रोः प्रवाहं स भावं मनःस्थं, समं लोकसन्तापहं मन्यमानः।
प्रभुं याचमानः स्वहस्तेन रक्षां, सभां क्षत्रतेजोमयीं कुर्वते च।।७।।
उन्होंने सतलज के प्रवाह को और अपने हृदय के भाव को समान रूप से दुनिया के सन्ताप को दूर करने वाला माना। वह प्रभु से अपने हाथ से रक्षा करने को कहते थे और क्षत्रिय तेज से भरी हुई सभाएं आयोजित करते रहते थे।

पुनः संगतो दीप्ततेजो रराज, श्रुतं पिण्डगेहेषु गीतं गुरूणाम्।
हताः शत्रवः कालमोठस्य शिष्यैः, यतो लुण्ठकाः संगतस्य श्रुतास्ते।।८।।
फिर संगत तेज से दीप्त होकर शोभा देती थी, गांवों में, घरों में गुरुओं के गीत गाये जाने लगे। कालमोट के शत्रु मारे गये। क्योंकि वे चोर लुटेरे सुने गये थे।

अतीतं प्रयातं न विस्मारितं तद्, गताः पार्वता मुस्लिमैः सत्कृतास्ते।
निरुत्साहभूतो वजीरस्तु खानो, न वाऽऽनन्दभूमिं प्रशास्ते तदानीम्।।९।।
भूतकाल चला गया, किसी ने उसे नहीं भुलाया। मुसलमानों से सम्मान पाकर पहाड़ी राजा चले गये थे। उत्साहहीन वजीरखां भी आनन्दपुर में शासन नहीं कर रहा था।

गतं वन्यभावं पुरं तत् पवित्रं, गुरुः संगतैस्तत्र भूयो जगाम।
समुद्धृत्य प्रासादगेहादिदुर्गं, स्वमानन्द-बासं समृद्धं चकार।।१०।।
वह पवित्र नगर जंगल बन गया। गुरु वहाँ फिर संगत के साथ आये। वहाँ महल और किले का पुननिर्माण कर आपने अपने आनन्दपुर को फिर सम्पन्न कर दिया।

तदाऽऽनन्द-भूमिर्लता शस्यपुष्पैः, रराजाऽखिलऽऽमोद-सम्पादयित्री।
श्रमैः शब्दगीतै र्गुरोर्वाटिका सा, स्वधाम्ना दिवं स्पर्धमाना बभूव।।११।।
तब आनन्दपुर की भूमि फिर लताओं से, अनाजों से, फल फूलों से सम्पन्न सबको आनन्द देती शोभा दे रही थी। परिश्रम से, शब्दों से, गीतों से वह गुरु की वाटिका अपने प्रकाश से स्वर्ग की तुलना करती बढ़ रही थी।

तदानन्दभूमौ गुरोर्धर्मकृत्यं, चलन्तं समीक्ष्याऽर्पितास्वाभिमानाः।
गताः संगता धर्मसेवाभिलाषैः, समुच्चारयन्तस्तु सच्छ्रीरकालम्।।१२।।
इस तरह आनन्दपुर की भूमि में गुरु के धर्म कर्मको चलते हुए देखकर अपना मन वहाँ लगाती हुई संगतें धर्म सेवा की इच्छा से सत् श्री अकाल कहती हुई वहाँ पहुँचती गई।

विलासे पुरे सोऽपि चन्दोऽजमेरः, गुरोर्गौरवं तं जनेभ्यो निशम्य।
अमात्यैः सभायां विचार्याशु सन्धिं, विधायोपहारैर्गुरुं च रराध।।१३।।
विलासपुर में अजमेर चन्द ने गुरु के उस गौरव को सुनकर फिर सभा में मंत्रियों से विचार पूर्वक गुरु से सन्धि करके बहुत भेंटे देकर उनको प्रसन्न किया।

ततः पार्वतेशा विलोक्याऽऽत्मकृत्यं, स्वतो नष्टवैरा गुरुं मानयन्ति।
सशङ्कां वसन्ति तदौरङ्गजेबात्, कथं किं विधातुं भुजङ्गः प्रयाति।।१४।।
तब से पहाड़ी राजाओं ने अपने कामों को देखकर स्वयं वैर नष्ट करके गुरु का सम्मान किया। वे औरंगजेब से सावधान रहते थे कि वह सांप की चाल चलता हुआ कब क्या करता है।

रवाले सरे मन्त्रयामास चन्दो, ऽजमेरो गुरुं मेलके संगताय।
तथा पार्वतेशान् समाहूय तेषु, गुरोर्भावभूमिं चकार प्रकाशम्।।१५।।
रवालसर के मेले में अजमेर चन्द ने गुरु को संगत से मिलने को बुलाया। तब पर्वतीय राजाओं को बुलाकर उनसे गुरु की भावभूमि को स्पष्ट रूप से समझाया।

गुरुर्भाषते क्षत्रियाणां धरेयं, समर्थाः स्वतन्त्रा वयं भोक्तुकामाः।
तुरुष्कास्तु मोहान्धभूताः कुकृत्यैः, दृढाचारतत्त्वं विनाशं नयन्ति।।१६।।
वहां पर गुरु ने कहा कि यह भूमि क्षत्रियों की है। हम इसे भोगने में स्वतंत्र और समर्थ हैं। मोह के अज्ञान में फंसे तुर्क लोग अपने कुकर्मों से हमारे मजबूत आचरण को नष्ट कर रहे हैं।

न वाणी गुरूणां न घोषो श्रुतीनां, न तीर्थव्रतं यज्ञदानप्रसङ्गम्।
सदाचार - सेवा तपोज्ञानवार्ता, तुरुष्कैर्विनष्टाः कृता धर्मयात्राः।।१७।।
यहाँ न गुरुओं की वाणी, न वेदों का सस्वर उच्चारण, न तीर्थ, न व्रत, यज्ञ, दान की बातें हो रही हैं। तुर्कों ने हमारे सदाचार, सेवाव्रत, तपस्या, ज्ञान की वार्ता धर्म की यात्राएँ सभी नष्ट कर दी हैं।

ममैवाऽसिधाराव्रतं भारतीयैः, जनैर्धर्मरक्षाकृते स्वीकृतं तत्।
'वहेत्सो गुरुस्तं निहालं च कुर्यात्', समर्थः स्वधर्मस्य रक्षाव्रते यः।।१८।।
मेरा यह तलवार की धार वाला व्रत भारतीय लोगों ने धर्म रक्षा के लिए स्वीकारा है। जो अपने धर्म निर्वाह में समर्थ है उसे गुरु पार लगाता है, सम्पन्न कर देता है।

गुरोर्भारतीं धर्ममूलां निषेव्य, पुनर्जीविता क्षत्रसंधास्तदासन्।
तथा प्राणलिप्सापराः स्वार्थसक्ता, उलूका भयार्ताः प्रयाता विलुप्ताः।।१६।।
गुरु के धर्म की मूल वाली बातें सुनकर फिर क्षत्रिय संघ जीवित हो गये। वैसे ही प्राण बचाने वाले स्वार्थी लोग उल्लू की तरह डर कर चले गये, लुप्त हो गये थे।

गुरुं सिद्धसेनस्तु मण्डीनरेशः, स्वगेहेऽनयत् स्नेहपूर्वं ततस्तम्।
स्वतो राजधान्यां च गोविन्दद्वारं, विनिर्माय धर्माय सोऽदाज् जनेभ्यः।।२०।।
रवालसर से मण्डी के राजा सिद्ध सेन गुरु को प्रेमपूर्वक अपनी राजधानी (घर) ले गया और अपने आप गुरुद्वारा बनाकर धर्मार्थ लोगों को दान कर दिया।

वृत्तोऽथ मण्डीनिवासात् स्वधाम्नि, गुरुस्तत्र वार्तां च धर्म्यां करोति।
रासं भ्रमाणां विकासं मतानां, चरित्रस्य वैशिष्ट्यमाह नराणाम्।।२१।।
ण्डी निवास से वापस लौटकर गुरु गोविन्द सिंह ने अपने स्थान आनन्दपुर में
र्म-सम्बन्धी बातें प्रारम्भ कर दी। उसने लोगों के भ्रमों का निराकरण, नवीन
तों का विकास, लोगों की चरित्रगत विशेषताएँ बतानी प्रारम्भ कीं।

गोष्ठीं कवीनां च वार्तां कृषीणां, परीक्षाऽऽयुधानां, समीक्षा हयानाम्।
देशीप्रथानां मुदा पालनं वा, विदेशागतानां तथाऽऽतिथ्यमेव।।२२।।
सने कवियों की गोष्ठिया, कृषियों की वार्ताएँ, हथियारों की परीक्षाएँ, घोड़ों की
चान अपने देशी परम्परा का पालन और विदेश से आये लोगों का स्वागत
या।

थैवं गुरुः पर्वणि ग्रस्तसूर्ये, सशिष्यः कुरुक्षेत्रतीर्थं सिषेवे।
हामण्डपं तत्र शिष्यैर्विधाय, जनान् खालसापन्थतत्वानि प्राह।।२३।।
इसी प्रकार गुरु सूर्य-ग्रहण पर शिष्यों सहित कुरुक्षेत्र तीर्थ का सेवन करने
। उन्होंने वहाँ एक बहुत बड़ा मण्डप शिष्यों से बनवा कर लोगों को खालसा
थ की विशेषताएं समझाई।

ं मानवाः श्रेष्ठ-योनिं प्रपन्नाः, समं कर्मभावैः प्रभुं प्रार्थयामः।
तं जातिवर्गादिभेदं विहाय, श्रमेणार्जितं दिव्यभोगं श्रयेम।।२४।।
म मनुष्य श्रेष्ठ योनि के प्राणी हैं। अपने कार्यों द्वारा प्रभु की प्रार्थना करते रहें।
ह कृत्रिम जाति वर्गादि का ऊँच-नीच भेदभाव छोड़ कर परिश्रम से प्राप्त
िव्य भोग भोगने का आश्रय लें।

बस्वामृतं साम्यभावं भजस्व, ककाराणि पञ्चानि सेवस्व नित्यम्।
विस्मारणीया स्वशक्तिः शुभाय, न वा दुर्गतिं खालसाः क्वापि यान्ति।।२५।।
मृतपान किया करो, समानता से सभी को सम्मानित करो। पाँचों ककार केश,
ंघा, कृपाण, कड़ा, कच्छा धारण करो। शुभ कार्यो को करने में अपनी शक्ति
त भूलो, खालसाओं की दुर्गति कभी नहीं होती है।

तदाकर्ण्य पीयूषवर्षामनेके, गुरोः पादपद्मेषु दीक्षामविन्दन्।
जयेत् खालसा पातु सच्छ्रीरकालः, स्वसंकल्पबुद्धया गृहेऽन्ये प्रयाताः।।२६।।
गुरु की इस अमृत वर्षा को सुनकर बहुत लोग उनके चरणों में गिरे और दीक्षा प्राप्त की। खालसा की जय हो, सत् श्री अकाल रक्षा करे। ऐसा अपना संकल्प करके दूसरे लोग घरों को चले गये।

क्रयं वाजिवृन्दस्य मार्गेषु कुर्वन्, गृहाय प्रयातो गुरुः चामकौरे।
चरन् रात्रिवासं सपर्यामविन्दत्, समीपे स्थितानां मुदा खालसानाम्।।२७।।
घर को प्रस्थान कर गुरु गोविन्द सिंह रास्ते में घोड़ों को खरीदते हुए चमकौर पहुँचे और रात्रि निवास करते हुए समीपस्थ ग्रामवासी खालसाओं की प्रेम से सेवा पायी।

तदा काबुलादागतः संगतश्च, गुरुं तत्र लब्ध्वा परं हर्षमाप।
प्रभूतैर्जनैः प्रार्थ्यमानो दिनेभ्यो, गुरुश्चामकौरे वसन् धर्ममाह।।२८।।
तभी काबुल से आती हुई संगत ने वहां गुरु के दर्शन पाकर आनन्द लिया। बहुत लोगों की प्रार्थना मानकर कई दिनों के लिए गुरु ने चमकौर में रहते हुए लोगों को धर्म–शिक्षा दी।

तदानीं च लौहार-पालस्य कार्याद्, वृता पञ्चसाहस्रिकैः सैन्यसङ्घैः।
प्रयाणेऽलफे खां तथा शैदवेगः, स्थितौ चामकौरे च दिल्लीं प्रयान्तौ।।२६।।
उस समय लाहौर के सूबेदार के काम से पाँच हजार सैनिकों के समूह से घिरे हुए यात्रा में चलते हुए अलफे खां और शैदवेग ने चमकोर में पड़ाव डाला था।

उभौ सेनपौ तत्र गोविन्दसिंहं, समाकर्ण्य पार्श्वे स्थितं हर्षितौ तौ।
तदानीमिदं मन्त्रितं मानप्राप्त्यै, गुरुं बन्धयित्वा तु दिल्लीं नयेव।।३०।।
वे दोनों सेनापति चामकोर के समीप में गोविन्द सिंह को ठहरा सुनकर बहुत प्रसन्न हो गये। उन्होंने आत्मसम्मान प्राप्ति के लोभ में सोचा कि गुरु गोविन्द सिंह को बांध कर हम दिल्ली ले चलें।

गुरौ बन्धने तत्र दिल्लीश्वरो नौ, समृद्धां धरां दास्यति मानहेतोः।
अतः सिक्खवीरांश्च जेतुं तदानीं, सहाय्याय तौ पार्वतानुक्तवन्तौ।।३१।।
गुरु को बांधने से दिल्ली का बादशाह औरंगजेब हमें सम्पन्न भू-भाग पुरस्कार स्वरूप सम्मान सहित देगें। इसलिए उस समय सिक्ख वीरों को जीतने के लिए उन्होंने पहाड़ी राजाओं को भी सहायता देने के लिए बुलाया।

गुरुस्तत्प्रयासं तयोस्तत्र रोद्धुं, द्रुतं दुन्दुभेस्ताडनेनाऽऽजुहाव।
समन्तात् सशस्त्राश्च शिष्याः समेता, रिपुं रोद्धुकामा गुरुं भक्तिभाजाः।।३२।।
गुरु गोविन्द सिंह ने उनके इस प्रयास को वहाँ तेजी से रोकने के लिए नगाड़ा बजाते हुए सिक्खों को बुलवाया। चारों ओर से हथियारों को लेकर भक्ति भाव से सिक्ख शत्रुओं को रोकने की इच्छा से गुरु के पास एकत्रित हुए।

तयोः सेनयोश्चामकौरे प्रचण्डो, महाघातकारी रणो दारुणोऽभूत्।
तथाऽप्यल्पसंख्या गुरुं रक्षयन्तो, ''जयेत् खालसा'' घोषयन्तो निहन्ति।।३३।।
चामकौर में उन सैनिकों का बड़ा विनाशकारी प्रचण्ड रण हुआ। फिर भी अल्प-संख्या के सिखों ने 'खालसाओं की जय हो' घोषणा करते हुए गुरु की रक्षा करते हुए शत्रुओं को मार डाला।

प्रभूतास्तदा मुस्लिमाः सैनिकास्तान्, निरोद्धुं समर्था न जन्ये तथाऽऽसन्।
मृता आहता द्राविता वा निलीना, मृगाणां दशा सिंहपाते यथाऽऽसीत्।।३४।।
उस समय युद्ध में बड़ी संख्या वाले मुसलमान सैनिक उन सिक्ख वीरों को रोकने में समर्थ नहीं हो पाये थे। कुछ मर गये, भाग गये, छिप गये, जैसे शेर के कूदने पर मृगों की दशा हो जाती है वैसी ही दशा हो गई थी।

विलोक्य प्रकर्षं गुरो रक्षकाणां, गतो विस्मयं सेनपः शैदवेगः।
हयारूढमग्रे गुरुं वीक्ष्य मुग्धः, प्रहर्तुं समर्थोऽपि शस्त्रैर्न हन्ति।।३५।।
गुरु की रक्षा करने वालों के उत्कृष्ट समर्पण भाव को देखकर सेनापति सैद वेग आश्चर्य में डूब गया। अपने घोड़े पर सवार गुरु गोविन्द सिंह को मुग्धता से सामने देखता हुआ वह मारने पर समर्थ होते हुए भी शस्त्र नहीं उठाता है।

कुरुष्व प्रहारं स्वशस्त्रेणं मेऽग्रे, वृथा सेवकान् हंसि नैवोचितं ते।
गुरोर्वाचमाकर्ण्य दृप्तां स वीरो, निपात्य स्वशस्त्रं गुरुं तं ननाम।।३६।।
अपने शस्त्रों से पहले मुझपर प्रहार करो। सेवकों को बेकार मार रहे हो। यह ठीक नहीं है। गुरु की इस गर्वीली वाणी को सुन कर उस वीर ने हथियार छोड़ कर गुरु को प्रणाम किया।

स मत्वा परं ज्योतिरात्मप्रविष्टं, स्वयं स्वार्थदम्भान्निवृत्तो बभूव।
मया धर्मशस्ता कथं दण्डनीयः, खलोऽ हं तु दण्डेन मां शाधि ब्रूते।।३७।।
वह अपने में प्रवेश हुई ज्योति को जानकर स्वार्थ और अभिमान के भाव से मुक्त हो गया। मुझे धर्म के प्रशासक गुरु को दण्ड नहीं देना है। मैं तो दुष्ट हूँ। हे गुरु महाराज आप मुझे दण्ड देकर मेरा सुधार करो, ऐसा कहता है।

अहं मुस्लिमस्तस्य विश्वासकर्ता, कथं तत्प्रकाशं निपातुं प्रवृतः।
कियान् स्वार्थलाभो भवेन्मे विलासो, विलोपं यदा दिव्यज्योतिस्तु याति।।३८।।
मैं मुसलमान उस (खुदा) पर विश्वास करता हूँ। उसके प्रकाश को मिटाने में क्यों लगा हूँ। इस स्वार्थ साधने में मुझे कितना भोग मिलेगा जब कि यह दिव्य ज्योति नष्ट हो जायेगी।

गुरुस्तस्य वाणीं परामार्तिपूर्णां, निशम्य ब्रवीति च शान्तिं लभस्व।
स गोविन्दपादं प्रणम्य प्रयातो, हिमाद्रे गुहासु समस्तान् विहाय।।३९।।
गुरु गोविन्द सिंह ने उसकी दया भरी वाणी सुन कर कहा कि हे वीर तुम शान्ति प्राप्त करो। वह गुरु गोविन्द सिंह के चरणों में प्रणाम कर सब कुछ छोड़ कर हिमालय की गुफाओं में चला गया।

गतं शैदवेगं निरीक्ष्याऽलफे खां, समाप्य स्वयुद्धं गतो राजधानीम्।
स दिल्लीश्वरामात्यवर्गं ब्रवीति, गुरुं शासितुं रोधकं मुस्लिमानाम्।।४०।।
अलफे खां शैदवेग को जाते हुए देखकर युद्ध समाप्त कर दिल्ली राजधानी को चला गया। उसने दिल्ली के वजीरों को मुसलमानों के धर्म की रुकावट बने गुरु को दण्डित करने के लिए कहा।

गते मार्गविघ्ने गुरुः शान्तयित्वा, शुभाशीः समस्तान् प्रदाय ब्रवीति।
यथा शाठ्यकृत्तं तथा लोककृत्यं, समं दीव्यति ज्योतिरात्मानुकूलम्।।४१।।
इस चामकौर के मार्ग विघ्न के दूर होने पर गुरु ने शान्त कर सबको शुभाशीर्वाद प्रदान कर कहा–जैसा दुर्जनों का कार्य होता है वैसे ही सज्जनों के कार्य होते हैं। यह ज्योति आत्मा के अनुकूल अपने आप चमकती है।

स्वशिक्षावचोभिः प्रियैर्दानमानैः, परं तोषयित्वा गुरुः शिष्यवर्गम्।
अकालं परं चामकौरे प्रणम्य, तदानन्दभूमिं प्रवेष्टुं गतोऽभूत्।।४२।।
अपनी शिक्षा की वाणी से और प्यारी वस्तुओं को उन्हें देकर सम्मानित कर शिष्य वर्ग को गुरु ने प्रसन्न करके चामकौर में अकाल पुरुष को प्रणाम करके आनन्दपुर की ओर प्रवेश करने को प्रस्थान किया।

इति श्री दशमेशचरिते चामकौर संघर्षवर्णने षोडशः सर्गः।।१६।।

सप्तदशः सर्गः

गतोऽलफे खां ननु पार्वतेशा, युद्धात् प्रयातान् यवनान् विलोक्य।
हास्यास्पदं स्वं परिमन्यमाना, दिल्लीश्वरं दूतमुखेन प्रोचुः।।१।।
अलफेखां दिल्ली चला गया। पहाड़ी राजा युद्ध छोड़कर जाते हुए मुसलमानों को देखकर अपनी हंसी होती मानकर दूत भेजकर दिल्ली के बादशाह औरंगजेब से बोले।

गोविन्दसिंहस्य बले निलीनाः, ते सैनिका ये किल सैदवेगे।
प्रवर्धमानैर्यवनैश्च सिक्खाः, राज्याय वो विघ्नकराः समेषाम्।।२।।
सैदवेग के सैनिक गुरु गोविन्द सिंह की सेना में समा गये हैं। मुसलमान सैनिकों से बढ़े हुए ये सिक्ख आप सभी के राज्य के लिए प्रबल विघ्नकारी हो गये हैं।

दिल्लीश्वरामात्यगणस्तदानीं, सेनापतिं प्राह च सैदखानम्।
प्रशासने विघ्नकरं जनानां, गोविन्दसिंहं प्रबलं प्रशाधि।।३।।
दिल्ली के बादशाह के मन्त्रियों ने अपने सैदखान नामक सेनापति से कहा कि हमारे प्रशासन में जनता के विघ्न (रुकावट) करने वाले बलवान गुरु गोविन्द को जाकर ठीक करो।

सेना गता सा गुरुधामपार्श्वे, द्वयोश्च जन्यं प्रबलं बभूव।
मैमूरखानः सह मुस्लिमैस्तैः, दिल्लीशसेनां सबलां रुणद्धि।।४।।
वह सेना गुरु के धाम आनन्दपुर के पास पहुंची, दोनों का भंयकर (युद्ध हुआ) मैमूरखान ने उन (सैदवेग के) मुसलमान सैनिकों के साथ दिल्ली की बलवान सेना को शीघ्र रोक दिया।

न तत्र भेदं यवने च सिक्खे, सर्वे गुरुं भक्तियुता नमन्ति।
न स्वार्थहानिर्न भयं न दैन्यं, निष्कामभावेन रिपून् जयन्ते।।५।।
वहाँ मुसलमानों ओर सिक्खों में भेदभाव नहीं था। सभी भक्तिपूर्वक गुरु को प्रणाम करते थे । उनको न तो स्वार्थ का नुकसान था, डर भी नहीं था, दीनता भी नहीं थी। निष्काम भाव से दुश्मनों को जीत रहे थे।

स्वल्पेषु तं शौर्यव्रतं च दृष्ट्वा, स सैदखानो विरतो रणेऽभूत्।
गुरुं प्रणम्य परित्यज्य सेनां, गतो विपक्षे परमार्थकामः।।६।।
उन थोड़े लोगों में शूरता का नियम उत्साह देखकर सैदखां युद्ध से रुक गया। उसने गुरु को प्रणाम किया। सेना छोड़ दी ओर परमार्थ तत्व पाने को विपक्ष में चला गया।

सेनाधिपत्यं रमजानखानो, युद्धे चकाराऽरिजनान् विजेतुम्।
रणे प्रवृद्धे तुमुले तदानीं, गोविन्दबाणैः स जगाम मृत्युम्।।७।।
तब दुश्मन को जीतने के लिए रमजानखान सेनापति बने। भंयकर युद्ध होने पर गुरु गोविन्द सिंह के बाणों से उसकी मृत्यु हो गई।

सा शाहसेना प्रबला विशाला, स्वल्पांश्च सिक्खान् परतो चकार।
लोभात्तदाऽऽनन्दपुरं प्रविष्टा, विनाशलीला विहिता विनिन्द्या।।८।।
वह बादशाह की सेना बलवान और बड़ी संख्या में भी थी। उसने थोड़े सिक्खों को दूर भगा दिया। उन्होंने लोभ से आनन्दपुर में प्रवेश किया और भयानक विनाश प्रारंभ कर दिया।

द्वाराणि भङ्क्त्वा च गृहाणि हुत्वा, निपात्य सौधानि च वाटिकास्ताः।
पात्राऽन्नवस्त्राभरणानि हृत्वा, वसूनि यानेषु निवेश्य याताः।।९।।
उन्होंने दरवाजे तोड़ कर, घरों को जलाकर, महलों को गिराकर, बाग उजाड़े। अन्न वस्त्र उठाकर, धन–सम्पति गाड़ियों में रखकर लूटकर चल वे दिये।

मदोद्धतानां क्रदनैः पुरस्य, दशां विलोक्य सबलाश्च सिक्खाः।
तस्मिन् निशीथे शयितान् खलान् तान्, ते कर्तयन्तः स्वगृहाय जग्मुः।।१०।।
उन मदमस्तों के कुचलने से नगर की दुर्दशा को देखकर बलवान सिखों ने उस रात में सोये हुए उन दुष्टों पर आक्रमण करके उन्हे काटते हुए फिर अपने घरमें वापस आगमन किया।

समुद्धृता सा नगरी खलेभ्यः, प्राचीरभित्तीः सुदृढीकृतास्तैः।
सिक्खा गृहस्थाः स्वनियोगलीनाः, सर्वे प्रहर्षेण वसन्ति तत्र।।११।।
उन्होंने फिर उस नगरी आनन्दपुर का दुर्जनों से उद्धार किया। दुर्ग की दीवारें मजबूत की। वे अपनी कर्त्तव्य परायणता में लगे हुए थे। अब सिक्ख सब आनन्द से वहाँ रहने लगे थे।

औरङ्गजेबे किल दक्षिणस्थे, वार्ता गता विप्लवनी गुरोः सा।
शमाय सन्धिं विदधातुकामो, लिलेख पत्रं गुरवे स शाहः।।१२।।
दक्षिण में औरंगजेब के पास वह विप्लव या विद्रोह (बगावत) वाली गुरु की बात पहुँची। उसने शान्ति स्थापित करने के लिए सन्धि करने को गुरुजी के पास सन्धि–पत्र भेजा।

विश्वस्य स्रष्टा प्रभुरेक एव, त्वां मां जनान् सैव जनिं ददाति।
तं मन्यामानाः समधर्मिणो नः, तदाज्ञया वै परिवर्तितव्यम्।।१३।।
संसार का सर्जन करने वाला भगवान एक ही है। उसने तुम्हें मुझे और लोगों को जन्म दिया है। उसको मानने वाले हम सेवकों का धर्म एक ही है। उसकी आज्ञा से ही हमें बदल जाना चाहिए। युद्ध नहीं करना चाहिए।

राज्यस्य विघ्नान् प्रशमं विधातुं साम्राज्यमेतत् भुवि मे प्रदत्तम्।
स त्वां गुरुं ज्ञानशमाय चक्रे, कर्तव्यमेतत् परिपालयावः।।१४।।
राज्य के विघ्नों को शान्त करने के लिए उसने मुझे साम्राज्य दिया है और उसने ही तुम्हें ज्ञान और शान्ति के लिए बनाया। अब हम दोनों अपना कर्तव्य का पालन करें।

आगच्छ मां मङ्गलमेलहेतोरध्यात्ममानं गुरुतां लभस्व।
शठांश्च शास्तुं निरतेऽत्र देशे, सापत्न्यभावं मयि न विधेयम्।।१५।।
आओ, मुझ से कल्याणकारी मेल करो। अपनी आध्यात्मिक प्रतिष्ठा और गुरु के गौरव को प्राप्त करो। दुर्जनों को सीधा करने को मैं यहाँ लगा हुआ हूँ। मुझसे वैर भाव मत करो।

प्रत्युत्तरं तं गुरुणा प्रदत्तं, येनाऽर्पितं राज्यमिदं त्वदर्थे।
मां प्रैषयत् सैनिकसन्तदेहे, शमाय दुर्धषपथे रतानाम्।।१६।।
गुरु ने उसे उत्तर दिया, जिसने तुम्हें यह राज्य दिया है। उसी ने मुझे सन्त सैनिक के शरीर में भेजा है, ताकि दुराचार के मार्ग पर चलने वालों से जनता को शान्ति मिल सके।

स जीवनं मानवकायरूपं, श्रेयासि कर्तुं भुवने ददाति।
पापः स्वकृत्यस्य फलस्य भोक्ता, पुण्यस्य भोक्ता सुकृती नृलोके।।१७।।
वह परमात्मा मनुष्य के शरीर के रूप में जीवन देकर कल्याणकारी शुभ कर्म करने को इस संसार में भेजता है। पापी अपने किए हुए पापकर्म का फल भोगता है, पुण्यात्मा अपने किए का पुण्यफल पाता है।

साम्राज्यलिप्सुः स्वजनस्य हन्ता, धर्मान्धवृतो धनभोगशक्तः।
स्वार्थाय हिन्दून् यवनान् निहन्ता, मेलस्य योग्यो न हि मे मतोऽसि।।१८।।
तुम साम्राज्य चाहते हो, अपने प्रियजनों को मारते हो, धर्मान्धता का आचरण करते हो, धन और भोग में लगे हो। अपने स्वार्थ के लिए हिन्दू मुसलमानों को मारते हो। अतः मुझसे मेल के योग्य नहीं हो।

सम्मान्य दूतं च निभर्त्स्य भूपं, रक्षापरो धर्मभृतां स तस्थौ।
पिण्डेषु गेहेषु जनेषु तेषु, स्वसत्वरक्षार्थमिदं चकार।।१६।।
दूत का सम्मान कर, बादशाह का तिरस्कार कर, धार्मिक लोगों की रक्षा में गुरु गोविन्द सिंह लग गये। उसने गांवों में, घरों में, उन लोगों में, प्रणियों की रक्षा के लिए प्रयत्न किया।

न्यायाय वृत्तिर्नवशस्त्रशिक्षा, स्वदेशरागं गुरुभक्ति-भावम्।
धर्मस्य कार्यं, दमनस्य नाश्यं, प्रकर्षमानं जनतासु जातम्।।२०।।
उसने न्याय का व्यवहार किया, नये हथियारों की शिक्षा दी, अपने देश प्रेम को सिखाया, गुरु भक्ति का भाव जगाया। अतः धर्म के काम, दमन का नाश करने का भाव जनता में बढ़ता जाता था।

शूराश्च सिक्खा गुरुदीक्षितास्ते, ग्रामान्तरेषु परितश्चलन्तः।
धर्मानुरागेण समर्पणेन, जाताः प्रसन्ना मिलिता गृहेषु।।२१।।
गुरु के द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त शूरवीर सिक्ख सन्त इधर–उधर गांवों में घूमते, प्रचार करते थे। धर्म के प्रेम से, समर्पण के विचार से वे प्रसन्न हो गये थे और घर घर में मिलते रहते थे।

आतङ्कवादमिव ध्वंसयन्तो, न तिष्ठति तत्र तदाऽऽततायी।
पीत्वाऽमृतं मुस्लिम-हिन्दुभावं, ते खालसारूपमिदं बदन्ति।।२२।।
वे आतंकवाद को जैसे मिटा रहे थे। कोई आततायी वहाँ नहीं ठहरता था। वे अमृत पीकर मुसलमान और हिन्दुओं के शुद्ध स्वरूप को ही 'खालसा' कह रहे थे, बन रहे थे।

पत्रं गुरोः प्राप्य च वर्धमानं, गुरोः प्रभावं जनतासु श्रुत्वा।
न मार्गमाप नयकोविदोऽसौ, औरङ्गजेबो विमना बभूव।।२३।।
गुरु का पत्र पाकर और बढ़ते हुए गुरु के प्रभाव को जनता में सुनकर, नीति जानने वाला औरंगजेब रास्ता नहीं ढूंढ पाया। अतः मन में व्याकुल हो गया था।

गोविन्दभूमिं परिभङ्क्तुकामो, दूतान् विसृज्याऽऽक्रमणाय ब्रूते।
दिल्लीस्थसैन्यं सरहिन्दपालं, लाहौरपालं सकलान् स प्राह।।२४।।
उस औरंगजेब ने गुरु गोविन्द सिंह जी की भूमि आनन्दपुर को नष्ट करने की इच्छा से दिल्ली की सेना को, सरहिन्द के सूबेदार को, लाहौर के सूबेदार को और अन्य सभी राजाओं को आक्रमण करने के लिए कहा–

सर्वैः समाक्रम्य समापनीयं, समस्तमानन्दपुरं समन्तात्।
जनं गृहं किञ्चिदपि स्थितं वा, न शत्रुकृत्यं किल तत्र भाव्यम्।।२५।।
आप सभी को आक्रमण करके चारों ओर से आनन्दपुर को समाप्त कर देना चाहिए। वहाँ कोई आदमी शत्रु का कुछ भी कार्य शेष नहीं रहना चाहिए।

दिल्लीनिदेशेन वजीरखानो, लाहौरपालेन च पार्वतैश्च।
विशालसैन्येन वृतः समन्ताद्, आनन्दधामाक्रमणाय यातः।।२६।।

दिल्ली के निर्देश कर वजीर खान लाहौर के सूबेदार और पहाड़ी राजाओं के साथ में बड़ी सेना लेकर आनन्दपुर पर घेरा डाल करके आक्रमण करने को चला गया।

वार्तां समाकर्ण्य गुरोश्च भक्ताः, श्रद्धालु-शिष्याः किल सैनिकाश्च।
आगत्य रक्षां नगरस्य कर्तुं, दुर्गेषु गुल्मेषु स्वकेष्वतिष्ठन्।।२७।।

यह बात सुनकर गुरु के भक्तों ने, श्रद्धालु सिक्ख और सिपाहियों ने आकर आनन्दपुर नगर की रक्षा करने को किले में टोलियों में बंटकर, अपने अपने स्थानों पर डटना प्रारंम्भ किया।

दुर्गं परिक्रम्य च सैनिकैस्तैर्युद्धं कृतं वै प्रबलं दिशाभ्यः।
काले समीक्ष्याऽग्निरिव प्रयाताः, सिक्खा द्विषो घ्नन्ति च यान्ति स्वान्ते।।२८।।

किले को घेर कर उन सैनिकों ने सभी दिशाओं से प्रबल युद्ध किया। समय देखकर सिख आग जैसे प्रयाण करते थे। दुश्मनों को मारते थे और फिर भीतर क़िले में चले जाते थे।

उच्चावचेषु त्वरितं चलन्तो, रोद्धुं न शक्या र्यवनैश्च सिक्खाः।
विलोक्य तेषां प्रबलां च शक्तिं, तैर्घोषितं ग्रामजनेषु तत्र।।२६।।

ऊँचे नीचे स्थानों में तेज चलते हुए सिक्खों को रोकने में मुसलमान असमर्थ थे। उन्होंने उन सिक्खों की प्रबल ताकत को देखकर चारों ओर ग्रामीण लोगों में घोषणा कर दी।

न प्रेषणीयं ननु भोज्यपेयं, दण्डं लभेत विपरीत-कर्ता।
सर्वत्र मार्गाः परिवारितास्तैः, तिष्ठन्ति सिक्खान् विनिपातुकामाः।।३०।।

कोई खाना पानी अन्दर न भेजें। जो इसके विपरीत करेगा सजा पयेगा। उन्होंने सभी रास्ते रोक दिये थे। वे सिक्खों को मारने को वहाँ ठहर गये।

काले विपन्ने कृतसाहसास्ते, ग्रामेषु निष्क्रम्य प्रयान्ति रात्रौ।
अन्नानि संगृह्य निपात्य शत्रून्, शीघ्रं प्रविष्टा नगरे भवन्ति।।३१।।

वे सिक्ख लोग इस संकट काल में भी हिम्मत करके रात में गांवों में निकलते थे। अनाज इकट्ठा कर, दुश्मन मार कर जल्दी से आनन्दपुर नगर में प्रवेश कर जाते थे।

यदाऽन्नकार्श्यं द्रुमपर्णमूलैः, क्षुधां प्रशान्तां सकलाश्चरन्ति।
दिनानि यान्ति कवले न लभ्यं, तदापि सिक्खा न चलन्ति मार्गात्।।३२।।

जब यहाँ अन्न की कमी हो गई तो पेड़ों के पत्तों और जड़ों से सबने भूख मिटाई। दिन बीतते गये, भोजन का गस्सा भी नहीं मिला, तब भी सिख लोग अपने रास्ते से नहीं हटे।

ते पार्वता मुस्लिम-सैनिकानां, खाद्यान्नपानाय ततो नियुक्ताः।
अशक्नुवन्तो हृदये व्यथन्तो, भेदं परं मार्गमिदं श्रयन्ते।।३३।।

उन पहाड़ी राजाओं ने मुसलमान सैनिकों को खाद्यान्न पूर्ति में लगकर असमर्थ होते मन में दुःख पाया और भेद का यह मार्ग अपनाया।

लिलेख पत्रं त्वजमेरचन्दो, दुर्गं च हित्वा स्वजनैः प्रयाहि।
न कोऽपि मार्गे तव विघ्नकर्ता, क्लेशं द्वयोर्नश्यति रक्षणं च।।३४।।

अजमेर चन्द ने गुरु को लिखा कि अपने लोगों के साथ आप किला खाली कर के यहाँ से चले जाओ। तुम्हारे मार्ग में कोई रुकावट नहीं होगी। हम दोनों के क्लेश भी नष्ट होंगे और रक्षा भी होगी।

'आनन्दवासं जनरिक्तमेतत्' सत्येन - शाहं कथयाम भूयः।
औरङ्गजेबे परितुष्यमाने, सुरक्षिताश्च सकला भवेम।।३५।।

हमने आनन्दपुर का वास खाली कर दिया है, इसे हम सच्चाई से फिर बादशाह से कह देंगे। औरंगजेब के सन्तुष्ट होने पर हम सभी सुरक्षित हो जायेंगे।

अस्मासु विश्वस्य विचिन्त्य कालं, करोतु योग्यं यदि रोचते ते।
अधीत्य पत्रं क्षुधिताश्च शिष्या, मातुर्मुखेन गमनाय प्रोचुः।।३६।।
हम पर विश्वास कर समय विचार कर यदि ठीक लगे तो आप प्रयाण करो। उनका पत्र पढ़कर भूख से व्याकुल शिष्यों ने माता के द्वारा बाहर जाने को कहलाया।

गन्त्रीषु वस्तूनि निधाय व्यर्थान्यश्वेषु भारान् विससर्ज रात्रौ।
तैर्वञ्चकैः लुण्ठितमत्र मार्गे, गुरुर्बभाषे स्वजनानुदन्तम्।।३७।।
गाड़ियों में बेकार चीजों को रखकर और घोड़ों पर बोझ लाद कर उसने रात को बाहर भेजा। उन धोखेबाजों ने यहाँ उन्हें रास्ते में लूट लिया। गुरु ने शत्रुओं का सारा वृतान्त अपने लोगों को बताया।

औरङ्गजेबस्य तदैव पत्रं, नीत्वा स ख्वाजाखिज़रश्च यातः।
कुर्वाणग्रन्थेन शपे तथाऽन्यैः, न वैरभावं तु गते त्वयि स्यात्।।३८।।
उसी समय औरंगजेब के पत्र को लेकर ख्वाजा खिजर वहां आया। उसने कुरान पुस्तक और अन्य शपथों से सूचित किया कि तुम्हारे जाने के बाद वैर भाव नहीं होगा।

मासा गताः सप्त तु विग्रहेऽस्मिन्, दिवंगता मानधना नियुध्य।
हित्वा सिखत्वं त्वपरे प्रयाताः, शिष्टाः शतं पञ्च गुरोश्च वीराः।।३६।।
इस घेराव की लड़ाई में सात महीने बीत गये। अनेकों सम्मानित वीर लड़कर स्वर्ग सिधार गये। कुछ सिख पंथ छोड़कर चले गये। गुरु के साथ पांच सौ वीर ही शेष रह गये।

माता ब्रवीति त्यज दुर्गमेतत्, भूपेषु शाहे भज सत्यवाचम्।
नश्यन्ति सिक्खाः समयो न युक्तः, सच्छ्रीरकालस्य कृताऽत्र वाञ्छा।।४०।।
माँ ने कहा कि वह किला छोड़ो, राजाओं और बादशाह के वचनों को सत्य मानो। सिख नष्ट हो रहे हैं। समय अच्छा नहीं है, सत्–श्री–अकाल की भी यही इच्छा की हुई है।

मातुर्वचोभिर्गुरुवख्शसिंहं, साधुं सपर्यार्थमिह प्रयुज्य।
धनानि गर्तेषु गुरुर्निधाय, प्रस्थानयात्रां क्रमशः करोति।।४१।।
तब गुरु ने माँ के वचन मान कर आनन्दपुर में गुरुवख्श सिंह को यहाँ सेवा पूजा में लगा कर,धन को गडढ़ों में गाढ कर, बारी–बारी से प्रस्थान करना शुरु किया।

सिक्खान् दले कीर्तिपुरं तु प्रेष्य, पुत्रौ च माता गमिताः स्वशिष्यैः।
सच्छ्रीरकालं निशि प्रार्थयत् सः, शिष्टैः समंताननुयाति शीघ्रम्।।४२।।
कीरतपुर में सिक्खों को भेजकर फिर उन्होंने अपने शिष्यों के साथ माँ और दोनों पुत्रों को भेज दिया। इसके बाद रात में सत्–श्री–अकाल की अरदास कर शेष बचे हुए लोगों के साथ पीछे पीछे स्वयं चल दिये।

यावद् गुरुर्दुर्गगतो रराज, तावद् ध्वनि र्दुन्दुभिताडितोऽभूत्।
दुर्गे पुना नीरवतां प्रयाते, ज्ञातं जनैर्निष्क्रमणं गुरोस्तत्।।४३।।
जब तक गुरु किले में थे, तब तक नगाड़ा बजता रहा। किले में नगाड़ा बजना बंद हुआ जानकर लोग समझ गये कि गुरु किले से बाहर निकल गये हैं।

वजीरखानस्त्वजमेरचन्दः, सेनाश्च प्रत्याक्रमितुं तु ब्रूतः।
सेना रुणाद्धि सरसातटे सा, गोविन्दसिंहं परिवृत्य सिक्खान्।।४४।।
वजीर खान और औरंगजेब ने सेना को आक्रमण करने को कहा। उस सेना ने सरसा नदी के किनारे गुरु गोविन्द सिंह, और सिक्खों को आगे बढ़ने से रोक दिया।

पौषस्य मासे जलवर्षणेन, प्रवर्धमाना वहते नदी सा।
शत्रून्तु रोद्धुं गुरुणां च गुल्म, संस्थापितं पार्श्वगतं बलिष्ठान्।।४५।।
पूस के महीने में पानी बरसने से नदी भरी बह रही थी। गुरु ने शत्रु सेना को रोकने को इसके पीछे सिक्खों की एक टुकड़ी स्थापित कर रोक दी।

तेषां बलिष्ठा गुरुणा सहैव, तीर्त्वा नदीं पारमथाऽऽश्रयन्ते।
केचित् प्रवाहे पतिताः प्रलुप्ता, तुरुष्कहस्ते न गताः कथञ्चित्।।४६।।
कुछ बलवान लोग गुरु के साथ नदी तैर कर पार हो गये। दूसरे प्रवाह में बह कर गायब हो गये। वे तुर्कों के हाथ नहीं पड़ पाये।

तदन्तराले पथि विस्मृतास्ते, जोरावरश्चैव फतेहसिंहः।
सा गूजरी सेवकमेकमेत्य, प्रस्थानमन्येन पथा तु चक्रुः।।४७।।
इसी बीच मार्ग भूलने के कारण से जोरावर सिंह, फतेह सिंह और माता गूजरी किसी सेवक के साथ दूसरे मार्ग से आगे बढ़ गये।

गंगाधरः श्रीगुरुपाकगेहे, सूदो नियुक्तस्तु बहिष्कृतश्च।
विज्ञाय तान् स्वगृहमेव नीत्वा, निवासयामास दिनाय तत्र।।४८।।
गंगाधर नाम का रसोइया गुरु गोविन्द सिंह के यहाँ था और अब बाहर हो गया उसने उनको जान पहचान कर अपने घर ले जाकर दिन भर रखा।

तुरुष्कघोषं गुरुबन्धनार्थे, श्रुत्वा स लोभेन सुतौ गुरोस्तान्।
वजीरखानस्य करे ददाति, विज्ञापयन् शासनभक्तिकार्यम्।।४६।।
उसने गुरु को पकड़ने के लिए तुर्कों की घोषणा सुनकर लोभ में पड़कर गुरु के उन दोनों पुत्रों को राजा की सेवा बताते हुए वजीरखान के हाथ में दे दिया।

बालौ गृहीत्वा तु वजीरखानो, ब्रूते-च धर्मान्तरणाय शीघ्रम्।
तयोर्निषेधेऽकरुणोऽधमस्तौ, प्राकारभित्तौ विलयं चकार।।५०।।
उन बालकों को पकड़ कर वजीरखान ने शीघ्रता से धर्म बदलने को कहा। उनके मना करने पर उस नीच निर्दयी ने उन बालकों को दीवार में चिन दिया।

प्राणानदत्तां न च धर्मवाचं, पित्रोर्यशो वै धवलं रराज।
पितामही पौत्रगतिं निशम्य, तावन्वगच्छत् सुरलोक-मार्गे।।५१।।

उन्होंने प्राण दे दिए, धर्मवाणी नहीं दी। माता–पिता का यश उन्होंने धवलित किया। दादी गुजरी पौत्रों की मृत्यु की बात को सुनकर उनके पीछे–पीछे स्वर्गलोक में चली गई।

यात्राश्रिते रोपड़स्थानमेत्य, लब्ध्वा मनीसिंह-सहायकं तम्।
सा सुन्दरी साहिबकौरदेवी, दिल्लीनिवासाय दिशां प्रयाते।।५२।।

इस बीच यात्रा करती हुई वे महिलायें रोपड़ आयी और मनीसिंह को मददगार पाकर सुन्दरी तथा साहिब कौर दिल्ली रहने को चली गई।

इति श्रीदशमेशचरिते आनन्दपुर-विनशने सप्तदशः सर्गः।

अष्टादशः सर्गः

सन्तो गुरुस्तु विश्वस्य, दिव्यैस्तैः शपथैस्तदा।
आनन्दपुरवासाच्च, वञ्चकैस्तु पलायितः।।१।।

उस सन्त गुरु गोविन्द सिंह को तब दिव्य शपथों से विश्वास दिलाकर उन धोखेबाज शत्रुओं ने आनन्दपुर नगर में पलायन करवा दिया था।

पृष्टतस्तं समाक्रम्य, नृशंसा भूरिसंख्यकाः।
सेवकान् ध्वन्ति सर्वत्र, सरसापारमानयन्।।२।।

उन विशाल संख्या के निर्दयी लोगों ने गुरु पर पीछे से आक्रमण कर सभी जगह सेवकों को मार दिया और सरसा नदी के पार ले आये।

दिल्लीतो गुरुसिक्खानां, दलनाय तु प्रेषिता।
तुरुष्काणां नवा सेना, वजीरखानमाययौ।।३।।

दिल्ली के शासन द्वारा गुरु और सिक्खों के दलन के लिए भेजी गई तुर्कों की नई सेना भी वजीर खान के पास पहुँच गई थी।

वजीरखाननिर्देशे, नानागुल्मेषु ग्रन्थिताः।
तुदन्ति ग्रामगेहेषु, गुर्वर्थं ते नरान् भृशम्।।४।।

वे सैनिक वजीरखान के कहने के अनुसार अनेकों टोलियों में बंट कर गांवों में, घरों में प्रवेश कर, गुरु को पकड़ने के लिए लोगों को सताते थे।

सरसादुर्गमेऽरण्ये, चत्वारिंशज्जनैगुरुः।
बारु-माजरा-ग्रामेऽशृणोच्छत्रून् समागतान्।।५।।

चालीस सिक्ख वीर जनों के साथ गुरु ने सरसा नदी के दुर्गम जंगल में बारु माजरा ग्राम में आये हुए उन शत्रुओं के घेरे के बारे में सुना।

चामकौरे जगत्सिंह-गृहं दुर्गं विधाय सः।
चत्वारिंशत्-सिक्ख-शूरैः, तान् हन्तुमुद्यतोऽभवत्।।६।।

चामकौर में जगतसिंह के घर को किला बनाकर वह गुरु चालीस सिक्ख शूरों के साथ उन शत्रुओं को मारने को तैयार हो गये।

गुरोः समाश्रयं ज्ञात्वां, तुरुष्का योद्धुमागताः।
भुशुण्डीगुलिकाक्षेपैः, घ्नन्ति तान् धर्मरक्षकान्।।७।।

उन तुर्कों ने गुरु का ठिकाना जानकर आक्रमण कर दिया। वे बन्दूकों से गोले वर्षा कर उन धर्म के रक्षकों को मारने लगे थे।

व्यूहं कृत्वा चतुर्दिक्षुः, सिक्खा रक्षां चरन्ति वै।
तेषां तु गोलिकापातैः, तुरुष्का वहबो हताः।।८।।

चारों दिशाओं में व्यूह रचना करके सिक्ख रक्षा कर रहे थे। उनकी गोलियों की वर्षा से अनेक तुर्क सैनिक मारे गये।

मध्याह्ने सैनिकैः साकं, विक्रमन्तौ गढ़ागतौ।
नाहरखांऽफगाखानः, सेनपौ द्वौ दिवं श्रितौ।।६।।

दोपहर में सैनिकों के साथ गढ़ में ये बहादुरी दिखाते हुए नाहर खां और अफगानखान दोनों सेनापति भी मर गये थे।

ख्वाजाखिजर–सेनानी, गुरुं बद्धुं समादिशत्।
प्रबला भवनं भङ्क्तुं, यवनाः पुरतो गताः।।१०।।

ख्वाजा खिजर सेनापति ने गुरु को बांधने का आदेश दिया। तब बहुत से बलवान तुर्क सैनिक उस भवन को तोड़ने को आगे गये।

प्रचण्डाः सिक्खशूराश्च, घ्नन्ति तान् कदलीदलान्।
नाशं नाऽऽयान्ति वर्धन्ते, यवनाः काल-मोदकाः।।११।।

प्रचण्ड उत्साही सिख वीर उनको केले के वन जैसे काट रहे थे। वे भागते हुए मुसलमान काल को प्रसन्न करने वाले लड्डुओं की तरह बढ़ रहे थे, नष्ट नहीं हो रहे थे।

सिक्खेषु युद्ध्यमानेषु, शस्त्रास्त्राणि क्षयानि वै।
अट्टालिकां गतो दृष्ट्वा, गुरुब्रूते स्व-सैनिकान्।।१२।।

युद्ध करते हुए सिक्खों के शस्त्र अस्त्र समाप्त हो गये। भवन की अट्टालिका (छत) पर चढ़कर गुरु ने शत्रुओं को देखकर अपने सैनिकों से कहा।

युध्यतां मरणं श्लाध्यं, बन्धनं न तु श्रेयसे।
स्वर्गो लोकस्तु वीराणां, विजेतृणां भुवं स्मृतम्।।१३।।

लड़ने वालों की मृत्यु प्रशंसनीय होती हैं। बन्धन कल्याण नहीं करता हैं। मृत वीरों के लिए स्वर्ग की भूमि है। जीतने वालों की यह भूमि होती है।

अस्त्राभावे तु खड्गेन, हत शत्रून् जयार्थिनः।
युष्माकं चरितं स्थेयं, ध्रुवलोकं यथा स्थिरम्।।१४।।

गोली आदि हथियारों की कमी से विजय की इच्छा से शत्रुओं को खांडे से मार डालो। तुम्हारा यह वीरता का चरित्र ध्रुवलोक की तरह स्थिर रहेगा।

पराह्णे पञ्चशूरान् सः, खड्गशूलैरयोधयत्।
निःसृतैस्तैः कृतं युद्धं, सहस्रादधिका मृताः।।१५।।

अपराह्न में गुरु ने पांच शूरों को तलवार और शूल देकर लड़वाया। बाहर निकले उन्होंने वह भयानक युद्ध किया कि हजार से अधिक सैनिक मारे गये।

गुल्मोऽन्यो निःसृतो भूयः, पञ्चानां खड्गयोधृणाम्।
तुरुष्काणां सहस्रार्धं, भूमिं शेते क्षणाद्धतम्।।१६।।

फिर तलवार चलाने वाला पांच सिक्खों का झुण्ड बाहर निकला। इसने तुर्कों के पांच सौ सैनिकों को मार कर जमीन पर सुला दिया।

प्रयाणं त्रिदिवे दृष्ट्वा, शूराणां धर्मरक्षिणाम्।
मोहकमेन सिंहेन गुरुं, प्रार्थ्य कृतं रणम्।।१७।।

अपने धर्म रक्षक वीरों का स्वर्ग प्रयाण देखकर मोहकम सिंह ने गुरु से प्रार्थना कर के तुर्कों से युद्ध प्रारम्भ किया।

केसरीवस्त्रपिहितो, लक्षान् शूरान् जघान सः।
युद्धक्षेत्रे श्रूयते सः, तुरुष्कान् कर्तयन् बभौ।।१८।।

केसरी कपड़े पहने हुए उसने लाखों सैनिकों को मारा। सुना जाता है कि वह तुर्कों की लड़ाई की फसल काटता हुआ भव्य शोभा दे रहा था।

खजान-ध्यानदानादिसिंहाः सर्वान् व्यनाशयन्।
सेनाक्षयं विलोक्य तं, सूर्यो मन्दो बभूव ह।।१६।।

खजान सिंह, ध्यान सिंह, दान सिंह आदि ने उन सबका विनाश कर दिया। उनकी सेना का विनाश देखकर सूर्य भी मन्द पड़ गया था।

दुर्घटा-नाशने सक्ताः, चान्ते तेऽपि दिवं श्रिताः।
सपादलक्षवीराणामलं सिक्खोऽब्रवीद् गुरुः।।२०।।

इस दुर्घटना को नष्ट करने में आसक्त वे सभी वीर स्वर्ग सिधार गये थे। सवालाख से एक लड़ाऊँ–सिक्खों से गुरु ने वचन कहा।

गुरोर्बाणमृतो तत्र, ताहरखानसेनपः।
शेते गैरतखानोऽपि, शरबिद्धो रणाङ्गणे।।२१।।

गुरु के बाण से ताहर खान नामक सेनापति मर गया। युद्ध–भूमि में गैरत खान भी बाणों से छिदा सो गया था।

तुरुष्काः प्रबला भूत्वा, योद्धुं भूयः प्रयान्ति ते।
तथापि केसरी-वीरैर्दलिताः रविणा तमः।।२२।।

तुर्क लोग फिर प्रबल होकर लड़ने को आगे चलते थे। सूर्य से अंधेरा जैसे इन केसरी बाना पहने वीरों से वे मार डाले गये थे।

युद्धयन्नजीतसिंहोऽपि, पितुः कीर्तिमवर्धयत्।
शावको सिंहवंशस्य, निर्भीको हन्ति दन्तिनः।।२३।।

अजीत सिंह ने युद्ध करते हुए अपने पिता गुरु गोविन्द सिंह के यश को बढ़ा दिया। शेर के वंश का भी बच्चा निर्भय होकर हाथी को मार डालता है।

प्रयातं भ्रातरं वीक्ष्य, तातं प्रार्थ्य ययौ रणे।
झुझारसिंहवीरोऽपि, धर्मं त्रातुं दिवं गतः।।२४।।

भाई का महा प्रयाण देखकर पिता से प्रार्थना करके जुझार सिंह नामक वीर पुत्र भी युद्ध में लडने को गया और धर्म की रक्षा करता हुआ स्वर्ग चला गया।

तयोर्दृष्ट्वा प्रयाणं च, ब्रूते कालं गुरुः स्मरन्।
न्यस्तं न्यासं त्वया नीतं, सच्छ्रीरकाल रक्षतात्।।२५।।

उन दोनों बालकों का महाप्रयाण देखकर अकाल पुरुष को याद करते हुए गुरु ने कहा—यह तेरी धरोहर थी तूने ले ली, सत् श्री अकाल रक्षा करना।

सुखसिंहो ज्ञानसिंहो, वीरसिंहो तदाऽऽक्रमन्।
सूर्यास्तमिव ते लीनाः, गुरुकार्यं प्रकाश्य तत्।।२६।।

तब सुक्खा सिंह, ज्ञान सिंह, वीर सिंह ने भी आक्रमण किया और गुरु के महान् कार्य को (उद्देश्य को) प्रकाशमान करके सूर्यास्त जैसे छिप गये।

पञ्चावशिष्टशूरेषु, गुरुर्धैर्येण युध्यते।
भीतिं पलायनं दैन्यं, मुखे दीप्ते न दृश्यते।।२७।।

पांच शूरवीर सिक्खों के शेष रहने पर भी गुरु धीरता से लड़ रहे थे। उनके दीप्त मुख मण्डल पर दया, भय, भागना या दीनता नहीं दिखाई दे रही थी।

निशायां पञ्चसिक्खास्तु, गुरुं गन्तुं तु प्रार्थयन्।
हिताय सिक्खपन्थस्य, भूयो लोक-समृद्धये।।२८।।
यदा न कुरुते वाक्यं, गुरुमाज्ञापयन्ति ते।
सत्याशिषं गुरार्भूयाद्, गच्छ भद्र स्वतो द्रुतम्।।२६।।

रात में उन पांचों सिक्खों ने गुरु को निकल जाने की प्रार्थना की। इससे सिक्ख पन्थ का हित होगा और संसार में धर्म समृद्धि होगी। गुरु ने जब इसे स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने गुरु को आज्ञा दी। गुरु का आशीर्वाद सच्चा हो। भलमानस स्वयं जल्दी निकल जाओ।

गढं स्थितो गुरोर्वेषे, सन्तासिंहो ददौ निशि।
शुभं मार्गं गुरुं यातुं, संगतसिंह-योगतः।।३०।।
धर्मसिंहो दयासिंहो, मानसिंहो गुरुं श्रिताः।
माछीवाडामधिकृत्य, तमिस्रायां तदा गता।।३१।।

सन्ता सिंह ने गुरु के वेश में गढ़ में रहते संगत सिंह के योग से रात में शुभ मार्ग बता दिया। धर्म सिंह, दया सिंह और मान सिंह अंधेरे में गुरु के साथ उनकी आज्ञा से माछीवाड़ा को लक्ष्य कर बागे बढ़ गये।

निशायां श्रान्तक्रान्तैस्तैः, शयानैः भूमि-प्राङ्गणे।
संगतसिंह-वाद्यस्य, ध्वाने, ध्यानं न तत्कृतम्।।३२।।
प्रभाते यवनैर्गोलीपातै, र्ध्वस्तो गढः कृतः।
युध्यन्तौ स्वर्गतौ वीरौ, गुरोर्धाम तदाश्रितौ।।३३।।

रात में थके मांदे भूमि पर सोये हुए उन तुर्कों ने संगत सिंह के बाजे की आवाज में गुरु के जाने पर ध्यान नहीं दिया। सवेरे मुसलमानों ने गोलियों के विस्फोट से वह गढ़ नष्ट कर दिया। दोनों वीर युद्ध करते हुए गुरु के धाम में सिधार गये।

गुरुभूषाभृतं शूरं, सन्तासिंहं विलोक्य ते।
मृतो गुरुर्न जीवन्ति, सिक्खाः कुत्रापि भूतले।।३४।।
अभिज्ञातुं गुरोः कायां, ख्वाजाखिजरसेनपः।
आदिदेश नरान् तत्र, ज्ञात्वाऽन्यं विस्मयं गतः।।३५।।

उन मुसलमानों ने गुरु की वेशभूषा में मरे सन्तासिंह को देखकर कहा गुरु मर गये हैं और सिक्ख कहीं भी जीवित नहीं है। ख्वाजा खिजर सेनापति ने गुरु को पहचानने की आज्ञा दी और दूसरा ही व्यक्ति जानकर आश्चर्य में पड़ गया।

वजीरखान-वाक्येन, गुरुं ज्ञात्वा पलायितम्।
स सेनानायकान् ब्रूते, गुरुमन्विष्य यो नयेत्।।३६।।
कृते स राज्यसम्मानं, भूमिभागं धनं कृपाम्।
लप्स्यते नात्र सन्देहो, यतन्तां सर्वतो दिशि।।३७।।

उसने वजीरखान के वचनों को प्रमाणित मान कर गुरु को भागा हुआ माना ओर अपने सेना नायकों से कहा कि गुरु को ढूंढकर लाओ। जो ऐसा करेगा उसे राज सम्मान, जमीन, पैसा और अनुग्रह प्राप्त होगा। अतः सभी ओर प्रयास करें।

चरन्तस्तिमिरेऽरण्ये, संगताज्ञा-पुरस्कृताः।
श्रान्ताः कान्ताः प्रवर्धन्ते, क्षुन्निद्राशीत कर्शिताः।।३८।।
शत्रुहस्तगत्ता न स्युः, पृथग्भूताः स्वलक्ष्यकम्।
निर्भ्रान्ता उत्तरे भान्तं पश्यन्तस्तारकं गताः।।३६।।

संगत की आज्ञा पालन करते हुए अंधेरे में वन में चलते हुए थके कुमल्हाये भूख नींद सर्दी सहते हुए बढ़ रहे थे। शत्रु के हाथ न पड़े इसलिए अलग होकर अपने लक्ष्य की ओर बिना भ्रम के उत्तर में चमकते हुए तारे को देखते हुए बढ़ गये।

विश्रमन् स वने तत्र, द्रुमच्छायासमाश्रितः।
स्मरन्नकालं पुरुषं, सोत्कष्ठं गायति स्वरम्।।४०।।
मित्र प्रियतमं गत्वा, दशामावेदय क्षणम्।
मृद्वी शय्यापि रोगाय, नागावासस्मृते त्वया।।४१।।

उन्होंने जंगल में पेड़ की छाया में विश्राम करते हुए अकाल पुरुष को याद करके उत्कण्ठित होकर गाया कि हे मित्र मेरे प्रियतम को जाकर बता दो कि तुम्हारे विरह में यह कोमल शय्या सांसारिक भोग मेरे लिए रोग हो गये हैं। यहाँ तुम्हारे बिना जहरीले सांपों में रहना कष्ट दे रहा है।

माध्वीकभाजनं शूलं, चषकं मे प्रतीयते।
क्षुरस्य निशिता धारा, शौनिकस्य करे धृता।।४२।।
अकिञ्चने सुमित्रेऽपि, सङ्गतिर्हृदयङ्गमा।
जायते नितरां वन्द्या, शीघ्रं प्रीणय जीवय।।४३।।

तुम्हारे बिना माधवी सुराही शूल जैसे छेद रही है। यह प्याला तेज धार वाला कसाई के हाथ का छुरा जैसे काट रहा है। गरीब सुन्दर मित्र की हृदय भाने वाली संगति बड़ी ही वन्दनीय है। हे मेरे मित्र मुझे प्यार करो, जीवन दो।

त्वया बिना समृद्धिः सा, नरकं भाति नित्यशः।
कियत्कालं पृथगभूतं, प्रपञ्चे पालयिष्यसि।।४४।।

तुम्हारे बिना यह सारी सम्पदाएं मुझे प्रतिदिन नरक का रहना लग रहा है। तुम मुझे कब तक अलग रखोगे। इस सांसारिक जाल में पालते रहोगे।

ततो गुरुः समुत्थाय, कन्दमूलाशनो गतः।
लक्ष्यस्थानमुरीकृत्य, तदाज्ञां परिपूरितुम्।।४५।।

तब गुरु गोविन्द सिंह उठे, वन के कन्दमूलों का भोग किया और उस अकाल पुरुष की आज्ञा पूरण करने को आगे बढ़ गये।

माछीवाड़ां गृहोद्याने, गुलाबस्य स्थितो गुरुः।
क्षणं विश्रमितुं तत्र, चिह्नितः सेवकैस्तदा।।४६।।
मसन्दः श्रीगुलाबस्तु, गुरोः सेवां तदाऽकरोत्।
मानसिंहो, दयासिंहो, धर्मसिंहश्च संगताः।।४७।।

माछीवाड़ा में गुरु जी विश्राम करने को गुलाब सिंह के निजी घर के बाग में ठहरे थे और गुलाब के सेवकों ने उन्हें पहचान लिया। श्री गुलाब मसन्द ने वहां गुरु की सेवा की। वहीं मानसिंह, दया सिंह और धर्म सिंह भी मिल गये।

मनीखानो नवीखानो, बाजिवाणिज्य-हेतुना।
गुलाबस्य गृहे दृष्ट्वा, गुरुं नत्वोचतुः उभौ।।४८।।
धिगाततायिनं शाहं, सेवकौ नौ निदेशय।
यथेष्टं पालयिष्यावो, यदादेशं भवेद् गुरोः।।४६।।

घोड़ों के व्यापार के कारण आये हुए गनी खां और नवी खां दोनों ने गुलाब मसन्द के घर में गुरु को देखकर प्रणाम किया और कहा आततायी बादशाह को धिक्कार है। ऐ गुरुदेव हम दोनों सेवकों को आज्ञा दो। आपकी आज्ञा का हम—पूरी तरह पालन करेंगे।

गुरुर्मालवस्थानेषु, प्रस्थातुं च मनो दधे।
श्रद्धामयीं विधिं कृत्वा, वेषभूषां सुसंगताम्।।५०।।
उच्चपीरं तु पर्यङ्के, सुनीलोष्णीष-धारिणम्।
स्कन्धे कृत्वा वहन्येते, नीलकञ्चुक-धारिणः।।५१।।

तब गुरु ने मालवा प्रदेश में जाने का मन बनाया। उन्होंने सुसंगत वेशभूषा वाली श्रद्धा करने योग्य तरीका अपनाया ओर नीली पगड़ी पहने उच्च के पीर को कंधे में पलंग पर बिठा कर स्वयं नीले कुर्ते पहने हुए ढोते चले गये।

लल्लग्रामं तु कानेचं, पारं कृत्वा स हैहरे।
कृपालदाससानिध्ये, विश्रामं दिवसेऽकरोत्।।५२।।
गच्छन्नग्रे लम्बग्रामाद्, बहिः जटपुराद् गतः।
रायकोटे स्थितो वासं, कल्लराय-गृहेऽश्रयत्।।५३।।

वे गुरु लल्ल गांव, को पार कर हैहर ग्राम में सन्त कृपाल दास के सानिध्य में एक दिन आराम करते रहे। फिर आगे चलते हुए उसने लम्ब गांव जट पुरा से बाहर रायकोट गांव में कल्लराय के घर में शरण ली।

कल्लरायो निषेवे तान्, निर्भीको श्रद्धया मुदा।
वार्तां ज्ञातुं च माहीं स, सरहिन्दे तु प्रैषयत् ।।५४।।
सरहिन्दे गतो माही, निर्दयं तत् शृणोति च।
प्रत्यागत्य गुरुं ब्रूते, धर्मार्थे पुत्रयोर्बलिम्।।५५।।

कल्लराय ने निर्भय होकर उन चारों की सेवा की और सरहिन्द में समाचार पता करने को माही को भेजा। माही ने सरहिन्द में जाकर वह निदर्य काण्ड सुना और वापस आकर बेटों की धर्म रक्षा हेतु बलिदान की गाथा सुनाई।

गुरुर्वीरगतिं श्रुत्वा, कुशामुत्पाट्य खण्डयन्।
शशाप शाह-साम्राज्यं, विखण्डं यातु सत्वरम्।।५६।।
पुत्राः शिष्याः क्षयं याताः, सोत्साहो वर्धते गुरुः।
लोकोत्तरस्य चित्तं वै, केन विज्ञापितं ध्रुवम्।।५७।।

गुरु ने पुत्रों की वीरगति सुनकर कुशा उखाड़ कर टुकड़े करते हुए शाप दिया कि शाह का यह अन्यायी साम्राज्य भी टुकड़े–टुकड़े हो जावे। गुरु के चारों पुत्र और असंख्य शिष्य अपना बलिदान देकर नष्ट हो गये थे। फिर भी गुरु उत्साह से बढ़ रहे थे। लोकोत्तर चरित्र वाले महापुरुषों के चित्त की दशा को कौन जान सकता है।

कल्लरायं च सन्मान्य, दीनाग्रामं गतो गुरुः।
जोधाराय-गृहे वासं, चकार सगणोऽधुना।।५८।।
समीरो लखमीरश्च, गुरुं ज्ञात्वाऽतिहर्षितौ।
जोधरायस्य तौ पौत्रौ, सपर्यां चक्रतुर्मुदा।।५६।।

कल्लाराय का सम्मान कर गुरु, दीना गांव गये और अब सभी जोधाराय के घर ठहर गये। जोधाराय के पौत्र समीर और लखमीर ने गुरु को आया जान कर महान हर्ष माना और खुशी से गुरु की सेवा की।

गुरोरागमनं श्रुत्वा, ग्रामेभ्यो दर्शनोत्सुकाः।
संगतास्तत्र सम्प्राताः, ज्ञात्वाऽपि विषमां दशाम्।।६०।।
धर्मनिष्ठं गुरोर्वृत्तं, तेषां चित्तेऽभवत् स्थिरम्।
समर्पितास्ततो भूयो, गुरुपादेषु संस्थिताः।।६१।।

गुरु का आगमन सुनकर दर्शन के लिए उत्सुक संगते गांवों से वहां आयी। उन्होंने भी गुरु की यह कष्टदायक दशा सुनी थी। उनके मन में धर्म में स्थित गुरु का आचरण स्थिर हो गया। वे उससे भी अधिक समर्पित हो गये और गुरु के पास ठहर गये।

यातेषु च तुरुष्केषु, सरहिन्दस्य सेनपः।
समीरं लखमीरं च ब्रूते बद्धुं गुरुं तदा।।६२।।
प्रत्युत्तरं तयोर्दत्तं वयं सेवामहे गुरुम्।
प्राणा यान्तु गृहं यातु, सद्गुरुर्नैव दीयते।।६३।।

तुर्कों के चले जाने पर सरहिन्द के सूबेदार ने समीर और लखमीर को गुरु को बांधने के लिए कहा। उन दोनों ने उत्तर दिया कि हम गुरु की सेवा कर रहे हैं। प्राण चले जाये, घर चला जाये किन्तु सद्गुरु को कभी नहीं दे सकते हैं।

एतस्मादन्तरे पूर्वं, त्रातुं तौ गुरुबालकौ।
मालेरकोटलापालो, दिल्लीं पत्रं लिलखे तत्।।६४।।
तदुत्तरेऽलिखत् शाहो, गुरुर्यातु स सन्धये।
मम वर्त्माऽनुयानेन, सर्वं क्षम्यं कृतं भवेत्।।६५।।

इसी बीच में वहां सरहिन्द में गुरु बालकों रक्षा करने को मालेरकोटल के नवाव ने दिल्ली को एक पत्र लिखा। उसके उत्तर में शाह ने लिखा कि गुरु सन्धि करने को यहाँ आये और मेरे मार्ग का अनुसरण करे तो सभी कुछ माफ हो सकता है।

प्रतिजानीमहे सत्यं, विश्वासं कुरु मा भयम्।
प्रपन्नपरित्राणाय, सहाय्यं मे समाचर।।६६।।
तदुत्तरे गुरुर्भव्यं, विजयपत्रकं ददौ।
धर्मसिंह-दयासिंह-हस्तेन शाह-हस्तयोः।।६७।।

हम (शाह औरंगजेब) पत्र में सत्य प्रतिज्ञा करते हैं कि हम पर विश्वास करो, भय मत करो। गिरे हुओं को बचाने के लिए हमारी सहायता करो। इसके उत्तर में गुरु गोविन्द सिंह ने भव्य 'विजय--पत्र' धर्म सिंह और दया सिंह के हाथों से शाह के हाथों में पहुँचाया।

इति श्रीदशमेशचरिते धर्मरक्षक-बलि-गोति-वर्णने अष्टादशः सर्गः।।१८।।

नवदशः सर्गः

अकालो विधाता चमत्कारकर्ता, स वृत्तिप्रदाता कृपालुर्महेशः।
निराकार आनन्ददाता निरीहः, स्वरूपाश्रितो राजराजेश्वरोऽसौ।।१।।

वह अकाल पुरुष सभी को बनाने वाला, चमकाने वाला, भोग व्यवहार देने वाला दयालु महान् परमात्मा है। वह निराकार होकर आनन्द देता है, कुछ भी नहीं चाहता है, अपने में रमा राजाओं का भी राजा है।

पुनीतो धृतिज्ञान-सौन्दर्यसिन्धुः, विभुर्व्यापको ब्रह्मनादैकबिन्दुः।
दुराचारध्वंसी गुणानां प्रशंसी, सदाचारशंसी प्रभुश्चेतनांशी।।२।।

वह प्रभु पवित्र है। धीरज, ज्ञान और सुन्दरता का सागर है। महान् है, व्यापक है, ब्रह्म है, शब्दनाद का जप बिन्दु है। वह दुराचारों का विनाशक, गुणों का प्रशंसक, सदाचार का भाषक, चेतनांश देने वाला है।

रसानां सरांसि श्रियाणां वचांसि, सुधायाः पयांसि प्रियाणां मनांसि।
सृजन् प्रापयन् वर्षयन् प्रीणयन्सः, चिदाकाशवासी स्थितो मानसे मे।।३।।

आनन्द के सरोवर, कल्याण की वाणी, अमृत का जल, प्रियतमों का मन बनाता, पहुँचाता, वर्षाता और प्रसन्न करता हुआ चिदाकाश मे निवास करने वाला वह प्रभु मेरे मन में है।

तमेकं परं मन्यमाने त्वदीये, न विश्वासभूमिं प्रयाति प्रमाणम्।
न कुर्वाण-सौगन्ध-पत्रं त्वदीयं, विधत्ते स्वमानं नृभिस्ते प्रदत्तम्।।४।।

उस सर्वश्रेष्ठ एक परमात्मा को मानने वाले तुम पर कोई विश्वास का आधार प्रमाण में नहीं मिल रहा है। तुम्हारे कुरान के कसम की चिट्ठी, तुम्हारे लोगों द्वारा दी गई भी अपनी प्रतिष्ठा नहीं कर रही हैं।

असत्याश्रिता मन्त्रि-सेना-नरास्ते, लयं याति तेष्वत्र सौगन्धनिष्ठः।
कृता चातुरी या मदीये प्रयाणे, हताः सेवका भारनद्धाश्च पृष्ठात्।।५।।

तेरे मन्त्री और सेना के लोग झूठे हैं। तुम्हारे इन लोगों के द्वारा कसम पर ठहरा व्यक्ति नष्ट हो जाता है। मेरे जाने पर इन्होंने वह होशियारी दिखाई और बोझ से लदे मेरे सेवक पीछे से मार डाले थे।

कथं चामकौरे द्विविंशाश्च शिष्या, बुभुक्षार्दिता लक्षसैन्येन वृत्ताः।
स्वरक्षां विधातुं समर्था भवन्तु, धृता वञ्चकैस्ते न सौगन्ध-पालाः।।६।।

चामकौर में भूख प्यास से परेशान मेरे वीर चालीस शिष्यों को तुम्हारे लाखों की सेना ने घेर दिया था। वे अपनी रक्षा करने में कैसे समर्थ हो सकते थे।

तदैवात्मरक्षाकृते कर्तितास्ते, ह्यशान्तिं श्रितानां कृते त्वायुधानि।
प्रभूताश्च-सौगन्ध-भाजो जनान् ते, रणे हन्तुमेतान्न सिक्खान् ब्रवीमि।।७।।

तब ही हमने आत्मरक्षा के लिए उनको काट डाला। जो शान्ति नहीं चाहते हैं उनके लिए ही हमारे हथियार हैं। तुम्हारे इन बहुत सारे शपथ लेने वाले लोगों को युद्ध में मारने के लिए मैंने सिक्खों को नहीं कहा था।

त्वया लेखितं यच्च कुर्वाणवाक्यं, शृगालात् त्वया चातुरी सा गृहीता।
मया चिन्तितं कर्म स्वप्ने न तादृक् , कथं पृष्ठतो वाक्यदो हन्तुमेति।।८।।

तुमने जो कुरान का वचन लिखा, वह होशियारी तूने सियारों से सीख ली है। मैंने ऐसा काम सपने में भी नही सोचा था कि वचन देने वाला पीछे से वचन भंगकर के कैसे मारता है।

स्थिताः कृष्णवासाः सहस्राधिका ये, गढं भङ्क्तुकामा हताः सैनिकास्ते।
रणे नाहरो बाणविद्धो मृतोऽभूत्, प्रयाताः पठाना भयाद् वेपमानाः।।९।।

जो काले कपड़ों के हजारों सैनिक गढ़ तोड़ने को ठहरे थे तुम्हारे वे सभी सैनिक मारे गये। युद्ध में नाहर खां वाण से छिदा मर गया। डरके मारे कांपते हुए पठान भाग गये थे।

सपादं च लक्षं हतं सैन्यसङ्घं यशो लेभिरे तत्र सिक्खा मदीयाः।
सुतौ बालवीरौ रिपून् कर्तयन्तौ, गतौ धाम दिव्यं जना विस्मितास्ते।।१०।।

सवा लाख सेना मारी गई। मेरे सिक्खों को नामवरी मिल गई। मेरे दोनों छोटे वीर पुत्र रिपुओं को काटते हुए दिव्य धाम चले गये। वे सभी लोग विस्मित हो गये थे।

स मर्दुदखाजा भयाद् भित्ति-पृष्ठे, स्वकायामरक्षन् महासेनपस्ते।
मदीयैः शरैर्घातितास्ते प्रवीराः, प्रमत्ता रणे रक्तभूमौ प्रसुप्ताः।।११।।
वह तेरा सेनापति खाजा मर्दूद डर से दीवार के पीछे अपना शरीर बचा गया था। मेरे बाणों से मारे गये तेरे बड़े मस्त वीर युद्ध में रक्त रंजित धरा पर सो गये थे।

स्फुलिङ्गै र्भुशुण्डी-महागोलपातैः, धरा सा विदीर्णा विदीर्णं बलं ते।
तदा केसरी-वासकैः पञ्च-शिष्यै, र्महाकर्तनं तीव्रशौर्येण नीतम्।।१२।।
चिनगारियों से बन्दूकों से बड़े गोलों के गिरने से भूमि फट गई थी और तुम्हारी फौज भी कट गई थी। तभी केसरीवाना पहने पांच शिष्यों ने भारी वीरता से बड़ा भारी कत्ले आम वहॉ कर दिया।

कबन्धाः पतन्तो लुठन्तः शिरांसि, धराक्ता गता भीषिताः सैनिकास्ते।
तदीयास्त्रशस्त्रैर्विसृष्टैर्महाजौ, निपातं प्रयातं बलं ते समग्रम्।।१३।।
धड़ गिर रहे थे, शिर लोट रहे थे, भूमि गीली हो गई थी, डरे सैनिक भाग रहे थे। उन्हीं के छोड़े हथियारों से इस महान समर में तुम्हारी सारी सेना मर गई थी कटी चली गई थी।

परेशः सहाय्यं तदा कुर्वन्नास्ते, बचो भक्तिभाजां जनानां निशम्य।
प्रयातोऽस्तमर्कस्तदा चन्द्रिकाऽभूद्, बहिर्मां निनाय प्रभुः सर्वरक्षी।।१४।।
परमात्मा भक्ति करने वालों की वाणी सुनकर सहायता कर रहा था, सूर्य डूब गया था, चांदनी छा गई थी, सबकी रक्षा करने वाला भगवान मुझे युद्ध भूमि से बाहर ले आया था।

स सौगन्धपाती नु विश्वासघाती, धने सक्त-चेता मया ज्ञापितोऽभूत्।
न धर्मे न नीतौ न ते प्रार्थनायां, सदाचारपाले प्रभौ नास्ति भावः।।१५।।
वह कसम (शपथ) तोड़ने वाला, विश्वासघात करने वाला, केवल धन में रमा मैंने तुझे जाना है। तुम्हारी धर्म में, नीति में, प्रार्थना में, सदाचार पालन में या भगवान में भावना है ही नहीं।

स्वधर्मे स्थितो नैव वाचा प्रयाति, न कुर्वाणवाणीं वृथा वा करोति।
धनान्धो मदान्धो विवेकान्धभूतो, न वा यासि विश्वासपात्रं कथञ्चित्।।१६।।
अपने नियम पर रहने वाला अपनी बात से नहीं हटता, वह कुरान की कसम बेकार नहीं करता। आप धन से अन्धे, मद से अन्धे और विवेक से अन्धे बने किसी तरह विश्वास के योग्य नहीं हो।

यथा मन्यते तत्र दोषं परेषां, स्ववाचा स्वविश्वासनिष्ठः समेयाः।
स्वपत्रं प्रमाणं स्वकार्येण कुर्याः, न भेयं गुरोर्धर्मगेहं जनानाम्।।१७।।
यदि तुम इसमें पराया दोष ही मानते हो तो अपनी वाणी से, अपने विश्वासपूर्वक यहां आओ। अपनी चिट्ठी को प्रमाणित अपने काम से करो। यहाँ आने में डरना नहीं चाहिए। गुरु का धर्मशाली घर लोगों का अपना ही होता है।

जनाः सत्यवाचः सदा वर्तयेयुस्त्वदीयं तु पत्रं च सन्देशमाप्तम्।
यथैवाह निर्णायकः पाल्यमेतद्, वृतो सत्यभावेन त्वागच्छ शीघ्रम्।।१८।।
लोग हमोश सच्ची वाणी का व्यवहार करें। तेरा पत्र और सन्देश दोनों मिल गये। जैसा फैसला करने वाला काजी या निर्णायक कहेगा हम उसका पालन करें। सच्ची भावना से जल्दी आ जाओ।

स्वसौगन्ध-कुर्वाण-पत्रं दिदृक्षुः, भवेत्प्रेषणीयं त्वयि प्रार्थ्यमाने।
भवान् कांगडग्रामयाने समर्थः, तदा श्रेयसे मेलमेतत्कृतं स्यात्।।१६।।
अपने कसम वाले कुरान के पत्र को देखने की इच्छा है, तो तुम्हारे मांगने पर भेजा जा सकता है। आप कांगड ग्राम आने में समर्थ हो। तभी हमारा मेल लाभदायक हो सकता है।

यथा मां सुरक्षन्ति वैराड़-भक्तास्तथा त्वां तु रक्षन्तु भीतिं जहाहि।
समागच्छ शीघ्रं कृपां मे लभस्व, त्वयि स प्रसन्नो विधाता विभाति।।२०।।
ये वैराड़ जाति के लोग जैसे मेरी सुरक्षा कर रहे हैं वैसे ही तुम्हारी भी रक्षा करेंगे। अतः भय करना छोड़ दो। जल्दी जाओ और मेरा आशीर्वाद पाओ। तुम पर वह परमात्मा प्रसन्न लगता है।

प्रभोरेव दासोऽस्मि मान्यः सतुभ्यं, यदाऽऽज्ञापयेन्मां तदा मे गतिः स्यात्।
तदीयो जनश्चेन्न कार्यो विलम्बः, परिज्ञायते नान्यमार्गं प्रयाहि।।२१।।
मैं भगवान का ही सेवक हूँ। वह तुम्हें भी माननीय हैं। वह जब मुझे आज्ञा देगा तभी मैं जा सकूंगा। अगर तुम उसके आदमी हो तो आने में देर मत करो। अब दूसरा रास्ता शेष नहीं है, शीघ्र आ जाओ।

अशक्तौ यथा शासनादेशपत्रं, सुवाच्यं च सन्धेस्त्वया प्रापणीयम्।
विधाता स सिंहासनं ते त्वयच्छत्, तमेकं स्मरन् मुञ्च जिह्मां स्ववृत्तिम्।।२२।।
तुम्हारी आने में असमर्थता है तो एक साफ–साफ सन्धि की राजाज्ञा (फरमान) यहाँ पहुँचाओ। उस विधाता ने तुम्हें सिंहासन दिया है। अतः उसको याद करते हुए अपने कुटिल व्यवहार को छोड़ दो।

मनः सन्मुखे स्पष्टतां याति शीघ्रं, नृंशसेन देवो न मोदं विधत्ते।
न दर्पो विधेयो विभीहि परेशाद्, धराकाश-सृष्टिं सृजन् शोभते सः।।२३।।
सामने मेल से मन साफ होता है। क्रूरता से भगवान किसी पर खुश नहीं होते। तुम्हें घंमड नहीं करना चाहिए। परमात्मा से डरो। वह भूमि और आकाश बनाता हुआ शोभायमान हो रहा है।

स वै दीनबन्धुर्न मानी न कांक्षी, प्रदाता पथानां गतिर्साधकानाम्।
न कुर्वाण-सौगन्ध-भाराच्छिरस्ते, विलज्जेत सा चतुरी ते हिताय।।२४।।
वह भगवान दीन बन्धु है,न मानी है और न कुछ चाहता है। वह मार्ग देने वाला साधकों को गति देने वाला है। तेरा कुरान के बोझ वाला सिर लज्जित न हो, यही होशियारी तुम्हारे लिए भलाई देने वाली है।

सुता घातिता जीवितः कालसर्पः, प्रचण्डो हुताशो घृते पातितोऽभूत्।
वजीरः फलं तस्य शीघ्रं लभेत, प्रकोपः कृतघ्ने तु सम्पादनीयः।।२५।।
चारों बेटे मारे गये हैं और काला सांप जी रहा है। घी डालने पर आग तेज हो गई है। वजीरखां अपने कुकर्म का फल शीघ्र भोगेगा। कृतघ्नों पर क्रोध तो सदा करना ही चाहिए।

न जाने प्रभुज्ञं तु दुष्कर्म-सक्तं, प्रभुस्तद्धनं त्वां न दर्पं च पाति।
शतं ब्रूहि सोगन्धवाक्यं न मन्ये, स विश्वास-भावो त बध्नाति चित्तम्।।२६।।
मैं नहीं जानता हूँ कि प्रभु को पहचानने वाला बुरे काम करता हो। भगवान उस धन को, धन वाले तुमको या तुम्हारे दर्प की रक्षा नहीं करता है। तू सौ कसमें भी खा। मैं नहीं मानता। मन में वह विश्वास की भावना आती ही नहीं है।

न त्वां यामि मार्गं न तत्ते चिनोमि, श्रितं नष्टमेतन्न नंक्ष्यामि चान्यत्।
प्रभोः प्रेरिता मुस्लिमा हिन्दुशूराः, विपत्तौ शरीरैर्धनैः पान्ति मह्यम्।।२७।।
मैं तुम्हारे मार्ग पर न चलता हूँ और न चुनता हूँ। जो था नष्ट हो गया, और नष्ट नहीं करूंगा। भगवानकी प्रेरणा से मुसलमान और हिन्दु शूर वीर विपत्ति में अपने शरीरों और धनों से तत्काल मेरी रक्षा करते हैं।

श्रुतो भाग्यशाली च दक्षोऽसिपाते, प्रवीणो रणे वाजिवाहे तु शाहः।
महायुद्धनेता सुतीक्ष्णा च बुद्धिः, कथं दुर्गुणा त्वां श्रिता नैव जाने।।२८।।
मैंने सुना कि हे बाहशाह तू भाग्याशाली है, तलवार चलाने में होशियार है। युद्ध में घुड़सवारी में होशियार है। तूने बड़े युद्धों का नेतृत्व किया है, तीव्र बुद्धि का है। मैं नहीं जान रहा हूँ कि तुम्हारे पास दुर्गुण कहाँ से आये हैं।

मया खण्डिता अन्धपाषाणसक्ता, सदा मण्डिता ज्ञानकर्मप्रसक्ताः।
युगे पण्डिता वादग्रस्ता विभक्ता, त्वया दण्डिता नो कृतघ्ना नियुक्ताः।।२९।।
मैंने अन्धे पत्थरों पर आसक्तों को खण्डित किया है। ज्ञान कर्म में लगे हुए लोगों को मण्डित किया है। इस युग में पंडित वाद विवादों में फंसे बट गये हैं। तुमने अपने नियुक्त किए कृतघ्न अधिकारियों को दण्डित नहीं किया है।

अकालोऽहन् तत्र लक्षान् दशान्तान्, गढे सैनिकैर्यैर्वृत्ते संकटोऽभूत्।
क्षमा-मोक्ष-नेतृत्वकारी स्मृतः स, स्तुतो हार्दिकां कामनां तां ररक्ष।।३०।।
अकाल पुरुष ने उस गढ़ में दश लाख सैनिकों को मार डाला। जिन से घिर कर संकट हो गया था। क्षमाशील, मुक्ति दिलाने वाला, हमारा नेतृत्व करने वाला वह प्रभु याद करने पर, प्रार्थना करने पर हमारी उस मनोकामना का भी रक्षक बना।

स दुर्दान्तशूरं करोत्यन्धमेव, सुरक्षन् च दीनान् सहाय्यं ददाति।
नरः सत्यपूतेन वृत्तेन नित्यं, चरन् जीवनं सैव सेवा प्रतिष्ठा।।३१।।
वह अकाल पुरुष खतरनाक वीर को भी अंधा कर देता है। दीनों की रक्षा करता हुआ सहायता देता है। अपने सच्चाई से भरे व्यवहार से यदि मनुष्य जीवन चलाता हो तो वही भगवान की सेवा है, प्रतिष्ठा है।

प्रसन्ने विभौ छद्मद्वेष्येन किंवा, धृतो लक्षकैर्रक्ष्यतेऽकाल-दृष्ट्या।
रतं कर्मयोगे तु तस्मै निवेद्यं, बहेत् तं गुरु र्वा निहालं च कुर्यात्।।३२।।
परमात्मा की प्रसन्नता में छल वैर से क्या। लाखों से घिरा भी अकाल की कृपा दृष्टि से बच जाता है। उसको समर्पण कर कर्म में लगे हुए को वह गुरु पार लगाता है। उसे ऐश्वर्य सम्पन्न कर देता है।

महन्मन्यसे द्रव्यसैन्यं नृराज्यं, मया संस्तुतो निर्विशेषश्च मान्यः।
जगन्नास्ति जीवो न कालस्य ग्रासः, कृतघ्नो युगोऽयं भुजङ्गप्रयातः।।३३।।
तुम धन सेना राज बड़ा मानते हो, मुझे उसकी स्तुति अच्छी लगती है और बिना कारण के उसे माना है। न यह संसार है, न जीवन है। सभी काल का भोजन है। यह धोखेबाज युग सांप की चाल चलता है।

सशक्तोऽसि लोकान् दलेन्नैव दीनान्, तुदन्नर्दयन् पापभारं चिनोषि।
कृते द्वेषदण्डे भयं कैर्न लब्धं, यदा रक्षको राघवेन्द्रः समर्थः।।३४।।
तुझे शक्तिशाली होकर गरीबों का दलन नहीं करना चाहिए। तंग करता हुआ, पीसता हुआ, पाप का बोझ जमा कर रहा है। वैर और सजा करने पर किसको डर नहीं होता है जबकि उसका रक्षक भगवान समर्थशाली है।

प्रभुं निर्गुणं वर्णवर्गादिभिन्नं, जरा जन्मदुःखादि-धर्मादतीतम्।
गिराज्ञानगोतीतमीशं निधीनां चतुर्वग-दातारमेनं श्रयेम।।३५।।
परमात्मा निर्गुण हैं, वर्ण वर्ग से भिन्न है। बुढ़ापा, जीवन दुःखादि गुणों की प्रक्रिया से बाहर है। वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से अगम्य है, सम्पत्तियों का स्वामी है। चारों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) देने वाला है। इसका सहारा लेवे।

पुराऽऽख्यानमेतच्च मान्धातृपुत्रो, सुयोग्यो नियोगे रतो ख्यातिमाप।
नृपो चीनदेशेऽब्रवीत् मन्त्रिवर्गं, प्रजारञ्जकं संयतं शूरभूपम्।।३६।।

पुराना इतिहास है कि मान्धाता का पुत्र अपने कर्त्तव्य में लग कर योग्य राजा प्रसिद्ध हुआ। चीन के राजा ने कहा कि राजा शूरवीर, संयमी और प्रजा को अच्छा लगने वाला ही हो।

वछत्रामती पार्वती राजकन्या, स्ववाचादृढं भूपतिं नैव लेभे।
दुःखं प्रापिता न्यायकर्तुश्च कन्या, बचोभंगजन्यं दुरापं तथोग्रम्।।३७।।

पहाड़ी राजा की लड़की वछत्रामती ने अपने वचन पर मजबूत राजा को पति रूप में नहीं पाया था। न्यायाधीश (काजी) की लड़की अपना वचन भंग करने से भयानक दुःख में फंस गई थी।

स्मृताऽमात्यकन्या तु मिथ्याऽब्रवीद्या, प्रियं रक्षितुं सा क्षमेशं रराध।
भृतो नीचगेहेऽपि चारित्र्यरक्षी, वभूव प्रजारक्षको बन्द्यभूपः।।३८।।

झूठ बोलने वाली राजकुमारी ने प्रिय की रक्षा की और झूठ की क्षमा देने वाले प्रभु से माफी मांगी। चरित्र की रक्षा करने वाला नीच घर में पलने वाला बालक भी प्रजा की रक्षा करने वाला माननीय राजा बना था।

श्रुता फारसे राजमाता कुवृत्ता, निमग्ना ततो नैवमुद्धारमाप।
तथैवाङ्गदेशस्य भूपः कुशीलः, कुकर्माश्रितानां सहाय्यं करोति।।३९।।

फारस देश के राजा की माँ दुराचारिणी थी। वह उसी में डूबी रही, उसका उद्धार नहीं हुआ। वैसे ही अंग देश का आचरणहीन राजा निन्दित काम करते हुए कुकर्मियों की ही सहायता करता था।

प्रियाऽमात्यपुत्री गुणी राजपुत्रः, स्थितौ सत्यमार्गे स्वधर्मे प्रतिष्ठौ।
स कालिंजरेऽभून् नृपः सत्यकामः, प्रजां रञ्जयन् कार्यबाधाः न मेने।।४०।।

किसी मन्त्री की प्यारी लड़की और गुणवान राजा के पुत्र ने अपनी सच्चाई की राह पर चलते हुए अपने धर्म की इज्जत बढ़ाई। सच्चाई पालन करने वाले कालिंजर के राजा ने प्रजा के पालन में कोई बाधा नहीं मानी।

परिज्ञाय तथ्यं कृतं कार्य-वृत्तं, हिताय पठानौ स्मृतौ दम्पती तौ।
त्वया सर्वमतेद्धिया चिन्तनीयं, तदा ज्ञास्यसि ज्ञेयजेयं मदीयम्।।४१।।
ठीक ठाक झूठ सच जानकर काम करना अच्छा है। इसी को भलाई मानकर चलने वाले पठान दम्पत्ति ने इतिहास में नाम अमर किया। तुम इसे अपनी बुद्धि लगाकर विचार करो। तभी तुम मेरी जानने योग्य जीत को समझ सकोगे।

मनुष्यधर्मं विजये लिलेख स, मदान्घ-धर्मान्ध-पदानि दूषयन्।
शुभादि कर्माणि मुदा प्रकाशयन्, प्रमाणितं सामयिकं स्वचिन्तनम्।।४२।।
उनगुरु गोविन्द सिंह ने मदान्ध धर्मान्ध पदों की निन्दा करते हुए विजयहेतु मनुष्य धर्म को पत्र में लिखा। उन्होंने शुभकर्मो को प्रकाशित करते हुए अपने सामयिक चिन्तन को इससे प्रमाणित किया।

ऋतंवरा ऋचा गुरोः श्रियो निधि र्जयप्रदा,
विभाति वन्दना विभोः सुशिक्षिका नृपस्य सा।
सुदूरदक्षिणापथे तु शाहहस्तयोर्गुरुः,
ददाति धर्मसिंहमेत्य पत्रमुत्तराङ्कितम्।।४३।।
गुरु की वाणी सत्य से श्रेष्ठ, श्री की निधि, जीत देने वाली, राजा को उत्तम शिक्षा देने वाली भगवान की वन्दना थी। गुरु गोविन्द सिंह जी ने बहुत दूर दक्षिण में (अहमद नगर में) बादशाह औरंगजेब के हाथों में भेजने को अपने उत्तर से रंकित वह विजयपत्र धर्मसिंह को दे दिया।

इति श्रीदशमेशचरिते विजयपत्र-प्रेषणे नवदशः सर्गः।।

विंशतिः सर्गः

गुरुर्विजयपत्रं तु, शाहाय प्रेष्य चिन्तयन्।
स दीनाकांगड़े ग्रामे, नीतिधर्ममशिक्षयत्।।१।।
अकालं पुरुषं लब्धुं, मोक्षमार्गं भवाद् भवेत्।
नवागतान् स तान् शिष्यान्, सैन्यदीक्षां ददौ स्वयम्।।२।।

गुरु ने अपना विजय–पत्र बादशाह औरंगजेब को भेजकर, सोच विचार करते हुए दीना कांगड़ा गावं में लोगों को नीति धर्म सिखाया। उन्होंने अकाल पुरुष को पाने को और संसार में भय से मुक्ति का रास्ता दिखाने को नये आये हुए शिष्यों को भी स्वयं सैनिक शिक्षा दी।

अन्विष्यन् शिष्यरक्षार्थं, स्थानानि प्रसराय च।
स प्रयातस्ततः, कोट-कपूरा-ग्राम-वासके।।३।।
ततोऽपि दक्षिणे पूर्वे, योजनान्तरवासके।
सोढीकौलस्य सानिध्ये, स गतो ढिलवा-कलाम्।।४।।

सिक्खों की रक्षा ओर फैलाव के लिए स्थान ढूंढते हुए वह कोटकपूर नामक गांव में गये। वहाँ से फिर दक्खन पूर्व की योजन भर की दूरी पर बसे सोढी कौल के ढिलवाकला गाँव में गये।

सोढीकौलो गुरोर्नीलं, कञ्चुकं दहनेऽदहत्।
शुक्लाम्बरकिरीटेन, भूषयामास सद्-गुरुम्।।५।।
विहरन् ढिलवाग्रामान् मलूकग्राममागतः।
कोटाग्रामे च सन्दिश्य, जेतोग्रामेऽवसद् गुरुः।।६।।

सोढी कौल गुरु ने गुरु गोविन्द सिंह के नीले चोले को आग में जला दिया। फिर सफेद वस्त्र और मुकुट से उन्हें सजाया। गुरु घूमते हुए ढिलवा गाँव में भी शिक्षा देकर जेतो गाँव में जाकर बस गये थे।

शिक्षयन् ढिलवा-ग्रामं, सोढीकौलस्य वासके।
गुरुः स्थितो समागम्य, कपूराचौधरीयुतः।।७।।
तत्राशृणोत् समीरस्य, प्रत्युत्तरेण क्रोधितः।
वजीरखानो बघ्नातुं, गुरुं सैन्यं च प्रैषयत्।।८।।

गुरु शिक्षा देते हुए कपूराचौधरी के साथ ही सोढी कौल के ढिलवा कला गाँव आ गये। तब वहाँ उन्होंने सुना कि समीर चौधरी के जवाब से नाराज होकर वजीरखान ने गुरु को बांध कर लाने के लिए सेना भेज दी।

खिद्राणो तान् गतो रोद्धुं कपूरा-चौधरीमतात्।
मिलिता मार्गमध्ये तु, सिक्खा मांझे-निवासिनः।।६।।
केचित्तेषु गता सिक्खा, यैं गुरुः पूर्वमुज्झितः।
आनन्दपुरध्वंसेन, क्षुब्धा रुष्टास्तदाऽऽगताः।।१०।।

कपूराचौधरी से राय लेकर गुरु उन्हें रोकने को खिद्राणे स्थान पर गये। उन्हें रास्तें में माझे के निवासी सिक्ख मिले। उनमें कुछ वे सिक्ख थे जिन्होंने गुरु का पहले बहिष्कार किया था और कुछ आनन्दपुर के नाश से गुस्से में भरे हुए आये थे।

द्विशतं ते युता आसन्, मांझासंगत-वाचिता।
तैर्गुरुः प्रार्थितो सन्धिं, शाहेन भजतु भवान्।।११।।
गुरुर्ब्रूते गतं सर्वं, तदा सन्धिर्न वोऽभवत्।
गुरुणान्तु यशोघ्नीं तां, नैव सन्धिं भजेऽधुना।।१२।।

वे मांझा के संगतो के द्वारा चुनकर भेजे हुए दो सौ लोग थे। उन्होंने गुरु से कहा—आप बादशाह से सन्धि कर लें। गुरु ने कहा—जब सब कुछ चला गया तब तुम्हारा समझौता नहीं हुआ था। मैं अब गुरुओं की कीर्ति मिटाने वाली सन्धि कदापि नहीं करूंगा।

तैः सिक्खैः संगताऽऽदेशाल्, लिखित्वा ज्ञापितो गुरुः।
न वयं भवतः शिष्याः, नाऽस्माकं त्वं गुरुर्मतः।।१३।।
प्रत्यायान्तास्तु विद्राणे, तुरुष्कैस्ते बलैर्धृताः।
शूराः सिक्खा निपात्येतान् 'बहेद् गुरुः' जयं श्रिताः।।१४।।

उन सिक्खों ने संगत की आज्ञा से गुरु को लिखकर सूचना दी अब हम न तो आपके चेले हैं और न आप हमारे गुरु हैं। वापस आते हुए उनको रास्ते में तुर्कों की सेना ने घेर लिया। इन शूरवीर सिक्खों ने इन्हें मारकर गुरु पार लगाये कहते हुए जीत पायी।

धर्मयुद्धे हता सेना, वैशाखे प्रबलातपे।
जलाभावाद् मृता अश्वाः, सैनिकाः पतिता गताः।।१५।।
घात-तापावशिष्टा ये, तुरुष्कास्ते पलायिताः।
आहतानां चिकित्सार्थे, शुश्रूषायां रतो गुरुः।।१६।।

वैशाख की तेज गर्मी में इस धर्म–युद्ध में बड़ी सेना मारी गई। पानी की कमी से घोड़े मर गये, सैनिक गिर गये, मर गये। जो तुर्क लोग घायल होने पर और गर्मी से बचे रहे थे। वे सभी भाग गये। घायलों की चिकित्सा करने के लिए गुरु सेवा में जुट गये।

गुरुर्युद्धे मृतान् वीक्ष्य, सहस्र-शूर! हे प्रिय।
सहस्रैर्विंशत्रिशद्भिः, सम्मानेन जगाद तान्।।१७।।
श्वसन्तमाहतं वीरं, महासिंहं गुरुर्गतः।
प्रेम्णा प्राह तवाऽधीनो, यदिच्छसि लभस्व तत्।।१८।।

गुरु ने लड़ाई में मरे पड़े वीर सिक्खों को देखकर कहा–तुम मेरे हजारों के शूरमा हो, तुम बीस हजार के, तीस हजार आदि के शूरमा हो। ऐसा सम्मानपूर्वक उन्हें कहा। तब घायल अन्तिम श्वांस लेते हुए उस महासिंह के पास गुरु गये ओर प्रेम से कहा–मैं तुम्हारें अधीन हो गया हूँ, जो चाहो वह पा लो। मुझसे अपनी अभीष्ट कामना पूर्ण कर लो।

सः प्राह नश्वरा काया, श्वः परश्वो गमिष्यति।
प्रीतोऽसि भञ्जय पत्रं, यदस्माकं विनिन्दकम्।।१६।।
गुरुरेतेन प्रीतोऽभूद्, 'अनधिकारपत्रकम्'।
वभञ्ज दर्शयन् तस्मै, प्राह सिक्खी सुरक्षिता।।२०।।

उस महासिंह ने कहा--हे गुरु शरीर नष्ट होता है। कल या परसों चला जायेगा। अगर आप प्रसन्न हैं तो हमारे उस स्थायी निन्दा वाले बेदावे के पत्र का नाश कर दो। गुरु इससे प्रसन्न हो गये और उस बेदावे के कागज को उसे दिखाकर नष्ट कर दिया और बोले--तुम्हारे द्वारा सिक्खों की रक्षा कर दी गई है।

हर्षाश्रूणि त्यजन् वीरो, महासिंहो ययौ दिवम्।
आहता गुरुणा दृष्टा, माता भागा पुनः रणे।।२१।।
सा याता पुत्र-प्राप्त्यर्थं, मांझा-सिक्खैर्युता गुरुम्।
तुरुष्कैस्तत्र युध्यन्ती, पतिता चाहताऽभवत्।।२२।।

महासिंह खुशी के आँसू छोड़ता हुआ स्वर्ग चला गया। गुरु ने उसी तरह घायल माता भागा को युद्ध भूमि में देखा। वह मांझा सिक्खों के साथ पुत्र पाने की इच्छा से वहाँ आयी थी और तुर्कों से लड़ती हुई घायल होकर गिर गई थी।

पाययित्वाऽमृतं तस्यै, 'भागा' कौरेण संज्ञिता।
हजूरसाहिबे सेवां यावज्जीवं धृतव्रता।।२३।।
खिद्राणस्य रणे शूराः, चत्वारिंशद् बलिं श्रिताः।
तेभ्यो मुक्तिं प्रदाय तत्, स्थानं मुक्तसरं कृतम्।।२४।।

उसको अमृत छका कर गुरु ने 'भागाकौर' नाम दिया। उसने जिन्दा रहने तक हजूर साहिब में सेवा का नियम ले लिया। खिद्राणा के युद्ध में ४० सिख वीर मारे गये। उनको मुक्ति देने के कारण से गुरुने इसका नाम मुक्तसर कर दिया।

ग्रामौ सरन-नौथेहौ, क्रान्त्वा ढहलियां गतः।
गुरुः सम्मानितः शम्भू-फतेहाभ्यां सश्रद्धया।।२५।।
द्वे वाससी तदा दत्ते, स्नेहेन गुरुणा धृते।
यथा देशं तथा वेशं, डोगरासम्मतोऽभवत्।।२६।।

सरन और नौथेहा गाँवों को पार कर गुरु ढहलियाँ गाँव गये। वहाँ शम्भू और फतेह ने श्रद्धापूर्वक गुरु का सम्मान किया। तब उन्हें दो वस्त्र पहनने को दिये गये और वे प्रेमपूर्वक गुरु ने पहनें। 'जैसा देश वैसा वेश' कर डोगरों में गुरु प्रिय बन गये।

धर्म-प्रचार-संलग्नो, रक्षार्थे वृणुते जनान्।
वैराडडोगरा वीरा, वृत्यर्थे सैनिकाः गताः।।२७।।
अश्वारोहाः पंचशतं, पदातिशतकं नव।
सेनायामभवन्वीरास्तस्मिन् संगठने तदा।।२८।।

गुरु गोविन्द सिंह लगातार धर्म के प्रचार की रक्षा करने को सैनिक भर्ती करने लगे थे। उनके दल में वैराड़ और डोगरा लोग वेतन के लिए सैनिक होकर चले आये। उनमें पाँच सौ घुड़सवार और नौ सौ पैदल सैनिक थे।

मार्गे तैः सैनिकैर्निस्वं, याचितं वेतनं गुरुम्।
दैवयोगात्तदा प्राप्तः, सिक्खोऽश्वैः रूप्यकं वहन्।।२६।।
धनं समर्पितं तेन, सेनावृत्तिं ददौ गुरुः।
सेनापतिदार्नसिंहो, दयामात्रं त्वयाचत।।३०।।

रास्ते में उन सैनिकों ने धनाभाव वाले गुरु से वेतन माँगा। भाग्यवश उसी समय घोड़ों से रुपया लाता हुआ एक सिक्ख वहाँ आया। उसने सारा धन गुरु को दे दिया। उससे गुरु ने सैनिकों का वेतन बांट दिया। उनमें सेनापति दान सिंह ने तो वेतन की जगह गुरु से दया मात्र ही माँगी।

ब्रूते गुरुर्त्त्वया वीर!, मालवाकीर्तिरेधते।
हित्वा वित्तं महापुण्यं, 'सच्छ्रीरकाल' इष्यते।।३१।।
शेषं धनं कृतं गर्ते, न लब्धं वञ्चकैर्हि यत्।
गुप्तसरं तु विख्यातं, स्थानं तत् श्रीगुरोर्मुखात्।।३२।।

गुरु ने कहा हे वीर तुमने मालवा प्रदेश का नाम बढ़ा दिया है, जो तुमने धन को छोड़कर पुण्यशाली 'सत् श्री अकाल' को चाहा है। गुरु ने (वेतन बाँटने पर) बचे हुए धन को गड्ढ़े में बंद कर दिया। उसे धोखेबाज फिर नहीं निकाल पाये। इसलिए इस स्थान का नाम गुरु जी ने गुप्तसर रख दिया।

साधुरिब्राहिमः शाहो, ब्राह्मीशाहो, मतो जनैः।
दृष्ट्वा श्रुत्वा गुरुं तत्र, तत्याज मुस्लिमं मतम्।।३३।।
गुरुणाऽमृतपानेन, अकाली-पुरुषः कृतः।
ख्यातोऽजमीरसिंहोऽसौ, यावज्जीवं गुरुं स्थितः।।३४।।

एक इब्राहिम शाह नामक मुसलमान सन्त थे, जिन्हें हिन्दु ब्राह्मी शाह कहते थे। उन्होंने गुरु के दर्शन किए, वाणी सुनी और मुस्लिम मत छोड़ दिया। गुरु ने उसे अमृत पिलाया, अकाली बनाया, अजमीर सिंह नाम दिया और वह जीवन पर्यन्त गुरु की शरण में ही रहा।

महिमासरजाग्रामं, दानसिंहोऽनयद् गुरुम्।
तत्र द्रष्टुं गुरुं श्रोतुं, संगता बहवो गताः।।३५।।
मंगलानि बचांस्याह, लक्षैः पीतं दिनैस्तदा।
गुरुर्लक्षवनं स्थानं, ब्रूते संगत-संगमे।।३६।।

दानसिंह सेनापति गुरु को अपने गाँव महिमासरजा ले गया। वहां गुरु को देखने और सुनने को अनेक संगतें आने लगीं। गुरु ने मंगल की वाणी कही। लाखों लोग कई दिन इसे पीते रहे। गुरु ने संगतों के मेल से इसे 'लखीवन' नाम दे दिया।

गुरुः प्राह महिष्यो या, रांझासंगीतमोहिताः।
त्यजन्ति यवसग्रासं, तादृशास्तत्र संगताः।।३७।।

गुरु ने कहा कि जैसे रांझा के गीत से मोहित होकर भैसें घास खाना छोड़ देती थीं। ऐसी ही वहां संगत भी थी कि अमृतवाणी सुनने में सब कुछ भूल गई हैं।

लक्षाणां दर्शनैः पूतं, स्वात्मानं वेद्मि साम्प्रतम्।
खालसास्ते निहालाः स्युः, सच्छ्रीरकालरक्षिताः।।३८।।

मैं अपने आप को लाखों प्रिय लोगों के दर्शनों से पवित्र मान रहा हूँ। 'सत् श्री अकाल' द्वारा सुरक्षित खालसा वीर समृद्ध हों। बढ़ोत्तरी करते रहे।

उषित्वा कञ्चित् कालं तु, ग्रामेषु विहरन् गुरुः।
गतो तलबड़ीग्रामं, डलसिंह-निवासिनम्।।३८।।
तत्राचरद् गुरुर्धर्मं, विनयाधानकर्मभिः।
सर्वत्र ख्यातिमाप स, ग्रामो गुरुबुभूषया।।४०।।

वहाँ कुछ समय तक निवास करते हुए गांवों में घूमते हुए डलसिंह के वास वाले तलवड़ी गांव गुरु गये। वहां शिक्षा देने के काम से गुरु ने अपना धर्म चलाया। गुरु की शोभा मिलने से वह गाँव सभी जगह प्रसिद्ध हो गया।

सुन्दरी साहिबा-कौरा, मनीसिंहेन संगते।
दिल्लीत आगते ब्रूतः, सन्ति बाला अनामयाः।।४१।।
गुरुर्ब्रूते सभां दृष्ट्वा, पुत्रैस्ते रक्षिता इमे।
दिवंगतैः चतुष्पुत्रैः, सहस्रा जीविताः कृताः।।४२।।

वहाँ पर दिल्ली से मनीसिंह के साथ सुन्दरी और साहिबकौर आयी और बोली–बच्चे तो राजी खुशी हैं। सभा देखकर गुरु जी ने कहा–इन्हें तुम्हारे पुत्रों ने ही पाला पोषा है। स्वर्ग पधारे इन शूरवीर चार पुत्रों ने हजारों पुत्रों को जीवित कर दिया है।

श्रुत्वा वचांसि दुःखार्ता, संगताः वाष्प-व्याकुलाः।
मातरौ विह्वले जाते, गुरुः शान्तान् चकार तान्।।४३।।

गुरु की बात सुनकर आँसू भरी संगत दुःखी हो गई। दोनों माताएँ बड़ी व्याकुल हो गई थी। गुरु ने उन्हें धीरज देकर शान्त किया।

गुरुग्रन्थं स तत्रस्थो, मनीसिंहेन संगतः।
लिलेख तेगवाणीं च, यथारागं न्यवेशयत्।।४४।।

वहाँ रहते हुए गुरु गोविन्द सिंह ने मनीसिंह के साथ गुरु ग्रन्थ साहिब को फिर से लिखा और उसमें नवम गुरु तेग बहादुर की वाणी को रागों के अनुसार सम्मिलित कर दिया।

व्याख्यातः स मनीसिंहं, ग्रन्थः श्रीगुरुणा स्वतः।
स्थानं तेन गुरोः काशी, विद्याकेन्द्रं बभूव ह।।४५।।

गुरु ने उस ग्रन्थ साहब के अर्थ की व्याख्या अपने आप मनीसिंह को समझाई। इसलिए यह स्थान गुरु की काशी के रूप में विद्या पढ़ने का केन्द्र बन गया।

कलमानि सहस्राणि, शिष्योभ्यो लिखितुं कृता।
कलमगढनाम्नाऽपि, गुरुकाशी तदुच्यते।।४६।।

यहाँ पर गुरुजी की आज्ञा से शिष्यों को पढ़ाने को हजारी कलमों के ढेर लगा दिये गये थे। इसलिये गुरु–काशी को कलमगढ़ भी कहते हैं।

नगरं दमदमा नाम, गुरुविश्रान्ति हेतुना।
विख्यातमभवल्लोके, सिक्खपन्थसमृद्धये।।४७।।

गुरु गोविन्द सिंह के आराम करने, दम लेने से यह नगर दमदमा साहिब कहला कर प्रसिद्ध हुआ ओर यहाँ से सिक्ख लोगों की बढ़ोतरी हुई।

सुन्दरीं साहिबाकौरां, ततो दिल्ली स प्रैषयत्।
ग्रामीणान् बोधयन् भावैः, सरसा-स्थानमागतः।।४८।।

उन गुरुदेव ने तब साहिब कौर और सुन्दरी जी को दिल्ली भेज दिया और गांवों में अपने भावों का प्रकाश फैलाते हुए सरसा नामक स्थान में पहुँचे।

ग्रामान् प्रकाशयन् गीर्भिः, पुष्करं तीर्थमागतः।
जनान् सम्बोधयामास, धर्मप्रीतिमनुस्मरन्।।४६।।
दादू-द्वारं ततो गत्वा, दादूवाणीं मुदाऽशृणोत्।
प्रस्थानं सोऽकरोद् भूयः, कलायत-पुरे ततः।।५०।।

गांवों में सदभावों का प्रकाश फैलाते हुए गुरु पुष्कर तीर्थ में आ गये। धर्म का, प्रेम से सुमरन करके लागों को जगाने लगे। उपदेश देने लगे। वे वहाँ से दादू के दरबार (स्थान) में गये और प्रेम से दादू की वाणी सुनी। फिर उन्होंने कलायत पुर के लिये प्रस्थान किया।

सन्दिश्य धर्मसिंहोऽत्र, दयासिंहो गुरुं गतौ।
व्यतीय द्वादशाह्नानि, बधौरं ग्राममागतः।।५१।।
तत्र तेन श्रुतं शाहो, दिवं यातस्तु दक्षिणे।
सत्तां लब्धुं वर्तमानं, पुत्रेषु कलहं महत्।।५२।।

सन्देश लेकर वहाँ कलायत में धर्मसिंह और दयासिंह वापस आए गुरु से मिले। वहाँ बारह दिन रह कर गुरु बधौर गाँव में आए। वहाँ गुरु ने सुना कि शाह औरंगजेब दक्षिण में मर गये हैं और राजगद्दी पाने में बड़ा भारी झगड़ा बढ़ गया है।

गुरुः स्थितो दशां पश्यन्, धर्मनीतिं प्रसारयन्।
नन्दलालमुखाद् ब्रूते, गुरुं शाहो बहादुरः।।५३।।
आवयोर्हार्दिकी प्रीतिः, व्यक्ता पूर्वा तथा भवेत्।
त्वदधीनं हि सामाज्यं, रक्ष धर्म-सहायक!।।५४।।

गुरु हालत देखते हुए धर्मनीति फैलाते हुए ठहर गये। बहादुर शाह ने नन्दलाल जी को भेजकर गुरु से कहा—हमारी पुरानी मानसिक प्रीति अब प्रकट होनी चाहिए। मेरा राज्य तो तुम्हारे ही अधीन है। हे रखवाले, धर्म की रक्षा करो।

श्रेयस्कामः स स्वीकृत्य, प्रार्थनां तान्तु सैनिकान्।
धर्मसिंह-दयासिंह,-नेतृत्वे प्रैषयन्नृपम्।।५५।।
ब्रूते गुरुः समागम्य, सङ्गरे योघयाम्यहम्।
आजमशाहमृत्युस्तु, मम हस्ताद् भविष्यति।।५६।।

मङ्गल (भलाई) के भाव वाले गुरु ने प्रार्थना स्वीकार की और धर्म सिंह दयासिंह के नेतृत्व में शाह के पास सैनिक भेज दिये। गुरु ने कहा कि मैं आकर युद्ध में स्वयं लड़ूँगा और आजमशाह मेरे ही हाथ मरेगा।

अन्ते गुरुर्गतस्तत्र, संगरे शाहपुत्रयोः।
शरं सन्धाय तीक्ष्णं स, जघान शाहमाजमम्।।५७।।
जितो बहादुरः शाह, कृतज्ञो नमति गुरुम्।
आगरापुरमागन्तुं, सादरः प्रार्थितो गुरुः।।५८।।

आखिर में शाह के बेटों के युद्ध में गुरु गये और उन्होंने तेज बाण साधकर आजमशाह को मार दिया। विजयी बहादुर शाह ने कृतज्ञता से गुरु को प्रणाम किया। उसने गुरु से आदरपूर्वक आगरा शहर आने की प्रार्थना की।

तत्रोद्याने गुरुं प्राप्तं, शाहो मानं ददौ शुभम्।
निरातङ्कान् जनान् कर्तुं, राजाज्ञा घोषिता तदा।।५६।।
शुभाशिषा च संयोज्य, शाहं मार्गेऽचलद्गुरुः।
प्रकाशमानधर्मेण, तथ्यवाचो बभूव सः।।६०।।

वहाँ आगरा में गुरु उद्यान में ठहरे। बहादुरशाह ने शुभ भव्य सम्मान गुरु का किया। लोगों का आतंक दूर करने को फरमान जारी किया। गुरु ने शाह को आशीर्वाद देकर अपना रास्ता लिया। वे अपने इस प्रकाशमान धर्ममार्ग से सचमुच सत्य वाणी वाले हो गये थे।

सद्भावैः श्रद्धधानास्ताः, हिन्दुमुस्लिमसंगताः।
भावयन्तः स्वकर्तव्यैः, प्रीतिपेशलतां श्रिताः।।६१।।

वे हिन्दु मुसलमानों की संगतें गुरु पर सद्भावों से श्रद्धा करती हुई, अपने कर्तव्यों से अच्छा मान करती हुई प्रीति से विनीत हो गई थी।

तमद्भुतं दक्षिणराज्यशान्त्यै, ब्रूते गुरुं शाहबहादुरोऽसौ।
सदाऽऽततायिप्रशमाय सार्धं, कृपानिधिस्त्वं मममार्गदः स्याः।।६२।।

बहादुर शाह ने उस अद्‌भुत सिद्ध गुरु से दक्षिण के राज्य में शान्ति स्थापित करने को कहा तथा आततायियों को शान्त करने में सदा साथ देने के लिए प्रार्थना की कि हे 'कृपानिधि मुझे मार्ग बताते रहना'।

इति श्रीदशमेशचरिते कर्मयोगसरणे विंशतिः सर्गः।।

एकविंशतिः सर्गः

पौषे रवौ शाहमुखे च दक्षिणे, तद्वन्दना श्रीगुरुणानुवर्तिता।
ते राजपुत्रा विदितार्थतत्त्वा, गुरुं श्रयन्ति नयमार्गकामाः।।१।।

पूष के महीने में सूर्य दक्षिणमुखी थे, बहादुर शाह का मुख भी (जीतने को) दक्षिण गति का था। गुरु शा॰ की वन्दना मानकर उनकी दक्षिण यात्रा का अनुगमन कर रहे थे। वे राजपूत लोग भी वास्तविकता जानकर नीति मार्ग–की कामना से गुरु का आश्रय ले रहे थे।

सिक्खा गुरुं धौलपुरं प्रयाता, चर्मण्वती सा सरिदत्र तीर्णा।
मध्ये प्रदेशे सुकृतः सृजन्तः, ते नर्मदां पुण्यजलां प्रपन्नाः।।२।।

गुरु और सिक्ख समुदाय धौलपुर गया। वहाँ चम्बल नदी पार की । उन्होंने मध्य प्रदेश के लागों के बीच पुण्य कार्यों की सृष्टि की और वे पवित्र जल वाली नर्मदा नदी की शरण में पहुँचे।

ततोऽपि क्रान्त्वा बुरहानराज्यं, गोदावरीं ते सरितं प्रयाताः।
नदेडवासं तपसा वसन्त, लाभं शुभं माघवदासमासीत्।।३।।

वहाँ नर्मदा के पार बुरहान राज्य पार कर वे गोदावरी नदी के किनारे पहुँचे। गुरु ने वहाँ नदेड आश्रम में तपस्या हेतु रहने वाले माधवदास से मिलने का लाभ शुभ सङ्कल्प के रूप में प्राप्त किया।

बाल्ये स्मृतो लक्ष्मणदासनामा, शस्त्रास्त्रवेत्ता मृगयाऽतिसक्तः।
हतां सगर्भां हरिणीं विलोक्य, विरागतो माधवदास आसीत्।।४।।

बचपन में जिसे लक्ष्मणदास कहते थे, वह शिकार में मारी हुई गर्भिणी हरिणी को देखकर विराग लेकर माधवदास नाम का सन्यासी हो गया था।

तस्याश्रमे सिंहसुतो ववर्ध, भयान्न कश्चित् विशते तदन्तः।
तत्रोपविष्टं स गुरुं विलोक्य, चमत्कृतो नौति मुदा विनीतः।।५।।

उसके आश्रम में एक सिंह शावक बड़ा हो गया था। उसके भय के कोई भीतर नहीं जाता था। माधवदास ने वहाँ गुरु को बैठा पाया तो चमत्कार से भर गया और प्रसन्नता एवं नम्रता से गुरु को प्रणाम किया।

पप्रच्छ तं धैर्यधुरन्धरो गुरुः, तपः प्रवृत्तिं निचितां चमत्कृतिम्।
फलाभिलाषं जननोपलब्धिं, श्रुत्वोत्तरं शान्तमना बभाष।।६।।

धीरज धरने वालों में अग्रणी गुरु गोविन्द सिंह ने उससे तपस्या में लगना, चमत्कार करना, फल पाने की इच्छा, जन्म लेने की सफलता के बारे पूछा और उसका उत्तर सुनकर शान्त मन से कहा--

भवादृशोऽहं हृदि संस्मरामि, तं वर्णरूपाकृतिचिह्नभिन्नम्।
त्रैलोक्यभान्तं सुरदैत्यवन्द्यं, सहस्रनामानमनामरूपम्।।७।।

आपकी ही तरह मैं भी उस वर्ण--रूप--आकृति- चिह्न से परे, तीनों लोकों में प्रकाशक, देवताओं और दैत्यों के प्रार्थनीय, हजारों नाम वाले, नाम रूप से भिन्न परब्रह्म का हृदय में स्मरण करता हूँ।

स निर्गुणः प्राकृत-दृष्ट-धर्मैः, सच्चित्प्रकाशैः सगुणत्वमेति।
मित्रं हितं प्रेमगुणाभिव्यक्तं, विज्ञाय तं सत्सरणिं प्रयामि।।८।।

वह ब्रह्म संसार में दिखाई देने वाले आकार प्रकार के रूप से अलग निर्गुण है। किन्तु सच्चाई, चेतना, प्रकाश आदि सद्गणों को देने से सगुण भी है। तभी वह हमारा मित्र बनता है, हितैषी होता है और प्रेम के गुण से ही प्रकट पाया जाता है। उसी को जानकर समार्ग पर चल रहा हूँ।

दुरत्ययं कालरथस्य चक्रं, मर्यादहीनैः परिवर्तितं तत्।
तेनैव देशे विकला जना नो, धीरैस्तु कालः परिवर्तनीयः।।९।।

यह कालरथ का कठिनाई से पार लगने वाला चक्र मर्यादाहीनों द्वारा घुमाया जाता है। इसी से देश में लोग व्याकुल हैं। वीर लोगों को यह समय बदल देना चाहिए।

ममैष कामोऽरिविनाशनाय, स्वधर्मरक्षा गुरुणाऽनुशिष्टा।
धर्मस्य तान् दुर्गतिदान् निहन्मि, प्रगृह्य मूलं विनशं नयामि।।१०।

मेरी यह कामना शत्रुओं का विनाश करना ही है। अपने धर्म की रक्षा करन का उपदेश मुझे गुरु (परमात्मा) ने सिखाई है। मैं धर्म की मर्यादाओं की द गति करने वालों को निश्चय पूर्वक मारता हूँ। उन दुष्ट दुःखदायियों को जड़ पकड़ कर नष्ट करता हूँ।

याचे शिवां स्वां सुकृतो न यामि, विभेमि युद्धान्न जयं लभेयम्।
स्वचित्तशिष्यस्तवगीतिनिष्ठः, प्राणान् जहीषामि रणे नियुध्यन्।।११।।
मैं अपने ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सुकर्मो से कभी न टलू, लड़ते हुए शत्रु से डरूं नहीं। मैं अवश्य विजय प्राप्त करूं। अपने चित्त के अनुशासन में बंधा हुआ तेरे गीत गाता रहूँ। रण में लड़ता हुआ प्राणों को त्यागना चाहता हूँ।

मुक्तिं त्वमेनां तपसा वृणोषि, लाभः कियान् मातृसुता न तीर्णाः।
माता च भूमिर्यदि सीदतस्ते, स्वार्थे तपस्तद् विफलं प्रयाति।।१२।।
तुम तपस्या से अपनी इस मुक्ति को पाओगे। तुम्हें क्या लाभ होगा अगर तुम्हारी माता और मातृभूमि दोनों दुःखी हैं, तो अपने स्वार्थ के लिए किया गया तप बेकार हो जाता है, बन्धनकारी है।

उत्तिष्ठ श्रेयो भुवने लभस्व, गम्भीरवाणी गुरुणा प्रयुक्ता।
पीत्वाऽमृतं स गुरुवक्शसिंहो, नाम्ना श्रुतः श्री गुरुसेवकोऽभूत्।।१३।।
उठो! संसार में कीर्ति प्राप्त करो। गुरु ने गंभीर वाणी उससे कही। वह अमृत–पान करके अब गुरुबक्शसिंह नाम से प्रसिद्ध होकर गुरु का सेवक बन गया था।

वैरागिणं वन्दितपादयुग्मं, गुरुर्वभाषे नवधर्मवृत्तम्।
विध्वस्तध्वान्तं विलसद्धृदन्तं, मार्गं प्रयातुं तमुवाच वीरम्।।१४।।
पैरों में वन्दना करने वाले उस वैरागी वन्दा माधवदास से गुरु ने अपने नये (खालसा) धर्म का समस्त वृतान्त कहा और अज्ञान नाशक हृदय खिलाने वाले मार्ग पर चलने को उसे निर्देश दिया।

श्रुत्वा ततिं संस्कृति-रक्षिणीं तां, वाचं ददौ स गुरुवक्शसिंहः।
ज्ञात्वा बलिं धर्मकृते सुतानां, तान् दुर्जनान् दण्डयितुं दृढोऽभूत्।।१५।।
उनसे संस्कृति की रक्षा करने वाली परंपरा को सुनकर गुरुबक्शसिंह ने गुरु को अपना वचन दिया। गुरु के छोटे बेटों की धर्मरक्षा के लिए बलिदान सुनकर दुराचारियों को दण्ड देने को वह पक्का बन गया।

वजीरखानो कृतपापकर्मा, विभेति दृष्ट्वा गुरुशाह-मैत्रीम्।
तं पातुकामः पुरुषद्वयं स, धनैः समर्च्याऽनुगतं चकार।।१६।।
पाप कर्म करने वाला वजीरखान गुरु और शाह बहादुर की मित्रता को देखकर भयभीत हो रहा था। उसने गुरु को मारने की इच्छा से बहुत धन देकर दो आदमियों को गुरु के पीछे लगा दिया था।

पठानवीरौ गुरुमार्गयातौ, नदेडवासं सह तौ भजन्तौ।
विश्वास-भाजौ गुरु-शिष्यमध्ये, प्रतीक्षमाणौ विरलं च कालम्।।१७।।
वे दोनों पठान वीर गुरु के पीछे लग गये। नदेड़ के डेरे में भी साथी सेवक हो गये थे। गुरु के शिष्यों के बीच विश्वास पात्र बन गये थे। वे गुरु के अकेले होने के समय का इंतजार कर रहे थे।

ततः कदाचित् सदसो विरामे, विश्रान्तिशय्या गुरुणा गृहीता।
एकेन गत्वा छुरिका-प्रहारः, कृतो गुरोर्वक्षसि दारुणोऽसौ।।१८।।
तब कभी सभा की समाप्ति पर गुरु ने आराम के लिए शय्या ग्रहण की। उनमें एक पठान ने जाकर गुरु की छाती पर एकान्त में छुरे (कटार) से घातक प्रहार कर दिया।

स घातकारी गुरुणा च कर्तितः, बहिःस्थितः सिक्खजनैर्हतोऽभूत्।
हिंस्रौ स्वकृत्यस्य फलानि प्राप्तौ, विज्ञाश्चिकित्सा-करणे च सक्ताः।।१६।।
वह आक्रमण करने वाला गुरु के हाथ मारा गया। बाहर खड़ा आदमी सिखों से मारा गया। दोनों क्रूर पापियों में अपने किए का फल पाया। वैद्य लोग गुरु की चिकित्सा में लग गये थे।

कृतघ्नतां तां गुरुबक्ससिंहो, विलोक्य साक्षाच्छुतपूर्ववृतः।
हन्तुं नृशंसान् दुरितप्रियान् तान्, गुरुं ययाचे गमनाय चाज्ञाम्।।२०।।
उनकी इस कृतध्नता को देखकर और पुराना वृतान्त सुनकर गुरुबक्शसिंह ने उन दुराचारी क्रूर लोगों को मारने के लिए गुरु से प्रस्थान करने की आज्ञा मांगी।

परीक्ष्य सम्यग् रणविक्रमं सः, शस्त्रास्त्रसैन्ये पटुतां च मत्वा।
सामाजिके रीति-नये प्रवीणं, प्रस्थातुमेनं सबलं ब्रवीति।।२१।।
गुरु ने वन्दा वैरागी गुरुबक्शसिंह की लड़ाई की बहादुरी की परीक्षा कर उसके शस्त्र अस्त्र सेना के सम्बन्ध में होशियारी देखकर, सामाजिक रीति रिवाज में कुशल समझ कर सेना सहित उसे जाने की आज्ञा दे दी।

तस्मै ददौ पञ्चशरान् सुतीक्ष्णान्, सोऽन्ते जयार्थे यदि संकटे स्यात्।
आदेशपत्रं पथि संगतेभ्यः, सहायतां धर्मभृतां विधातुम्।।२२।।
गुरु गोविन्द सिंह ने उसे पांच पैने बाण दिये कि संकट के आखिरी समय में विजय के लिए प्रयोग करना। मार्ग में संगतों को धर्मधारियों की सहायता करने के लिए गुरु ने आदेश पत्र लिखकर भी दिया।

स्थानानि मार्गान् परितः स गेहान्, जनान् समस्तान् परिचेतुकामः।
पुरस्कृताः पञ्च तु रामकानौ सिंहाश्च बाजो विजयो विनोदः।।२३।।
उन सदगुरु ने स्थान, रास्ते चारो ओर, घर, लोग सब की पहचान की कामना से पांच आदमी रामसिंह, करनसिंह , बाजसिंह, विनोद सिंह को आगे साथ करवा दिया।

ब्रतानि पञ्च तमुवाच पातुं, वश्येन्द्रियः खालस-पंथयायी।
शिष्यः समेषां, समभज्य भोक्ता, दीने दयालुः गुरु-सम्मतः स्यात्।।२४।।
उन सद्गुरु ने संगत से मान्य पांच नियम रक्षा के लिए वंदा वैरागी को समझाया कि इन्द्रियाँ वश में रखो। खालसा मार्ग का पालन करो, सबके शिष्य बनकर रहना सीखो, सबको बांट मिलकर खाओ, दीनों पर दया करो, यही गुरु का मत है।

प्रणम्य पादौ गुरुवाक्यनिष्ठः, प्रस्थानयात्रोत्तरगामिनी सा।
गुर्वर्थमर्थी परखौदमेत्य, सामन्त-सिक्खेषु लिलेख पत्रम्।।२५।।
गुरु के पैरों में प्रणाम कर गुरु के वचनों पर वह स्थित हो गया। उन्होंने उत्तर दिशा को जाने वाली शुभ प्रस्थान यात्रा आरंभ की। गुरु के प्रयोजन को चाहता हुआ वह गुरु बक्शसिंह परखौदा में ठहरकर सिक्ख सामन्तों को पत्र लिखने लगा।

समेत्य सर्वे सबलाः भवन्तः, तानाततायि-प्रमुखान् जयेयुः।
हस्ताक्षरैः पञ्चजनैः प्रदत्तं, मुद्राङ्कितं तेषु लिलेख पत्रम्।।२६।।
यहाँ आकर उसने लिखा कि सभी सैनिक बलशाली होकर आप उन आततायी मुखियों को जीते। पांचों लोगों के हस्ताक्षरों से गुरु मुहर लगे उस पत्र को सर्वत्र भेज दिया।

सद्धर्मसेवानिरता जनौघा, आह्वानमाकर्ण्य स्वतः प्रयाताः।
सर्वं गुरोर्लोकहिताय सृष्टं निपातितुं दुर्जनसृष्ट-दुर्गम्।।२७।।
इस शुभ धर्म की सेवा में लगे लोग पुकार सुनकर 'गुरु ने इसे लोक कल्याण के लिए किया है।' अतः दुर्जनों के दुष्टता के इस किले को गिराने की आवाज सुनकर अपने आप वहाँ आ गये थे।

गुरोः कदाचिद् ब्रणघातदोषं, ज्यारोपणे तद्विकृतं बभूव।
मत्वा प्रयाणं समुपस्थितं स, सिक्खान् जगाद गुरुगौरवाय।।२८।।
बाद में कभी गुरु के शरीर का ब्रणघात का दोष धनुष पर डोरी चढ़ाने से खराब हो गया था। तब उन गुरु गोविन्द सिंह ने अपना प्रयाण निकट आया जानकर गुरु के गौरव की रक्षा के लिए कहा–

कीर्तिः स्थिता नश्यति सर्वकाया, भ्रंश्येत्कथंचित्तु शरीरधारी।
ततो भवद्भिः सुविचार्य तत्त्वं, वाणी गुरूणां शुभदा सुसेव्या।।२९।।
इस संसार में यश ही रहता है। सभी के शरीर नष्ट हो जाते हैं। शरीरधारी किसी तरह से तो भ्रष्ट हो सकता है। इसलिए तत्व ज्ञान को ठीक से विचार करके गुरुओं की शुभ देने वाली वाणी की सेवा किया करे। अपनाया करें।

वाणी गुरूणां विपुला प्रकाशा, सुधाप्रवाहाऽमृतभाव-रूपा।
सद्धर्म-धात्री निखिलार्थदात्री, मोक्षार्थगन्त्री दुरितापहन्त्री।।३०।।
गुरुओं की वह वाणी व्यापक प्रकाश करने वाली है। इसमें सुधा का प्रवाह है, अमरता का भाव भरा रूप है। यह उत्तम धर्म धारण करवाती है, सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली हैं, परमार्थ के मोक्ष पथ पर ले जाती है और पाप दूर करवाती है।

पञ्चायतं निर्णितमार्गमेनं, ज्ञप्तं भवद्भिः परिपोषयामि।
स संगतः श्रेष्ठमिदं ब्रवीति, गुरुस्तदाज्ञापरिपालकोऽभूत्।।३१।।
आपकी आज्ञा पर चलकर पंचायत के निर्णय किए, इस मार्ग का मैं पालन करना चाहता हूँ। संगत ने कहा कि यही सर्वश्रेष्ठ है और गुरु ने उनकी आज्ञा का पालन किया।

द्वितीयया कार्तिक-शुक्ल-पक्षे, गोविन्दहस्तात् तिलकं गृहीत्वा।
श्रीनारिकेलं पणकांश्च पञ्च, ग्रन्थो गुरोर्गौरवतां दधार।।३२।।
कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि से गुरु गोविन्द सिंह के हाथ से तिलक पाकर नारियल और पांच पैसे से ग्रन्थ साहब ने गुरु के गौरव को प्राप्त किया था।

गोविन्दसिंहः स्तुतिमुच्चरन् वै, प्रदक्षिणास्तस्य चकार तिस्रः।
वहेत् गुरुः खालसा रूपधारी, वहेत् गुरुः स विजयं लभेत।।३३।।
गुरु गोविन्द सिंह ने निश्चय पूर्वक अकाल पुरुष की स्तुति का उच्चारण करते हुए उन ग्रन्थ साहिब की तीन परिक्रमाएं की। खालसा रूपधारी गुरु पार लगाये। वह गुरु पार करे, उसी गुरु को विजय प्राप्त हों।

तथानुनीतः सकलैः स मार्गः, स्वजीवनायाशु जनैर्गृहीतः।
मता गुरुग्रन्थगता सुबुद्धिः, प्रकाशते दिव्यगिरा गुरूणाम्।।३४।।
सबने वैसा ही गुरु के मार्ग का अनुसरण किया। अपनी जिन्दगी के लिए वही मार्ग उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया। गुरु ग्रन्थ साहिब में ही उत्तम बुद्धि मानी गई। गुरुग्रन्थ में गुरुओं की वह दिव्य वाणी प्रकाश कर रही है।

आज्ञामकालस्य च पातुकामः, तदीयसेवां सफलां विधातुम्।
संसारबन्धं ससुखं विहातुं, प्रयाणयोगो गुरुणा प्रदिष्टः।।३५।।
अकाल की आज्ञा का पालन करने की इच्छा से, उसकी सफल सेवा करने को, संसार के बंधन सुखपूर्वक छोड़ने को गुरु ने अपने जाने का योग समझाया।

अकालताते रमणाय यामि, सच्छ्रीरकालो जयतात् त्रिलोके।
मयि प्रयाते गुरुकीर्तनं स्यात्, प्रीणातु तेन भुवनस्य भर्ता।।३६।।
मैं अकाल पिता के पास रमण को जा रहा हूँ। तीनों लोकों में सत् श्री अकाल की जय हो। मेरे जाने पर गुरु का भारी कीर्तन हो। इससे संसार का स्वामी अकाल पुरुष बहुत प्रसन्नता प्राप्त करेगें।

सा पञ्चमी कार्तिक-शुक्ल-पक्षे, ज्योतिर्यदा गच्छति दिव्यधाम्नि।
विद्योतमाना जनमानसेषु, मुक्तिप्रदा कालजयेन ख्याता।।३७।।
कार्तिक के महीने की शुक्ल पक्ष की वह पंचमी तिथि 'जब ज्योति ज्योतिपु ज में समा गयी थी' लोगों के मन को प्रकाशित कर रही है और काल को जीतने वाली मुक्तिदायिनी रूप से प्रसिद्धि पागई है।

धन्यो गुरुर्ज्ञान-धनो महात्मा, गोविन्दसिंहः स किरीटशोभी।
दिव्याऽमृतं खालसापूतसृष्टं, 'वहेत् गुरुः सोऽत्र जयेत' सर्वम्।।३८।।
वे ज्ञान धन्य गुरु महात्मा धन्य है। वे मुकुट धारी गोविन्दसिंह धन्य है। वह विशुद्ध पावन खालसा जीवन बनाने वाला अम त धन्य है। वे गुरु पार लगायें वे ही सर्वत्र विजयी हों।

इति श्रीदशमेशचरिते गुरुगोविन्दसिंह-महाप्रयाणे एकविंशतिः सर्गः।।